योगी और अधिकार

(The Yogi and the Commissar—by Arthur Koestler)

मूल लेखक
आर्थर कोएस्लर

अनुवादक
रमेश सिन्हा

पर्ल पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई–१

मूल्य : ५० नये पैसे

ए. डी. पीटर्स, लंदन, इंग्लैण्ड की
स्वीकृति से
भारत में प्रकाशित
मूल ग्रंथ का प्रथम हिंदी-अनुवाद

प्रथम संस्करण — १९५८

प्रकाशक : जी. एल मीरचंदानी, पर्ल पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, १२, वाटरलू मेन्शन (रीगल सिनेमा के सामने), महात्मा गांधी रोड, बम्बई–१.
मुद्रक : वि. पु. भागवत, मौज प्रिंटिंग ब्यूरो, खटाववाडी, गिरगॉव, बम्बई ४.

प्रोफेसर माइकेल पोलैनई
को
समर्पित

परमात्मा मुझे कभी किसी चीज को पूरा करने से दूर ही रखे। यह सम्पूर्ण पुस्तक एक मसविदा है—नहीं, मसविदे का मसविदा है। आह! समय, शक्ति, धन और धैर्य!

—मेलविले, 'मोबी डिक'

भूमिका

इस पुस्तक के कुछ निबध मूलतः अमरीकी पत्रो के लिए, जिनमें प्रत्येक बात को स्पष्ट लिखने के लिए बाध्य होना पडता है, लिखे गये थे; बाकी 'होरिजन' के मॅजे-मॅजाये स्तम्भो में, जहॉ सकेत ही पर्याप्त होते हैं, प्रकाशित होने के लिए लिखे गये थे। इतने विभिन्न उद्देश्य और स्तर पर लिखे गये निबधों को एक जगह एकत्र करने का दुष्परिणाम अनावश्यक जोड-जाड़ है और सुपरिणाम है इसकी विविधता।

लेकिन यह बात केवल प्रथम दो भागो पर ही लागू होती है। भाग तीन 'रहस्योद्घाटन', जिसमें सोवियत प्रयोग का चित्रण किया गया है और उसके कतिपय परिणाम बताये गये हैं, खास करके इसी पुस्तक के लिए लिखा गया था और इससे पहले कभी प्रकाशित नहीं हुआ था।

इन निबधो मे से कुछ राजनीति और मनोविज्ञान की कतिपय दुरूह प्रणालियों से सम्बंधित हैं और तदनुसार ही कठिन और पेचीले बन गये हैं। मैं शैली की सरलता पसद अवश्य करता हूँ; लेकिन अत्यधिक सरलता नहीं और न आगडेन-ढंग की भाषागत कजूसी, जो कि वस्तुतः मूल विषय को अबोध कर देती है। मेरे लिए आइंस्टीन का वह उत्तर सुविधापूर्ण है—"अगर आप सत्य का उद्घाटन करने चले हैं, तो कजूसीपन दर्जी के पास छोड़ आइए।"

अपने स्कूल के दिनों से ही मै प्रति वर्ष अपने विगत वर्ष के मूर्खतापूर्ण कार्यों पर चकित होता आ रहा हूँ। हर वर्ष एक-न-एक नयी बात की सत्यता मेरे समक्ष स्पष्ट होती है, फलतः हर बार मुझे अपने पिछले विचारों और धारणाओं पर शर्म और क्रोध आता है। यह बात आज भी है; लेकिन एक परिष्कृत रूप मे। मै अब भी यह नहीं समझ पाता कि विगत वर्ष मै अनभिज्ञता की स्थिति में कैसे पड़ा रहा। लेकिन आगे चल कर नयी बाते, पहले के विचारो को झकझोरने और नष्ट करने के बजाय, एक नये रूप में सगठित होती दीखती हैं। उनका यह रूप नये तथ्यो को ग्रहण करने और उनकी मौलिकता को स्थिरता प्रदान करने मे पर्याप्त रूप से समर्थ होता है। इस पुस्तक को मैंने इसी आशा से प्रकाशित किया है कि विषयो की विविधता और प्रथम और अंतिम निबंधो के बीच की तीन वर्ष की अवधि को दृष्टिगत रखते हुई इस रूप-रेखा को भी मान्यता मिलेगी।

लंदन,

अक्टूबर, १९४४

विषय-सूची

योगी और अधिकारी*

१. स्थिर वर्णपट

एक भौतिक विज्ञानवेत्ता जिस प्रकार किरणों के समूह को विदीर्ण करता है, ठीक उसी प्रकार सामाजिक रूढियों को तोड़नेवाले उपकरण के सम्बंध मे मैं बहुधा सोचा करता हूँ। सामाजिक आचरण का विश्लेषण करनेवाले इस रंग-वीक्षण यंत्र (Spectroscope) द्वारा देखने से इद्रधनुषी वर्णपट पर फैले जीवन के प्रति मानव के सभी सम्भव दृष्टिकोण दिखायी देगे और तब यह दुःखदायी गदगी अधिक स्वच्छ, स्पष्ट और व्यापक हो जायेगी।

वर्णपट के एक छोर पर, हमे अधिकारी (रूस के सरकारी विभाग का प्रधान पदाधिकारी) दिखायी देगा। स्पष्टतः ही, वर्णपट का यह छोर अधोरक्त (Infra-Red) वाला छोर होगा। अधिकारी बाह्य परिवर्तन मे विश्वास करता है। उसका विश्वास है कि मानवता की सभी कमजोरियॉ, जिनमे अवरोधात्मक और मानसिक दुरूहता भी शामिल हैं, क्राति के द्वारा ही दूर की जा सकती हैं और दूर की जायेंगी। और, वह होगा उत्पादन और वितरण-प्रणाली मे क्राति-कारी पुनस्सगठन-द्वारा। अधिकारी के विश्वासानुसार इस व्यवस्था की उपलब्धि के लिए हिंसा, छल-कपट, विश्वासघात एवं विष-प्रयोग, सभी तरीके न्यायसगत हैं। उसकी धारणा है कि तर्कपूर्ण विचारधारा एक ऐसा यत्र है, जो कभी विफल नहीं हो सकता और यह विश्व किसी विशाल यंत्र के समान है, जिसमे बहुत-से विद्युत्कण अगर एक बार ठीक से जमा कर गतिशील कर दिये जायें, तो वे सदा अपनी धुरी पर घूमते रहेगे। उसके विचार से, जो व्यक्ति इसके अतिरिक्त किसी अन्य तरीके मे विश्वास करता है, वह पलायनवादी है। वर्णपट के इस छोर पर सबसे कम कम्पन-आवृत्ति है और एक तरह से यह प्रकाश-किरण का सबसे घटिया भाग है, किंतु इसमे अधिकतम उष्णता है।

वर्णपट के दूसरे छोर पर तरगे इतनी लघु और ऊँची आवृत्तिवाली हो जाती हैं कि हमारी ऑखे उन्हें देख नहीं पाती। वे रगहीन, उष्णता से परे, किंतु सर्वभेदी तरगे अति नीलवर्ण (Ultra-violet) मे विलीन हो जाती हैं।

* प्रथम बार होरिजन (लदन), जून, १९४२ में प्रकाशित।

वर्णपट का यही छोर योगी के चरणस्पर्श करता है। विश्व को किसी विशाल यंत्र के समान मान लेने मे योगी को कोई आपत्ति नहीं है, किंतु उसका कहना है कि उतनी ही सत्यता के साथ एक वाद्य-पेटिका अथवा मत्स्य-जलाशय भी तो माना जा सकता है। उसका विश्वास है कि परिणाम के सम्बध में पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता और साधन पर ही सब कुछ निर्भर करता है। किसी भी परिस्थिति मे वह हिसा के पक्ष में नहीं है। उसका विश्वास है कि जब मस्तिष्क पूर्ण सत्य अथवा ब्रह्म के चुम्बकीय क्षेत्र के निकट पहुँचता है, तब तर्कपूर्ण विचारधारा शनैः-शनैः यान्त्रिक महत्त्व को खो देती है और यही सत्य सब-कुछ है। उसके विश्वास के अनुसार बाह्य परिवर्तनो से किसी प्रकार का सुधार सम्भव नहीं है। व्यक्ति के आतरिक प्रयास से ही कोई भी काम हो सकता है। उसकी धारणा के अनुसार जो व्यक्ति इसके अतिरिक्त किसी अन्य तरीके मे विश्वास करता है, वह पलायनवादी है। उसका कहना है कि महाजनो-द्वारा भारतीय किसानो पर लादा गया ऋण-दासत्व वित्तीय विधान-द्वारा नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उपायो-द्वारा दूर किया जाना चाहिए। उसका मत है कि, प्रत्येक व्यक्ति पृथक् है; किंतु एक अदृश्य सूत्र-द्वारा सब एक-दूसरे से जुडे हुए भी हैं। व्यक्ति की रचनात्मक शक्तियाँ, उसकी अच्छाई, सचाई और उपयोगिता, इस नाल द्वारा उस तक पहुँचनेवाले रस से ही पोषण प्राप्त कर सकती हैं। अतः अपने सासारिक जीवन मे उसका एकमात्र कार्य यही है कि ऐसे प्रत्येक कार्य, भावना अथवा विचार की अवहेलना करे, जिससे इस नाल के टूटने की आशका हो। यह अवहेलना एक कठिन और परिश्रमसाध्य प्रणाली-द्वारा ही सम्भव है और यही एक ऐसी प्रणाली है, जिसे योगी मान्यता देता है।

इन दो छोरो के बीच अत्यधिक शात मानव-व्यवहारो की बाह्य रेखाएँ एक-के-बाद-एक कतार में फैली हैं। जितना हम केद्र के निकट पहुँचते जाते हैं, वर्णपट उतना ही धब्बेदार और रोएँदार होता जाता है। दूसरी ओर, इन बाह्य-नग्न शरीरो पर रोओ की इस वृद्धि से वे और सुंदर लगने लगते हैं और उनके साथ समागम (मेलजोल) अधिक सुसस्कृत हो जाता है। आप एक पक्के अधिकारी से बहस नहीं कर सकते, क्योकि तत्काल ही वह अपनी छाती पीटना आरम्भ कर देता है और फिर चाहे आप दोस्त हो अथवा दुश्मन, वह अपने मृत्यु-सम आलिंगन मे जकड़ कर आपका गला घोंट देता है। आप किसी योगी से भी बहस नहीं कर सकते; क्योकि शब्द उसके लिए कोई

अर्थ नहीं रखते। हाँ, आप युद्ध के बाद की योजना बनानेवालों, उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करनेवालों, शाति-प्रचारक मडल के सभासदों, उदारवादियों और प्राणि-मात्र की कल्याण-कामना करनेवालो से बहस कर सकते हैं; किंतु आपकी इस बहस से भी कुछ नहीं होने का, क्योंकि वास्तविक समस्या तो योगी और अधिकारी के बीच है—बाह्य परिवर्तन और आतरिक परिवर्तन के मूलभूत सिद्धातो के बीच है।

यह कहना आसान है कि सिर्फ समन्वय की ही जरूरत है—योगी और क्रातिकारी के बीच समन्वय की—किंतु अब तक तो ऐसा नहीं हो सका है। अब तक जो-कुछ प्राप्त हुए हैं, वे आपसी समझौते के विभिन्न मिश्रित रूप हैं—वर्णपट के धब्बेदार मध्यवर्ती पट्टे—केवल समझौता, किंतु समन्वय नहीं। प्रत्यक्ष रूप से ये दो तत्त्व नहीं मिलते है। हमारे इतिहास के इतना उलझे हुए होने का एक कारण यह भी हो सकता है। अधिकारी की भावनात्मक शक्तियाँ व्यक्ति तथा समाज के सम्बध पर स्थिर है और योगी की शक्तियाँ व्यक्ति और विश्व के सम्बंध पर। अतः यह कहना तो सरल है कि केवल पारस्परिक प्रयास की आवश्यकता है, किन्तु यह कहना उसी प्रकार का होगा, जैसे बगालियों से रोटी खाने को और पजाबियों से भात खाने को कहा जाये।

अधिकारी की कठिनाई

प्राचीन रोमन सरदार स्पार्टकस के सूर्यपूजक राज्य से लेकर सोवियत रूस के सुधारो तक, अधिकारी की प्रणालियो से मनुष्य का स्वभाव बदलने के सारे प्रयत्न निष्फल प्रमाणित हुए हैं। इस असफलता का रूप दो उदाहरणो मे प्रतीत होता है, जिन्हे कैट सम्भवतः व्यावहारिक तर्क का विरोधाभास कहता। पहला विरोधाभास पेचदार है और दूसरा सपाट ढालुवाँ।

काल्पनिक आदर्श-राज्य (Utopia) का शिखर बहुत ढालुवाँ है और वहाँ तक जानेवाली सर्प सदृश सडक मे कई टेढे मोड है। जब आप इस सडक पर ऊपर की ओर बढते रहते हैं, तो आप कभी शिखर को नहीं देख पाते। आप मोड मे ही घूमते रहते हैं, मूलतः आपको कुछ नहीं दिखायी देता। अगर उस सर्प-सदृश रास्ते पर बहुत-से लोगों की भीड आगे बढ रही है, तो जड़ता के प्राणनाशक नियमो के अनुसार, वह अपने नेता को धक्का देकर सडक से परे कर देगी और स्वय भी उसका अनुसरण करेगी। सारा समुदाय रास्ते से दूर जा हटेगा और परिणाम यह होगा कि वह कहीं नही पहुँचेगा। अधिकाश

क्रातिकारी आदोलनों के साथ यही हुआ है—ऐसे क्रातिकारी आदोलनों मे सर्व-साधारण का प्रभाव बडा तगडा रहा है और लोगो की निष्क्रियता एक विकेद्रित विद्रोहात्मक शक्ति मे बदल दी गयी है। दूसरी ओर, अधिक सचेत सुधारवादी आदोलनो मे, उत्तेजना बहुत जल्द समाप्त हो जाती है और ऊपर बढने का चक्कर पहले, शीर्ष के चारों ओर, थका देने वाले घुमाव का रूप ले लेता है—ऊपर बढने की दिशा मे तनिक भी प्रगति नहीं हो पाती और ऐसा तब तक होता रहता है, जब तक अंतिम रूप से ऊपर के बजाय नीचे उतरने के चक्कर के रूप मे उसका पतन नहीं हो जाता है—उदाहरणार्थ, ट्रेड यूनियनवालों का आदोलन।

असफलता का दूसरा रूपक ढालुवॉ है—लक्ष्य और साधन-सम्बन्धी। इसमे या तो साधनो पर परिणाम हावी होता है अथवा परिणाम पर साधन। सिद्धाततः आप विस्तृत उदारवादी अथवा धार्मिक मध्यम मार्ग का निर्माण कर सकते हैं, किंतु अगर आपके ऊपर जिम्मेदारी का बोझ हो और व्यावहारिक निर्णय लेने की समस्या सामने हो, तो आपको किसी एक मार्ग को अपनाना ही पड़ेगा। और, जहॉ आपने कोई निर्णय किया, आप ढलान पर पहॅुच गये। अगर आपने साधनों पर परिणाम के हावी होने के पक्ष मे निर्णय किया है, तो यह ढलान आपको सहज विचार-बुद्धि-रूपी चलायमान गलीचे पर उत्तरोत्तर नीचे गहराई मे खिसकने को बाध्य कर देती है। उदाहरणार्थ, आत्मरक्षा का अधिकार, आक्रमण ही सर्वोत्तम सुरक्षा है, निर्दयता की वृद्धि सघर्प की अवधि कम कर देती है, इत्यादि। दूसरे प्रकार की प्रसिद्ध ढलान "चिकित्सक के चाकू" से आरम्भ होती है और मास्को के शुद्धीकरण पर समाप्त होती है। इस ढलान की घातक यात्रिक प्रक्रिया पास्कल को पहले से ही ज्ञात थी।

मनुष्य न तो देवदूत है, न पशु और यह उसका दुर्भाग्य है कि जो देवदूत की तरह आचरण करेगा, वही पशु के समान भी आचरण करता है।

योगी की कठिनाई

मनुष्य के आतरिक परिवर्तन के लिए बड़े पैमाने पर किये गये सभी प्रयत्न भी समान रूप से असफल रहे हैं। जब कभी बाह्य उपायों-द्वारा साधुता का सगठन करने का प्रयास किया गया, सयोजकों के सामने वही कठिनाइयॉ आ खड़ी हुई। अन्वेषणकारी बेराह हो गये; स्वतंत्र विचार-काल के गिरजाघर शीर्ष के चारों ओर चक्कर लगाते रहे, किन्तु ऊॅचाई की ओर बढ़ने मे उनकी तनिक भी प्रगति

नहीं हुई। परिणाम पर साधनों के हावी होने का सिद्धात भी विपरीत सिद्धात के समान ही एक घातक ढाल तक ले जाता है।

यह स्पष्ट है कि अधिकारियों के नेतृत्व की तुलना में, इस अंतर्मुखी विडम्बना के अतर्गत सर्वसाधारण का भविष्य कुछ उज्ज्वल नही है। एक ढलान अन्वेषण और शुद्धीकरण तक ले जाती है, दूसरी बलात्कार और सगीन की नोक के समक्ष समर्पण की स्थिति तक पहुँचाती है, जिसका परिणाम होता है—गदगी से भरपूर गॉव, विषैले-घातक रोगों से पीड़ित बच्चो की कतारें और ट्रेकोमा (ऑखों का एक रोग, जिसमे दाने पड जाते हैं) के शिकार लोग। योगी और अधिकारी इसे पलायन कह सकते हैं।

२. गतिशील वर्णपट

किंतु वे ऐसा कहते नहीं। समन्वय मे असमर्थ होने और वर्णपट की मध्यवर्ती पट्टियोंवाले क्षीण समझौतों से असतुष्ट रहने के कारण, वे निश्चित गति से एक-दूसरे को आकर्षित और विकर्षित करते रहते हैं। यह आश्चर्यजनक नर्तन इतिहास के अत्यधिक उत्तेजक रूपों मे से एक है, जिस पर मार्क्सवाद प्रकाश डालने मे सर्वथा असमर्थ रहा है। अन्यथा वह सर्वश्रेष्ठ उपयोगी पथ-प्रदर्शक है।

कुछ ऐतिहासिक परिस्थितियो के अंतर्गत बडे पैमाने पर वर्णपट के एक छोर से दूसरे छोर तक आवागमन आरम्भ होता है—इन्फ्रा-रेड से अल्ट्रा-वायलेट अथवा अल्ट्रा-वायलेट से इन्फ्रा-रेड तक सर्वत्र उलट-फेर! अतलातिक तथा प्रशात महासागरो पर नियमित रूप से बहनेवाली सशक्त हवा के समान अधिकारी अथवा इन्फ्रा-रेडवाले छोर की तरफ सर्वत्र ऐसी ही उलट-फेर १९-वीं शताब्दी मे हुआ। वर्तमान परिस्थिति उसकी विपरीत दिशा के अनुकूल है। १९३०-३१ के आरम्भ से हम सब थोडी-बहुत अपनी जानकारी मे तथा अपनी इच्छा से अल्ट्रा-वायलेट वाले छोर—योगी—की ओर यात्रा कर रहे है।

जितनी कम चेतना से हम हवा के रुख के साथ आगे बढते हैं, उतनी ही अधिक इच्छा से हम इसे करते है। चेतना जितनी अधिक होती है, इच्छा उतनी ही कम हो जाती है। व्यक्तिगत रूप से मै बादवाले ढग से सम्बंधित हूँ। मेरी यह इच्छा है कि अभी भी कोई, अंत के लिए अल्ट्रा-वायलेट का सहारा लिये बिना, पूरी ईमानदारी, से इन्फ्रा-रेड-सम्बधी एक उपन्यास लिखता। किंतु कोई ऐसा वैसे ही नहीं कर सकता, जैसे कोई भी ईमानदार वैज्ञानिक आध्यात्मिक

परिशिष्ट के बिना भौतिक विज्ञान की पुस्तक प्रकाशित नहीं कर सकता अथवा कोई भी ईमानदार समाजवादी, सामूहिक मनोविज्ञान के विवेकहीनता-सम्बधी तथ्य पर समुचित रूप से ध्यान दिये बिना वामपथियों की पराजय के निरीक्षण पर पुस्तक नहीं लिख सकता। जो ऑख मूॅद कर अतीत से चिपटा रहता है, वह पीछे छूट जायेगा, किंतु जो सदैव अपनी उपेक्षा करने को तत्पर रहता है, वह किसी सूखी पत्ती के समान ही उडा कर दूर ले जाया जायेगा—कोई अगर कुछ कर सकता है, तो वह है अधिक चेतना के साथ इच्छा के कम वशीभूत होकर यात्रा करनेवाला।

किंतु क्या ऐसी इच्छागत पुनरनुकूलता सम्भव है? क्या वे, जो महान् वर्णपटीय उलट-फेर के बाद भी जीवित रहते हैं, सर्वथा उपयुक्त हैं अथवा सिर्फ बकवास करना जानते हैं? अपने कुछ साथी लेखकों के बारे मे सोचने पर जिन्होने अधिकारी-युग से लेकर योगी के युग तक की यात्रा बंदर की-सी चपलता से पूरी कर ली है, बरबस यह कहने का लोभ हो आता है—"मुर्दो को ही अपना अतीत दफनाने दो।" उनका उत्तर होता है— "किंतु हमारा मतलब यही है"—और इसमे कोई सदेह नहीं कि कम-से-कम वे विश्वास करते है कि उनका मतलब यही है। फिर भी किस लेखक ने ऐसी कोई पंक्ति लिखी है, जिसके सम्बध में वह यह कहे कि कम-से-कम उसका मतलब यह नहीं है? अतः कोई भी पहले उनसे घृणा करता है; तब बाद मे, उसे ज्ञात होता है कि उसकी घृणा गलत कारणों को लेकर थी और उसके बाद भी वह घृणा करता है, क्योकि इन्फ्रा-रेड से अल्ट्रा-वायलेट तक अपने निष्कासन के सही कारणो का उन्होंने वड़ी जल्दी पता लगा लिया था। ऐसे मामलो मे फूहड़पन आदरणीय है और वाक्-चपलता निंदनीय। उन्होने कभी हवा के विरुद्ध कटिबद्ध होकर आगे बढ़ने (नाव खेने) की चेष्टा नहीं की, स्वय को हवा के पहले झोके पर छोड़ दिया, जिसने उन्हे उनके स्थान से अलग कर और चारो ओर चक्कर खिला कर धीरे से दूसरे छोर पर ला रखा और शायद इसी से, जब आप उनकी बाते सुनते हैं, तो ऐसा लगता है, जैसे सूखी पत्तियॉ खड़खड़ा रही हों।

कलाप्रेमी अधिकारियों की तुलना में राजनैतिक अधिकारियो के लिए वर्णपटीय उलट-पुलट का परिणाम अधिक दुःखद है। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि वे आवश्यक रूप से गहराई के साथ इसका अनुभव करते हैं—शायद सचाई इसके विपरीत हो। विपत्ति के कालो मे, जब मूल्य गिर जाता है और मानव-जीवन मे वाक्-चातुर्य तथा विश्वासघात का हल्का, किंतु फिर भी प्रत्यक्ष

स्पर्श होता है, तब कलाकारों के मन में आत्मघात की भावना आती है, पर शायद ही वे कभी उसे अंजाम देते हैं। इसके विपरीत क्रातिकारी के मन मे शायद ही कभी आत्मघात की भावना आती हो, लेकिन जब ऐसा होता है, तो इसलिए कि उसके सामने कोई और रास्ता नहीं रह जाता। एक अर्थ मे, आध्यात्मिक जीवन की परिभाषा मृत्यु स्वीकार करने की शिक्षा के रूप मे दी जा सकती है। अधिकारी मनुष्य की उस श्रेणी में आता है, जिसे यह शिक्षा कम-से-कम मिलती है, फिर भी परिस्थितियों से बाध्य होकर दूसरे लक्ष्य की ओर अधिक तेजी से बढता है।

इस प्रकार कलाकार अपने स्थान से हटाये जाने का सबसे कम अवरोध करता है और क्रातिकारी सबसे अधिक। वास्तव मे, अधिकारी का परिचय ऐसी श्रेणी के मनुष्य के रूप मे दिया जा सकता है, जिसने अपनी अंतश्चेतना से पूर्णतः सम्बंध तोड़ लिया है। यह बात अधिक उल्लेखनीय है, क्योकि वह सदा एक सकट के भीतर रहता है और वह सकट है उन निषिद्ध क्षेत्रों से सम्बध स्थापित करने का लोभ। मेरे विचार से, लेनिन ने इसके लिए एक मुहावरे का प्रयोग किया था—"हम सब मृत व्यक्ति हैं, जो मौत से कुछ समय की छुट्टी लेकर आये हैं।" वस्तुतः वह स्थायी रूप से शमित यौवन बिताने के लिए शापित है। साधारणतः युवावस्था का महान् सकट और अस्तित्व को बनाये रखने की दुर्निवार समस्याओं का सामना एक बार ही होता है—दाँत निकलने की सीमित क्रिया के समान। किन्तु एक क्रातिकारी अपना सारा जीवन उग्र वातावरण मे बिताता है और वे दुःखद समस्याएँ उसके लिए रोजमर्रे की चीजें हो जाती हैं। दाँत निकलने की यह कष्टप्रद क्रिया एक बार जहाँ समाप्त हुई, साधारण नागरिक जीवन के सरल ढग का विस्तार सम्पूर्णता की ओर करते हैं, किंतु अधिकारी के साथ यह बात लागू नही होती।

स्थायी युवावस्था के काल को भोगते हुए भी, यौवन की तरगों से परे जितने आकर्षक और नीरस जीवन की कल्पना की जा सकती है, उसका आचरण उसी के अनुरूप है। मन मे यह धारणा आ जाती है कि उसकी अतश्चेतना का सम्बंध किसी विवेचक के सोफे से नही, बल्कि सर्जन की मेज पर रखे हुए अंग-विच्छेद करनेवाले चाकू से है। यथार्थतः बहुधा उसके सामने आनेवाली समस्याओं मे से एक है—सुषुप्तावस्था अथवा अंतश्चेतना मे स्वतः होनेवाली अन्य प्रक्रियाओं मे अपने को जाहिर न होने देना, और अगर वह एक अच्छा अधिकारी है, तो वह अपने इस प्रयास मे सफल भी हो जाता है।

वह असाधारण शमन का आश्चर्यपूर्ण प्रतीक है—मानव-जाति की सबसे प्रशंसनीय सफलताओ में से एक।

अब जीवन यदि दया के बिना असम्भव बन जाता है, तो स्वयं अपने पर दया की याचना के अभाव में भी शायद वह समान रूप से असम्भव है। अधिकारी दुःख-दर्द से परे नही है, किंतु उसके अनुभवो मे दुःख-दर्द के बजाय दुःख-दर्द की प्रतिध्वनि ही अधिक है— किसी कटे हुए अंग की पीड़ा के समान। वह अपने प्रति प्रशंसा के साथ साथ दया के लिए भी विवश करता है—कमजोर इसान के मन मे शक्तिशाली के लिए कभी-कभी जैसी निरीह-सी दया की भावना उभरती है, वैसी ही दया। ब्लाकी, लक्जेम्बर्ग, वेरा फिगनर-जैसे व्यक्तियों के सामने सिवा खामोश रहने के और यह अनुभव करने के कि हम कितने निस्सार तथा तुच्छ है, हम और कुछ नहीं कर सकते; फिर भी दया तो शेष रह ही जाती है।

अधिकारी जब अपने जीवन के सकट का सामना करता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भावना न्यायसगत है। यह एक दुःखद और उलझी हुई प्रक्रिया है, जिसके बारे में बहुधा गलतफहमी हो जाती है। इसके जितने भी रूप हो, वे व्यक्ति-व्यक्ति के साथ भिन्न हो सकते हैं, किंतु मूलतः वे सदैव एक हैं, कटे हुए अंग के प्रतिशोध-स्वरूप गेरार्ड डे नेवाल की एक कहानी की मुझे अस्पष्ट-सी याद है। इस कहानी मे एक न्यायाधीश एक चोर को हाथ काट दिये जाने की सजा देता है। कटा हुआ हाथ न्यायाधीश के पीछे पड जाता है और अंततः उसका गला दबोच देता है। अधिकारी के मामले में न्यायाधीश और अपराधी एक ही व्यक्ति है और कटा हुआ अंग हाथ नही है। अगर हम ध्यानपूर्वक परीक्षण करे, तो पायेंगे कि वह है योगी का अंतर्वर्ती सूत्र, जिसके द्वारा वह पूर्ण के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, और यदि फ्रायड के गम्भीर शब्दो का व्यवहार किया जाये, तो 'सागरवत् भावना' के साथ अधिकारी का यह विश्वास रहता है कि यह एक शौकिया अंग है; किंतु सकट-काल मे उसे अनुभव होता है कि बात ऐसी नही है। मानव और समाज का सम्बंध अचानक मानसिक परिवर्तन के लिए अपर्याप्त प्रमाणित होता है—इसके लिए मानव और विश्व का सम्बंध फिर से स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

इस स्थिति मे दो मे एक ही चीज सम्भव है। या तो टूटा हुआ सम्बंध फिर से जुड़े और प्रायश्चित्त के रूप मे मानव और समाज का सम्बंध टूट जाये (यह क्रातिकारी के रहस्यवादी में परिवर्तित होने अथवा अधिकारी के योगी मे

अचानक परिवर्तित होने का असाधारण मामला होगा) या फिर सम्बंध फिर से नहीं जुड़े—तब वह मृत नाल चक्करदार गेंडुरी का रूप धारण कर लेगी और अपने मालिक का गला दबोच देगी। यह उन भूतपूर्व क्रांतिकारियों का समान रूप से असाधारण मामला है, जिनकी आत्मा घुट कर मर गयी थी। वे मास्को के मुकदमों मे सिनोव्यू के समान शवतुल्य अथवा लावाल और डोरियट के समान पैशाची और दुरात्मातुल्य अथवा वामपथीय नौकरशाही के समान नपुसक तथा सूखे हुए रूप मे उपस्थित हो सकते हैं। रोजा लक्जेम्बर्ग के बाद कोई ऐसा पुरुप अथवा नारी नहीं हुई है, जिसमे 'सागरवत् भावना' और कार्य का वेग साथ-साथ हो।

दुर्भाग्यवश इन प्रक्रियाओं का वर्णन करने के लिए अभी तक हमारे पास वैज्ञानिक शब्द नहीं हैं। इतिहास मे 'चेतना-सम्बधी तत्त्व' को समझने के लिए ये प्रक्रियाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इसी से जितनी गम्भीरतापूर्वक इनका वर्णन करने की चेष्टा की जाती है, उतना ही वह अस्पष्ट और काल्पनिक हो जाता है। किंतु उससे श्रेष्ठ के अभाव मे उसी का उपयोग होता है। मनोविज्ञान के जो तीन मुख्य समकालीन स्कूल हैं, उनके वृहत् साहित्य मे इस परिवर्तन के एक भी मामले का इतिहास नहीं मिलता यथा एक क्रांतिकारी का मानवद्वेपी और रहस्यमय बनने का, जब कि इतिहास—चाहे वह प्राचीन काल का हो अथवा वर्तमान काल का—के पन्ने ऐसे उदाहरणों से भरे पड़े हैं। अन्य व्यक्तियो की तुलना मे इस प्रश्न के अधिक निकट जुग पहुँचा है। अतश्चेतना की उसने जो व्याख्या की है, उसका 'नाल' से अधिकाधिक सादृश्य है, किंतु दूसरे परीक्षण के लिए वह मनुष्यो की सर्वाधिक अयोग्य कोटि को अधिक पसद करता है, यथा धनी अधेड़ो को। और, ऐसा वह कुछ कारणो से करता है। अगर उसे अपने मरीजों का चुनाव जर्मन या रूसी श्रम-शिविरो मे बसनेवाली मनुष्य-जाति से करना होता, तो उसका सिद्धात सिर्फ केवल अपर्याप्त ही प्रमाणित नहीं होता, बल्कि उसे अपनी प्रणाली मे इतने नये निर्णायक तत्त्वो को शामिल करना पडता कि उसकी परिभाषा और परीक्षण-परिणाम दोनो ही क्षार हो जाते। अधिकारी के वर्णपटीय उलट-फेर एक मनोवैज्ञानिक के लिए समस्या-रूप हैं।

वर्णपट के अधिक बेतरतीब मध्यवर्ती पट्टो की ओर ध्यान देने से हमे ज्ञात होता है कि रहस्यमयी धारा के प्रति उनकी प्रतिक्रिया रहस्य प्रकट कर देनेवाली है। वामपथियों की क्रमबद्ध पराजय, पुराने दल और उनके पस्त नेता, उनकी

योजनाएँ और प्रतिज्ञाएँ, विचार और आदर्श, एवं सबसे अधिक स्वयं उनकी मूर्खतापूर्ण और निरर्थक आशाएँ—इन सबके प्रति घृणा की तीव्र चेतना के रूप मे ही पहले यह प्रतिक्रिया वर्णपट के गुलाबी रगवाले प्रदेशो में प्रकट होती है। यह गुलाबी रग की प्रतिक्रिया भावनात्मक आरम्भ-बिदु है। फिर इस प्रत्यक्षीकरण की बारी आती है कि सर्वसाधारण के निकट पहुँचने का हमने जो तरीका अपनाया था, निश्चय ही, उसमे मूलतः कहीं कुछ भूल थी। इसके बाद यह प्रकट होता है कि जिस स्थान पर—सर्वसाधारण की सजगता के मामले मे—उन्हें असफलता मिली, फासिज्म वहीं जबर्दस्त रूप से सफल हुआ। असफल व्यक्ति के दिल में वह सफलता सिर्फ ईर्ष्या की भावना को ही जन्म देती है। अगर हम अधिक निकट से देखे, तो हमे ज्ञात होगा कि फासिज्म के प्रति वर्णपट के गुलाबी रगवाले क्षेत्रो की प्रवृत्ति ईर्ष्या की है, घृणा की नहीं।

वर्णपटीय उलट-फेर से केवल वैज्ञानिक को ही निश्चित रूप से सबसे अधिक लाभ होने वाला है। एक प्रकार से उसी ने इस आदोलन का आरम्भ किया। बाद मे उसका वेग, वह जहाँ जाना चाहता था, उससे भी आगे उसे ले गया। यह बात याद रखनी चाहिए कि विवेकरहित अथवा अल्ट्रा-वायलेट तत्त्व—जो वर्तमान पदार्थ विज्ञान, प्राणिविज्ञान और मनोविज्ञान को इतने सशक्त रूप में विषैला कर रहा है—चोरी-छिपे प्रयोगशालाओ में लाया जानेवाला दार्शनिक लोक-व्यवहार नहीं था, बल्कि प्रयोगशालाओ के बाहर ही वह जन्मा, पनपा और नये दार्शनिक वातावरण की उसने सृष्टि की। सबसे अद्भुत उदाहरण है, पदार्थविज्ञान का विकास, जो पिछली शताब्दी के अंतिम वर्षों तक अत्यत सफल एवं विवेकपूर्ण अधिकारी-विज्ञान था और तब से अधिक-से-अधिक योगी-विज्ञान होता चला आया है। पदार्थ, समय, स्थान, कारण और परिणाम का परस्पर-सम्बंध, परिमित प्रमाण की यथार्थता और परिमित के बर्ताव का अनुमान करने की शक्ति में विश्वास—ये सब भौतिक विज्ञानवेत्ता की उँगलियों से होकर बालू के समान तब तक फिसलते गये, जब तक कुछ भी बाकी नहीं रहा, सिवा इस प्रकार के कुछ औपचारिक कथनो के—"अगर चौपड़ के खेल के एक छोटे पॉसे का निर्माण इस ढग से किया गया है, जिससे इक्का की ही ओर उसके गिरने का अनुमान लगाने का हमारे पास कोई कारण न हो, तो यह आशा करने का हमें अधिकार है कि पॉसे के अधिक बार फेके जाने के दौरान मे उसकी प्रवृत्ति इक्के की ओर गिरने की न होगी।"

निश्चय ही, इस कथन की यथार्थता से इनकार नहीं किया जा सकता, किंतु विश्व के उन रहस्यो के लिए—जिन्हें हमें बताया गया है—हमारी जो भूख है, उसे देखते हुए यह कथन किंचित् सकोचपूर्ण है। आधुनिक भौतिक विज्ञान-वेत्ता अवश्य ही, इस बात से इनकार करता है कि उसका काम किसी भी चीज को 'समझाना' है। इसके स्थान पर वह ऐसे सूत्रो के निर्माण मे अतीव आनंद अनुभव करता है, जो उसके कथनों मे निहित अशुद्धियो की मात्रा विशुद्ध रूप से स्थापित कर देते हैं, अर्थात् केवल व्याख्या करने की नही, बल्कि भौतिक संसार में वस्तुतः क्या हो रहा है, इसका विवरण देने में भी भौतिक विज्ञान की अयोग्यता। कुछ काल पूर्व लाप्लाके ने सोचा कि अगर विशिष्ट बुद्धिमत्ता सभी अणुओ और एक निर्धारित क्षण के उनके वेग का ब्यौरा दे सकती है, तो वह ससार के अंत तक की सभी घटनाओ की भविष्यवाणी कर सकती है—यहाँ तक कि मि. चर्चिल के सिगारों के मार्के की भी। अंतिम अधिकारी-काल के भौतिक विज्ञानवेत्ताओं और दर्शनशास्त्रियो ने भौतिक नियतिवाद के घातक फंदे को पार कर जाने की चेष्टा की; पर इससे बचाव की कोई सूरत न थी। प्राथमिक अवस्था की स्वच्छंदता और 'प्राकृतिक नियमों' के कुछ समूह के, जो सारी यात्रिक प्रणाली निश्चित करते थे, प्राथमिक चुनाव के अलावा, १९-वी सदी के भौतिक विज्ञान मे ससार किसी बड़े यत्र के समान गतिशील था—उसे स्वतत्रता नहीं थी। बीसवी सदी के भौतिक विज्ञान मे यह प्राथमिक स्वच्छदता या स्वतंत्रता समय और स्थान के सभी सम्भव कटावो पर, अतिसूक्ष्म परिमाणो मे बराबर-बराबर वितरित कर दी गयी है। प्राथमिक सृष्टि रचनात्मक अविरामता बन गयी है। निश्चय ही 'स्वतत्रता' और 'स्वच्छदता' उन तत्त्वों की उपस्थिति की सूचना-मात्र देनेवाले शब्द हैं, जिनकी व्याख्या भौतिक विज्ञानवेत्ता नहीं कर सकता और न उनका ब्यौरा ही दे सकता है। १९-वीं शताब्दी का भौतिक विज्ञान ऐसे ससार का विवरण देता है, जिसकी परिभापा बड़े रूखे ढग से एक धब्बेदार प्राथमिक अवस्थावाले ससार के रूप मे दी गयी है, समकालिक भौतिक विज्ञान एक समान रूप से मलिन विश्व का विवरण देता है—एक मोटे दाने वाले फिल्म की तरह। (हीजेनबर्ग के अनिश्चितता-सिद्धात मे दानेदार बनाने की इस क्रिया की परिभापा दी गयी है और कार्य के परिमाण 'एच'-द्वारा इसे दर्शाया गया है।) हम इस ससार को 'विश्वदेववादी', 'स्वतत्र', 'अस्थिर', 'गणनावादी', 'पारलौकिक' अथवा 'इच्छावादी' कहे, यह अधिक या कम अपनी-अपनी रुचि की बात है। वास्तव

मे, ध्यान देने की जो बात है, वह यह कि भौतिक विज्ञानवेत्ता के पैमाने के यन्त्र ऐसे तत्त्वो की उपस्थिति की सूचना देते हैं, जिनका प्राकृतिक रूप में माप नहीं लिया जा सकता। और, यही कारण है कि दूसरो की अपेक्षा भौतिक विज्ञानवेत्ता अल्ट्रा वायलेट की ओर अधिक सचेत होकर बढ़ता है[1]।

३. लोलक (Pendulum)

अधिकारी, कलाकार, सदिच्छापूर्ण सदिग्ध मानव, वैज्ञानिक, इन सबके महान् वर्णपटीय उलट-फेर के प्रति, केवल प्रतिकार के तरीके ही भिन्न नहीं हैं, बल्कि इसमें शामिल होने के उनके उद्देश्य भी अलग-अलग ढंग के प्रतीत होते हैं। क्या इस तीर्थयात्रा का कोई समान कारण है?

---

१. मैं वैज्ञानिक की बात कर रहा हूँ, किसी नीम-हकीम की नहीं। अगर कम्यूनिस्ट पैम्फलेट [परचा] किस्म की अधिकारी पत्रकारिता बुरी है, तो गेराल हर्ड किस्म की योगी-पत्रकारिता उससे भी बुरी है। दोनों जिस विचार का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी पर अविश्वास करते हैं, लेकिन जब कि अधिकारी-पत्रकारिता के मामले मे यह दलील पेश की जा सकती है कि उसके दृढ विश्वासों के अनुसार पर्याप्त प्रचार में कुछ कपट-व्यवहार की गुंजाइश हमेशा रहती ही है, दूसरे मामले में यह बचाव नहीं अपनाया जा सकता। योगी-पत्रकारिता के कुछ उदाहरण ये हैं:—

"इलियाह इजरायल के बादशाह के लिए मानसिक संक्रमण सम्बधी गुप्त-सेवा-एजेंट का कार्य भी करता है" (गेराल्ड हर्ड, पेन, सेक्स ऐंड टाइम, पृष्ठ १२९)। "हम जानते हैं, मोसेज़ विवाहित था। अतः चेतना-वृद्धि के लिए एक उपाय के रूप में उसने पूर्ण ब्रह्मचर्य का उपयोग नहीं किया होगा" (इविद, पृष्ठ १२३)। "इस-लिए फिर भी, वैजरोली, उन लोगों को, जो स्वयं मार्ग-शोध नही कर सकते, दूसरा मार्ग दर्शा सकता है कि अगर 'सही ध्यान' समाधि (पाली में भी यही शब्द है) के द्वारा सामूहिक चेतना (हर्षोन्माद) सिर्फ सम्भव ही नही है, बल्कि चेतना के विकासवाद-सम्बधी स्थिति में वस्तुतः प्रवेश पाना है, तब निश्चय ही, हमे कोई अन्य लक्ष्य नहीं बनाना चाहिए और यौन की समस्या इसी के जरिये और सिर्फ इसी के जरिये अंततः अपना निदान पा लेगी" (इविद, पृष्ठ २२९)। नमूने के लिए इतना ही ठीक है, निहित वस्तुओं के विश्लेषण के लिए अधिक स्थान की आवश्य-कता होगी; किंतु परिणाम समान रूप से निराशाजनक होंगे।

कुछ हद तक, भौतिक विज्ञान में हुई क्रांति ने कलाकार पर प्रभाव डाला है, मनोविज्ञान में हुई क्रांति ने राजनैतिक दृष्टिकोण को प्रभावित किया है और इस तरह के परस्पर-प्रभावों का पता लगाना आसान है। वे प्रभाव शक्ति की कर्ण रेखाओं के एक साँचे का निर्माण करते है, किंतु वह साँचा जालसूत्र का है, एक सकारण शृखला का नहीं। क्वाटम-यान्त्रिकता से लेकर बुचेरिन के स्वतः अभियोग के बीच कोई हेतुक शृखला नहीं है, किंतु अप्रत्यक्ष रूप से, वे सभी कर्णो-द्वारा आपस में जुडे हैं। हम एक समान कारण की माँग नहीं कर सकते, हम केवल विभिन्न कारणो मे सार्वलौकिक भाजक सख्या की ही माँग कर सकते हैं।

वीमर गणतत्र के सकटपूर्ण वर्षों मे, जब कम्यूनिस्ट अथवा फासिस्ट क्रांति समान रूप से सम्भव नजर आती थी और एक ही चीज असम्भव प्रतीत होती थी—नष्टप्राय पुरानी शासनपद्धति का जारी रहना, उस समय अर्नेस्ट जुएंगर-नामक एक व्यक्ति ने 'पूँजीपतियों के विरोध की सामूहिक बीमारी' वाले मुहावरे पर नयी कल्पनाएँ गढ़ीं। इस अस्पष्ट किंतु प्रबल लालसा मे, सचमुच ही, दूसरे प्रकार की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियोंवाले व्यक्तियो ने भी सहयोग दिया। शायद जिस सार्वलौकिक भाजक सख्या की हम खोज कर रहे हैं, 'अनात्मवाद-विरोध की बीमारी' के नाम से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा दी जा सकती है। यह हेतुवाद, छिछला आशावाद, क्रूर तर्क, अहकारयुक्त आत्मविश्वास और १९-वी सदी की प्रोमेथियन प्रवृत्ति से सम्बधित है, यह रहस्यवाद, अद्भुत विचार, विवेकहीन नैतिक मूल्यो और मध्यकालीन गोधूलि-वेला-द्वारा आकर्षित है। सक्षेप मे, यह उन्हीं वस्तुओं की ओर अग्रसर हो रहा है, जिनसे इन्फ्रा-रेड की ओर होनेवाला अंतिम तो नहीं, पर उससे पहलेवाला विशाल वर्णपटीय उलट-फेर दूर हट चुका है। स्पष्ट ही, इन आदोलनों में राजनैतिक दलो के अधिकारो को उलट-पुलट करनेवाली एक लय रही है।

हेतुवाद से लेकर कल्पनावाद के युगो तक राजनैतिक दलों के अधिकार की उलट-पुलट और उसकी वापसी, इतिहास के मूल न्याययुक्त आदोलन की धारणा के विपरीत नहीं है। वह किसी नदी मे ज्वार-भाटा उत्पन्न करनेवाली लहरों के समान है, जो उनके बावजूद सागर की ओर बढ़ती जाती है। इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या के घातक खोखले हिस्सों मे एक यह है कि यह सिर्फ नदी की दिशा से सम्बधित थी—लहरो से नहीं। नाजीवाद का जन-मनोविज्ञान-सम्बधी पहलू मार्क्सवादी परिभाषाओं—नदी की दिशावाली परिभाषाओं—में व्याख्या के योग्य नहीं है। हमे जरूरत है ज्वार-भाटा उत्पन्न

करनेवाली लहरों की, जो इसका कारण बता सके। दूसरी ओर, हमारी यह राजनैतिक दलो के अधिकार की उलट-पुलट-मात्र ही इतिहास की पथ-प्रदर्शिका नही है। लहरो के सम्बंध मे बाते करने के पूर्व हमें नदी के सम्बंध में अवश्य जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

यह कल्पना करना शायद् अधिक आपत्तिजनक नहीं है कि जन-मनोविज्ञान-रूपी वर्णपट में होनेवाले, राजनैतिक दलो के अधिकार की यह उलट-पुलट एक ऐसी परिपाटी है, जो व्यक्ति के सोने और जागने के लयबद्ध परिवर्तन के समान है। जन-मनोविज्ञान के विवेकहीन अथवा अद्भुत विचार के काल नींद् और स्वप्न के काल हैं। यह आवश्यक नहीं कि स्वप्न शातिपूर्ण हो; अधिकतर वे बुरे तथा भयंकर सपने ही होते हैं, किंतु अतश्चेतना मे इन सामयिक गोतो के बिना अगले चैतन्य, प्रोमेथियन अथवा अधिकारी-काल के लिए अत्यत आवश्यक पोषण-रस हैं, वे उपलब्ध नही हो सकेगे। शायद प्रत्येक विवेकहीन काल के बाद जागृतिकाल आता है और वे इस दौड की सूची की योग-रात्रियॉ और अधिकारी-दिवसो की परम्परा हैं। और, शायद यह हमारी वर्तमान सभ्यता मर नही रही है, सिर्फ नीद् मे है।

फ्रेंच फ्लू*—फ्रांस का एक साहित्यिक रोग

इस देश मे जो साहित्य के कर्ता-धर्ता है—साहित्य सम्पादक, आलोचक, निबधकार, परनासस (प्राचीन काल मे विद्या की पवित्र देवियॉ) के व्यवस्थापक —अभी हाल ही, बार-बार फैलनेवाले सक्रामक रोग, फ्रेंच फ्लू, के शिकार हो गये हैं। इसका रोगी साधारणतः संतुलित, सचेत और सशयात्मक प्रवृत्ति का होता है। इस रोग के लक्षण ये हैं कि फ्रेंच काव्य अथवा गद्य की एक पक्ति भी दिखायी देते ही, रोगी गुण-दोष-विवेचक अपनी आतरिक शक्ति, बिना किसी शर्त्त के, उसके अधीन कर देता है। जिस प्रकार गर्मी के दिनो मे होनेवाले ज्वर मे, उसकी उग्रता बढ़ा देने के लिए हवा का एक झोका पर्याप्त है, उसी प्रकार, 'बाडले वेइस्से', 'क्रेवे-केयूर', 'पैट्रोई' अथवा 'मिनेट्टे' की तरह का एक भी फ्रेंच शब्द तीव्र ऐंठन पैदा करने के लिए पर्याप्त है—उसकी ऑखों मे पानी आ जाता है, उसका हृदय कड़वी-मीठी ऐंठनो से सिकुड जाता है, उसकी नाड़ीशून्य ग्रथियॉ पूर्ण हर्षातिरेक से रक्त-धारा मे बाढ ला देती हैं। अगर कोई अग्रेज कवि "मेरी पितृभूमि", "मेरी आत्मा", "मेरा हृदय" आदि जैसे शब्द व्यवहार करने का साहस करता है, तो उसकी कुशल नहीं, किन्तु अगर एक फ्रेंच कवि 'ला पैट्री', 'ला फ्रास', 'माश्योर' और 'मान अमे' के बारे मे सगीत-सम्बधी सामान्य वार्ताओ को अलग-अलग बतलाता है, तो रोगी श्रद्धा से कॉपने लगता है।

पिछले वर्ष फ्रास से तीन कृतियॉ प्रकाश मे आयी हैं। तीनों दैवी साहित्यिक प्रकाशन के रूप मे ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। ये प्रकाशन हैं—गिडे (Gide) का "इमेजिनरी इटरव्यूज" (Imaginary Interviews), अरागन (Aragon) की कविता-पुस्तक 'ले क्रेवे-केयूर (Le Creve Coeur) और वरकर (Vercor) द्वारा लिखित "ले साइलेस डे ला मेर" (Le Silence de la mer)। मने गिडे-लिखित मुलाकातों को केवल बहुत सावधानीपूर्वक ही नहीं, बल्कि बडी आतुरता से पढा—उतनी ही आतुरता से, जितनी आतुरता से मगल ग्रह से आनेवाले समाचारों को कोई सुनेगा। किन्तु पढ कर बडा दुःख हुआ। गिडे की

---

* प्रथम बार ट्रिब्यून [लदन], नवम्बर, १९४३ में प्रकाशित

रचनाओं में सदा एक छिपे अहकार की भावना है; उसके और उसकी पुस्तकों के बारे में सदा एक क्षीण और झीना वातावरण रहा है। फ्रास की नवयुवक पीढ़ी पर उसका प्रभाव वस्तुतः शोचनीय है (उसकी विकृत शृगारिकता के कारण नहीं, जिसके लिए पिची के फासिस्टों ने उसका तिरस्कार किया था; पुस्तके पढ कर ही कोई परिवर्तित नहीं हो जाता)। ऐसा इसलिए हुआ कि उसकी रचनाओं मे अध्यात्मवाद के हठ की झलक तथा अपने संप्रदाय का आग्रह है। उसे पढने से उसके किसी असाधारण प्रणाली से सम्बधित होने का भ्रम होता है तथा उसमें कुछ ऐसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का समावेश है कि जिनकी व्याख्या करने की आप चेष्टा करे, तो वे सब बालू की भॉति हाथ से सरकते दिखायी देगे। युवा बुद्धिजीवियो के लिए गिडे का संदेश एक कथा में वर्णित बादशाह के उन नवीन वस्त्रों के समान ही है, जिनके बारे में कोई भी यह कहने का साहस नहीं कर सका कि वह उन्हें नहीं देख पा रहा है।

फ्रास के इस तरुण मध्यम वर्ग की मनोदशा बड़ी खंडित थी। अपने मानव-द्वेषी सिद्धात और निज स्वार्थ की भावना के पक्ष मे इन तरुणों के पास यह बहाना था कि, यह सब-कुछ उनके आध्यात्मिक जीवन को स्पर्श नहीं कर सका है। दिन में वे पुरानी मोटरों का धधा करते और रात मे बादशाह के वस्त्र पहन लेते। 'इमेजिनरी इटरव्यूज' (काल्पनिक मुलाकाते) को देखते हुए, गिडे मे, अगर बुराई की दिशा में नहीं, तो अच्छाई की ओर भी, कम परिवर्तन आया है। उसकी रचनाओ में वही हवाई बकवास है, एक फीकी प्रतिप्रभा—जिसका न रूप है, न आकार। मैंने कुछ महीने पहले वह पुस्तक पढ़ी थी, किन्तु मुझे न तो उसका एक विचार याद है, न एक मुहावरा। बालू की भीत गिर गयी है और अवशेष के रूप मे, कुछ अस्पष्ट गध-सी रह गयी है। फिर भी साहित्य के साथ प्रयुक्त शब्द "सदेश" का यदि कोई अर्थ है, तो यह कि शब्दों की स्मृति धूमिल पड जाने के बाद, इसका साराश आपको स्मरण रहे।

लुई अरागन के सम्बन्ध मे, 'ले क्रेव-केयूर' की प्रस्तावना में हमने पढा—"मै उससे (अरागन) पहली बार नेउली (Neuilly) के मेले मे, ग्रीष्म की एक शाम को, मिला। वहॉ वह और सररियलिस्ट्स (कला तथा साहित्य के क्षेत्र मे प्रतिच्छाओं के जरिये अवचेतन मस्तिष्क को समझाने के लिए, २०-वी सदी में एक आदोलन चलानेवाले) का दल एक महिला के—जो उनके लिए विश्व-भर मे एकमात्र महिला थी—इर्द-गिर्द मॅडरा रहा था। वह महिला थी सुन्दर और बुद्धिमान फेम्मे-ट्राक (Femme-tronc)। उन लोगो की श्वेत

टाइयाँ अँधेरे में चमक रही थीं। हाथ-पाँव-विहीन फेम्मे-ट्राक पहियोंवाली कुर्सी पर बैठी किसी ऊर्ध्वकाय मूर्ति की तरह लगती थी। वह अपने मुँह से कलम पकड़ कर अपनी तस्वीर पर हस्ताक्षर कर रही थी। अरागन ठिगना और काफी मजबूत था। उसका रग पीला था और आँखे निस्तेज। उसके काले बाल तरतीब से पीछे की ओर सँवारे हुए थे। बाद मे, वह मारक्वीस द्वीप-समूहों मे कला तथा साहित्य-सम्बंधी अभियान—जिसके लिए उन्हे स्वप्न मे आदेश मिला था—पर चला गया। मायाजाल और आत्मघृणा की एक अवधि के बाद उसने राजनैतिक आधारो पर सररियलिज्म से सम्बध-विच्छेद कर लिया और अधिक व्यक्तित्वहीन कम्यूनिस्ट पार्टी में शामिल हो गया।" .

वह फिर भी एक उत्कृष्ट कवि हो सकता था और कोई उसके निजी और राजनैतिक अतीत के बारे मे चिन्ता नहीं करता, किन्तु फ्रेन्च फ्लू के प्रचारको ने आज अरागन को सिर्फ कवि ही नहीं रहने दिया है, बल्कि वामपंथियों का नायक और शहीद बना दिया। वे हमसे कहते हैं कि "फौज के विरुद्ध एक कविता लिखने के लिए वह गिरफ्तार किया गया, रूस भेजा गया........" इत्यादि और जब युद्ध छिड़ा, वह "एक कम्यूनिस्ट की हैसियत से एक ऐसे स्थान पर रखा गया, जहाँ विशेष रूप से संकट था... .." किन्तु सत्य यह है कि कम्यूनिस्ट के रूप मे अरागन का जीवन सररियलिस्टिक परम्परा में था। कार्नफोर्ड और राल्फ जब मोर्चे पर मरे और मालरौक्स ने गणतंत्रीय वायुसेना के अंतरराष्ट्रीय जत्थे का संगठन किया, उस समय अरागन लाउडस्पीकर लगी एक गाड़ी मे स्पेनिश मोर्चे पर घूमता था और सैनिकों को अपनी कविताएँ सुनाता था। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं है कि सभी लेखकों को उनका अनुकरण करना चाहिए। मेरा तात्पर्य तो सिर्फ इतना ही है कि अगर शब्दो का कोई अर्थ होता है, तो वे सब वीर थे—शहीद थे, पर वे अरागन की तरह नहीं थे। 'फौज के विरुद्ध कविता लिखने के लिए' उसकी गिरफ्तारी एक दिन का नाटक थी। वह एक फरार की हैसियत से रूस नहीं गया, जैसा हम लोगों को बताया जाता है, बल्कि वह लेखकों की काँग्रेस में व्याख्यान देने के लिए एक भ्रमणकारी की तरह गया था। वह ऐसे किसी पद पर नहीं रखा गया, जहाँ विशेष रूप से सकट था, बल्कि मेडिकल कोर में उसे एक छोटे अफसर का पद मिला था और निस्सदेह, दूसरों की तरह उसने भी अपना कर्तव्य निभाया। मैं पुनः कहता हूँ कि कोई भी लेखकों से यह आशा नहीं करता कि वे शूरवीर नायक भी हों, जैसे दृष्टात के लिए,

इशरवुड के फौजी जत्थे में शामिल होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती, किन्तु वामपंथियो का संघर्ष कोई संगीतपूर्ण नाटक नहीं है। साहित्यिकों का आपेरा-नायको की तरह सज्जित होना—जो फ्रेंच फ्लू का दूसरा लक्षण है—बरबस ही किसी को लज्जा का अनुभव करने के लिए बाध्य कर देता है—अगर और किसी कारण से नहीं, तो कम-से-कम अपने मृत व्यक्तियो के प्रति आदर के कारण ही।

कविताओ के अलावा, 'ले क्रेवे-केयूर' में अरागन-लिखित एक निबंध भी है, जिसका शीर्षक है "सन् १९४० के अनुप्रास"। यह निबंध बहुत ही तथ्यपूर्ण है। इस निबंध मे, निबंधकार हमें उन बहुत-से नवीन परिवर्तनों के बारे मे बताता है, जिनका उसने फ्रेंच काव्य में उपयोग किया है। पहला परिवर्तन है मुक्त छंदवाली कविताओ से छंदोबद्ध कविताओ की ओर लौटना —जो उसकी समझ मे, सरियलिस्ट तरीके से फ्रेंच पराजय से जुड़ी है।

"हम सन् १९४० के सम्बंध मे लिख रहे हैं। मैं अपनी आवाज बुलंद करके यह कहता हूँ कि जब नवीन विश्व का निर्माण हो सकता है तो यह कहना कि नये छंदो का निर्माण सम्भव नहीं है, गलत है। अब तक फ्रेंच काव्य मे रेडियो की अथवा नवीन भूमितिशास्त्र की भाषा का प्रयोग किसने किया है?

इसी तरह की और भी बाते हैं। इस नवीन लेखकों के दल से, सन् १९३१-३९ में ही, यह सब सुन चुके हैं (कविताओं मे वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग) और आडेन (Auden) की अपूर्व प्रतिभा ने—चाहे हम सिद्धाततः सहमत हो अथवा नहीं—इसे स्वीकार करने के लिए हमे बाध्य कर दिया। अरागन ने जो भी प्रयोग किये, उनमें वह सदा उस वर्ष पीछे रहा। उसने कम्यूनिज्म का पता तब लगाया, जब मास्को मे शुद्धीकरण हो रहा था और छदों में नवीन भूमितिशास्त्र की भाषा का प्रयोग भी उसने फ्रास की पराजय के समय किया। उसकी दूसरी खोज विराम-चिह्नो से सम्बधित है और उसकी इस खोज के फलस्वरूप, विराम-चिह्नों के अभाव में उसके सभी वाक्य मिल कर यो हो जाते हैं, जैसे आपकी जेब में रखे चाकलेट पिघल कर एक हो जायें! उसका तीसरा अन्वेषण पारिभाषिक भाषा मे "अपूर्ण प्रास" कहा जा सकता है—डान और गेटे के समय से कवियो ने बाध्य होकर अपूर्ण प्रासो का प्रयोग किया है–किंतु उन्होंने कभी अपनी कमजोरी को दर्शन का रूप देने की चेष्टा नहीं की और निश्चय ही, उन्होंने अपने विफल छंदों को लोगों के सामने पथ-प्रदर्शन के लिए नहीं रखा, जैसा अरागन करता है। अरागन दृष्टात के लिए अपने कई नये

छदों के उद्धरण देता है, जिन्हें पढ कर लोगों के सिर के बाल खड़े हो जाते हैं और वह अपनी व्यावहारिक मर्यादा का पालन करते हुए, अंत मे, लिखता हैं—

"अब मैं अपने दृष्टात नहीं दूँगा। मुझे विश्वास है कि नवीन काव्य समीकरणों के इच्छुकों को मैंने राह दिखा दी है। मुझे उनके सतुष्ट समर्थन की अभी से अपेक्षा है, जिनके द्वारा सन् १९४१ के वसंत में इसी प्रकार के काव्य की रचना होगी।....."

'ले क्रेवे-केयूर' के सम्बध में अरागन की यह निजी व्याख्या है। जहाँ तक कविताओं का प्रश्न है—फ्रास के लिए जो हमारा ममत्व है, उसकी पृष्ठभूमि पर आधारित—वे पढने में अत्यधिक मधुर लगती हैं। सर्वप्रथम, प्रत्येक पक्ति छदमय है—हमारे लिए यह एक ऐसी प्रसन्नता की बात है, जिससे हम एक लम्बे अर्से से वंचित रहे हैं। दूसरे, वे फ्रासीसी भाषा मे हैं—अर्थात्, किसी मिठाई के समान ही वे लोगों के मुँह मे घुल जाती हैं। "गाड़ी जब स्टेशन पर खड़ी हो, तो आपको शौचालय का प्रयोग नहीं करना चाहिए" —फ्रेंच मे लिखी उसकी इस पंक्ति का अर्थ सिर्फ यही होता है, किंतु सुनने मे यह लयबद्ध और बड़ी सुरीली लगती है—विशेष कर अगर चार वर्षों से आपका उस महादेश से कोई सम्पर्क न रहा हो! फ्रास के एक निराश प्रेमी के लिए पेरिस के भूमिगत स्टेशनों के नाम भी (वेविन, लेब्रट्स, चाउमॉट, रीएयूमर, सेबास्टोपाल, पोर्टे डे लिलास) उसके गृह-प्रेम की भावना को अनुप्रेरित करते हैं। पहले तो हृदय में कम्पन और खिचाव की अनुभूति होती है, फिर फ्रेंच फ्लू का विकार आरम्भ हो जाता है। गृह-प्रेम की इन पूर्व-विचारित भावनाओं से पूर्ण एक ऐसी स्थिति के कारण—जिसमें अंग्रेज कवि अपने दृढ़ समालोचकों का सामना करता है—अरागन, सम्भवतः एक कुशल कलाकार माना जायेगा—छोटे तलैयों के बडे मेंढकों में से एक—"जो अपने आचार-विचार, अनुकूल अफवाहों, अपनी कभी अव्यावहारिक तथा कभी उन्मत्त सी कल्पना और इसी प्रकार की अन्य बातों को लेकर (किसी अन्य के सहारे) एक दिन एक अच्छा कवि बन जा सकता है।" किंतु 'क्रेवे-केयूर' को समस्त यूरोप का "आर्तनाद" कहना—जैसा कि किया जा चुका है—यूरोप के लिए अपमानजनक और उसकी मृत महान् आत्माओं के लिए निंदनीय है।

अंत में, वरकर-लिखित 'ले साइलेंस डे ला मेर' की बारी आती है। कहा जाता है कि इसका लेखक एक प्रख्यात फ्रासीसी लेखक है और यह उसका कल्पित नाम है। इस पुस्तक की कथा इस प्रकार है—

एक जर्मन अफसर ने एक ऐसे फ्रासीसी घर में शरण ली, जिसमें एक वृद्ध मनुष्य अपनी भतीजी के साथ रहता है। अफसर का नाम है वर्नर वान एब्रेनाक। वह एक युवा लेखक और संगीतज्ञ है—सुन्दर, सुसस्कृत और अत्यधिक संवेदनशील। फ्रास से उसे प्यार है, वह फ्रास के श्रेष्ठ साहित्य का मर्मज्ञ है, और वह फ्रास की प्रशंसा करता है। उसे विश्वास है कि युद्ध की समाप्ति एक स्थायी शाति के रूप में होगी—जर्मनी और फ्रास के बीच एक प्रकार के आध्यात्मिक गठबंधन के रूप मे। और, यह सब होगा फ्रास के सास्कृतिक संरक्षण मे! इसी के सम्बंध में वह बाते करता है। सन् १९४०–४१ मे सारी शरत्ऋतु, बैठक में, आग की ओर पीठ किये, वह अपने धीमे, विनम्र और आमोदकारी स्वर में, उस वृद्ध पुरुष और उसकी भतीजी से बाते करता रहता है—यद्यपि वे दोनों कभी एक शब्द भी नहीं बोलते, कभी अपना मुँह नहीं खोलते। सौ से भी अधिक शरत्-कालीन सध्याएँ बीत जाती हैं और वे दोनों बहरे-गूँगो की एक निष्प्राण-सी निस्तब्धता मे उसका स्वगत-भाषण सुनते रहे हैं—वृद्ध पुरुष अपना पाइप पीता रहता है, भतीजी अपनी कशीदाकारी मे लगी रहती है। अंत में, वर्नर छुट्टी पर पेरिस जाता है। उसे वहाँ ज्ञात होता है कि नाजी पशु हैं (वेइमर गणतत्र का समर्थक, सुसंस्कृत, अत्यधिक सवेदनशील आदि होने पर भी उसके दिमाग मे यह बात पहले नहीं आयी थी) और इस निराशा के आवेग मे, वह स्वेच्छा से, रूसी मोर्चे पर जाकर, स्वयं को मृत्यु के हाथों सौप देना चाहता है। जब वह अपने इस निर्णय की घोषणा करता है, तो वृद्ध पुरुष की भतीजी (जो निश्चय ही, उससे प्यार करती है, जैसा वह उससे प्यार करता है) उससे प्रथम और अंतिम शब्द कहती है—"अलविदा!" पुस्तक में यह कथा वृद्ध पुरुष के मुँह से कहलवायी गयी है।

अब इस कहानी पर पहले जरा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार कीजिये। क्या आप किसी ऐसे चेतनशील मानव की कल्पना कर सकते हैं, जो लगातार सौ से भी अधिक राते ऐसे व्यक्तियो से बाते करने में गुजार दे, जो उसकी उपेक्षा करते हैं और उसकी बातों का जवाब तक नहीं देते? अधिक से अधिक, दूसरी ही शाम को उसका धैर्य जवाब दे जायेगा और वह पागलों की तरह कुछ कर गुजरेगा—जैसे, वह वृद्ध पुरुष को कधो से पकड कर झकझोर देगा अथवा किवाड जोरों से बंद करता हुआ अपने कमरे मे चला जायेगा और फिर कभी बैठक मे नहीं आयेगा। "उन सौ से अधिक रातो" में वृद्ध व्यक्ति और उसकी भतीजी ने जो रुख अपना रखा है, वह भी इसी प्रकार विचारणीय है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से पूरी कहानी कृत्रिम है, राजनैतिक दृष्टिकोण से यह और भी बुरी है। इस ज्ञानप्राप्त कुलीन मनुष्य के प्रत्येक शब्द और विचार नाज़ीवाद का प्रत्यक्ष विरोध करते हैं, किंतु लेखक गैर-तानाशाही शब्द से प्रत्यक्षतः घृणा करता है। वह इस विचार-मात्र से ही घृणा करता है कि राजनैतिक धारणाओ के प्रति व्यक्ति की भक्ति उसकी देशभक्ति को गौण बना दे। अतः ऐसा लगता है कि या तो वह विक्षिप्त है या स्वप्नाचारी, जिसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के होते हुए भी न कभी हिटलर का व्याख्यान पढ़ा है, न रीस्टाग-अग्निकाड और पोलैड पर आक्रमण के दस वर्षों की अवधि मे कभी समाचारपत्र पढा है। बस, तभी यह प्रतिवाद मिटाया जा सकना है, सभी सामाजिक उलझने समाप्त की जा सकती हैं और वर्तमान युद्ध के सारे मसले सन् १८७० अथवा सन् १८१५ की शर्तों के अंतर्गत देशभक्तिपूर्ण फ्रास-जर्मन-दृष्टात के रूप मे सीमित किये जा सकते हैं। मै शर्त बदने को तैयार हूॅ कि मि० वरकर का असली रूप जब प्रकाश मे आयेगा, तब वे या तो फ्रेंच तानाशाही निकलेगे अथवा कम-से-कम कट्टर प्रतिक्रियावादी।

सर्वाधिक उत्तेजनापूर्ण बात इस पुस्तिका मे है, हीनता की भावना और उद्दडता का सम्मिश्रण। फ्रास का अगर कभी कोई शिष्ट, समझदार, निःस्वार्थ मित्र था, तो यह इच्छित स्वप्ननायक वान एब्रेनाक था, जो अपनी भक्ति को आत्म-बलिदान की सीमा तक ले जाता है। तब उसे मूर्खता एव हठपूर्ण मौन के साथ क्यो दंडित किया जाये? क्या केवल इसलिए कि यह ज्ञानप्राप्त नाजी-विरोधी जर्मन माॅ-बाप की सतान था? यहाॅ हमे सन् १९४२ मे बडे विलक्षण ढग से उसी मनोवृत्ति की विधिवत् पुनरावृत्ति देखने को मिलती है, जिसने फासिस्ट-विरोधी जर्मनो को फ्रास के बदी-शिविरों मे भेज दिया। मि० वरकर की जानकारी निष्कासित तथा सघर्षशील फ्रासीसी राजनीतिज्ञों की तरह ही बहुत थोड़ी है। यह आवश्यक नहीं है कि पीड़ा सहन करने का परिणाम सुधारात्मक ही हो, मनोवैज्ञानिक आघात प्रत्यक्ष विरोधी परिणाम भी उत्पन्न कर सकते हैं। और यही समय है कि फ्रास की महान् सास्कृतिक परम्परा के प्रशसक वास्तविक शहीदो के प्रभामंडल और अपने वैचारिक दृष्टिकोण के भ्रम के बीच के अतर को पहचानना सीखे।

दूसरे व्यक्ति, जो फ्रास के नाम पर अधिकारपूर्वक बोल सकते हैं, वे मौन हैं। वे जानते हैं, जैसी कि एक चीनी कहावत भी है कि मछली मारने का एक अलग समय है और जाल सुखाने का अलग। किंतु साहित्य के क्षेत्र में काला

बाजार है, जहाँ मानवीय त्याग, संघर्ष और नैराश्य का सौदा होता है और उसकी भावना बहक जाती है। यह साहित्यिक दिवालियापन हमे उसी प्रकार फ्रास के सर्वसाधारण के यथार्थ रूप का परिचय देता है, जैसे हालीवुड यूरोप के गुप्त आदोलन का। फ्रास के लिए यह तनिक भी हितकर नहीं है और यह बड़े भयकर रूप मे लोगों का ध्यान उन यथार्थ समस्याओ की ओर से—जिनका हमे सामना करना पड़ेगा—हटा कर, उन्हें पथभ्रष्ट कर देता है।

उपन्यासकार के प्रलोभन*

१

महान् रूसियों मे से कोई एक—सम्भवतः तुर्गनेव (Turgenev) तभी लिख सकता था, जब वह अपनी मेज के नीचे गर्म पानी से भरी बाल्टी मे अपने पैर डाल लेता था और उसके सामनेवाली खिडकी खुली रहती थी। मेरा विश्वास है कि उपन्यासकार के लिए ऐसी स्थिति विशिष्टतापूर्ण है। गर्म पानी से भरी बाल्टी, उसकी प्रेरणा, उसकी अंतश्चेतना, रचनात्मक शक्ति—अथवा आप जो भी कहना चाहें—के लिए है, और खुली खिड़की उसके सामने बाह्य ससार को उपस्थित करती है, जो कलाकार की रचना के लिए उपकरण-स्वरूप है।

गर्म पानी से भरी बाल्टी को हम कुछ देर के लिए भूल जायें और यह मान ले कि हमारा उपन्यासकार सर्जन-शक्ति से सम्पन्न एक वास्तविक कलाकार है। अब हम उस खुली खिड़की पर अपने विचार केंद्रित करे और यह देखे कि अपनी मेज के पीछे बैठे उस व्यक्ति पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है!

प्रथम और सर्वाधिक सशक्त सम्मोह लेखक के मन मे पैदा होता है, खिडकी बद करने और पर्दो को खीच देने का। स्पष्ट ही, इस साधारण प्रतिक्रिया के बहुत-से दिलचस्प पहलू हैं। शायद सर्वाधिक खतरनाक यही है कि लेखक की यह चेष्टा बहुत स्वाभाविक प्रतीत होती है। लेखक को एकाग्रता की जरूरत होती है, वह तुरत ही धैर्य खो देता है। उसे निश्चित रूप से इसके लिए अमित और चिर-नवीन प्रयास करना चाहिए कि खुली खिडकी हो और उसके जरिये कमरे में सुनायी देनेवाले हृदयवेधी चीत्कार, हास्य, विलाप तथा युद्ध मे आहत होनेवालों की चीख-पुकार को वह सह सके।

खिडकी बद करने के सम्मोह का दूसरा पहलू यह है कि सम्मोह के परम्परागत रूप से यह बिलकुल नहीं मिलता है, बल्कि इसका रूप उसके विपरीत

---

* सन् १९४९ के सितम्बर माह में, पी ई एन क्लब मे हुई अतर्राष्ट्रीय कॉंग्रेस में दिया गया वक्तव्य।

है। उसके मन में सम्मोह पैदा करनेवाला, नश्वर अभिलाषाओं के लिए नहीं, बल्कि आत्मा के उन्नत क्षेत्रो को अपनाने के लिए कहता है। उसकी अभिलाषाएँ हैं—शाति, सौदर्य और शायद परमात्मा के साथ एकात्मता भी। दुरात्मा आपसे आपकी आत्मा माँगता नहीं। वह चाहता है, आप स्वय उसे उपहार में दे दे। वह कानो में फुसफुसाता है-"खिड़की बंद करो। विश्व बहुत बुरा है। यहाँ कुछ करना बुरा है। उत्तरदायित्व बुरा है। पर्दे खींचो, युद्ध मे आहत होनेवालो की वह चीख-पुकार भूल जाओ, अपने कान बंद कर लो और अमरता के मद प्रकाश पर दृष्टि डालो।"

बद खिड़कियो के पीछे अद्भुत और कभी-कभी सुदर रचनाओं का निर्माण रहता है, शीशे के मकान का विकास होता है—कथानक और चरित्र उस शीशे के मकान मे पनपते हैं। 'श्वेत मीनार' तो बद खिडकी के भीतरी हिस्से का केवल एक अंतिम रूप था। इसके अलावा और भी रूप हैं, क्योंकि पर्दे गिरा कर कमरे की सजावट, विस्मयजनक ढंग से, समय के फैशन के अनुसार होती है, यद्यपि फैशन और समय स्वयं ही अवकुंठित-से माने जाते हैं। 'श्वेत मीनार' एक कलाकार का निर्माण था—दूसरे नैतिक सिद्धांतों पर निर्मित हैं। उनके निवासी दूसरे के संकट के समय आनंद नहीं मनाते, ईश्वर-प्रार्थना करते हैं। गिरे हुए पर्देवाला कमरा गिरजाघर के भीतरी हिस्से मे परिवर्तित हो सकता है, जहाँ कि दाढीवाला रूसी उपन्यासकार अपने क्रातिकारी अतीत के लिए प्रायश्चित-स्तोत्र गाता है। यह कमरा एक प्रकार के आत्मदर्शी गहरे सागरस्थ मत्स्यालय मे बदल सकता है, जहाँ स्वतः आगत प्रकाश मे दानव निवास करते हैं अथवा मोपासाँ और गेरार्ड डे नर्वल की गद्देदार कोठरी मे भी बदल सकता है। अंतिम रूपातर योगी के अभ्यास के लिए उपयुक्त विदेशी आश्रम-सा प्रतीत होता है। प्रायः ऐसा मालूम होता है कि अधिकारी के युग के बाद योगी का युग आनेवाला था। इतना तो हुआ प्रलोभन न. १ के सम्बंध मे।

प्रलोभन न. २ मे उपन्यासकार खुली खिड़की को दबाव के रूप मे नहीं, बल्कि आकर्षण के रूप में अनुभव करता है। मेज के पीछे बैठे व्यक्ति के मन मे खिडकी बंद करने का नहीं, बल्कि खिड़की से बाहर झाँकने का प्रलोभन उत्पन्न होता है। सड़क पर की घटनाओ से वह इतना विमुग्ध हो जाता है कि वह हाव-भाव दिखलाने लगता है, चीखता है और बनावटी बातें करने लगता है। पहले हमारे सामने सम्पूर्ण रचनात्मक शक्ति का दृष्टांत था,

किंतु यथार्थता का आभास नहीं मिलता था। अब हमारे सामने, बौखलायी दृष्टि का दृष्टांत है, जिसका रचनात्मक प्रक्रिया-द्वारा शमन नहीं किया जा सक है। खिड़की पर अधिक झुक कर बाहर झाँकने के लिए हमारे लेखक ने गर्म पानी से भरी बाल्टी से अपना पैर निकाल लिया है; सच्चे अर्थ मे, वह उपन्यास-कार न रह कर रिपोर्टर बन जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकारी-युग के बहुत-से गद्य-लेखकों की असफलता का यही कारण था। यह एक ऐसा काल था, जिसमे उपन्यास, वर्ग-सघर्ष के मोर्चों के युद्ध से सम्वाददाताओ-द्वारा भेजी जानेवाली रिपोर्ट की तरह लिखे जाते थे। पात्र नीरस, द्विपक्षीय और अस्वाभाविक पृष्ठभूमि मे, अपने ही अस्तित्व के विरुद्ध संघर्ष करते प्रतीत होते थे। अधिकारी-युगवाले उपन्यास के लोगों मे वर्ग-पक्ष (लम्बाई) और यौन-पक्ष (चौडाई) था, किन्तु तीसरा, विवेकहीन पक्ष (गहराई) नहीं था, अथवा नहीं के बराबर था।

अधिकारी-युग के बाद अथवा योगी के युग मे, विवेकहीन पक्ष ने अपने सभी प्रतिपक्षियों से प्रतिशोध लिया। जिन कुछ लेखको ने, अधिकारी युग को जीवित रखा है, वे युद्ध के घमासान में भी, विवेकहीन पक्ष को कभी नहीं भूले——उदाहरणार्थ, साइलोन (Silone) और मालरौक्स (Malraux); किन्तु वे अपवाद हैं।

स्पष्टतः खिडकी खुली रखने के साथ-साथ गर्म पानी से भरी बाल्टी मे पॉव रखे रहना अत्यत कठिन है। अतः अतीत और वर्तमान के अधिकाश उपन्यासकारो ने एक समझौता किया है और इस समझौते का सार ही प्रलोभन नं. ३ है।

इसमे खिडकी न तो पूर्णरूपेण खुली है, न पूर्णरूपेण बद। और, पर्दे भी इस तरह खींचे गये हैं कि अधिक दुःखद और अशातपूर्ण दृश्य लेखक की नजरों की ओट हो गये हैं और बाहरी दुनिया का एक सीमित भाग ही दिखायी देता है। वह पर्दे के एक छिद्र मे दूरवीक्षण यत्र लगा कर विश्व के एक छोटे और शायद बहुत कम महत्त्वपूर्ण खड की परिधि रेखा की छाया देख सकता है। ऐसी स्थिति मे उच्च कोटि की रचनाओं का सृजन इसके बावजूद भी हो सकता है कि वे केवल बाहर के दृष्ट विषय के खडों को ही लेकर लिखी गयी हैं। उनमें वासना-विहीन प्रेम, स्वेद-विहीन कार्य, ईर्ष्या-विहीन वर्ग-विभेद और कोष्ठबद्धताविहीन खिन्नता होगी। दूरवीक्षण यंत्र दूसरी दिशा में भी घुमाया जा सकता है अथवा दाहिनी खिड़की के बदले बायीं खिड़की खोली जा सकती है—और तब हमे मिलता है प्रेमविहीन वासना और कोष्ठबद्धता, घृणा

तथा स्वेदकण, जिनका छोटा रूप भी बहुत बड़ा दिखाई देता है। इस अपूर्ण इष्ट विषय को लेकर भी प्रशंसनीय रचनाओं का निर्माण हुआ है। फिर इस इतने सफल तरीके को "प्रलोभन के वशीभूत" की संज्ञा क्यों दी जाये और खिड़की पूरे तौर से खुली रखने के लिए आग्रह क्यो? क्योंकि पर्दे मे छिद्रवाले तरीके से, कभी-कभी, सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से बहुत ही सुंदर रचनाएँ लिखी जा सकती हैं—विक्टोरिया-काल के उपन्यास अथवा यथार्थवादी उपन्यास के समान, किंतु कला के रूप मे उपन्यास के विकास-क्षेत्र को अंततः यह समाप्ति की ओर ले जाता है। डिकेंस अथवा जोला के प्रति जो हमारी प्रशंसा होती है, उसमें सदा शुभेच्छापूर्ण अनुग्रह का हल्का-सा पुट रहता है।

२

निश्चय ही, 'प्रलोभन' शब्द से पहले ही किसी मार्ग के अस्तित्व का अनुमान लगा लिया जाता है, जो किसी लक्ष्य तक पहुँचा दे—पूर्णता की ओर ले जाने-वाला मार्ग, जिससे गुमराह करने के लिए सम्मोहक हमे लुभाने की चेष्टा करता है, यह आवश्यक नहीं हैं कि आत्मसमर्पण का अर्थ कला की असफलता हो; किंतु मेरा विश्वास है कि 'यूलेंसपीगेल' (Eulenspiegel) और 'डान क्विक्सोट' (Don Quixote) से लेकर 'वार ऐंड पीस' (War and Peace) 'द मैजिक माउंटेन' (The Magic Mountain) और 'फान्टेमारा' (Fontamara), तक एक ही मुख्य मार्ग है। और, मेरा यह भी विश्वास है कि 'ट्रिस्ट्राम शैंडी' (Tristram Shandy), 'विदरिंग हाइट्स' (Wuthering Heights), 'स्वान्स वे' (Swan's Way) और 'द वेव्ज' (The Waves) अपनी परम परिणति में सर्वोत्कृष्ट हैं।

इस प्रत्यक्ष निरकुश विशिष्टता का औचित्य सिद्ध करने के लिए हम अपनी खिड़की तक लौट चले और अपने पराजित लेखक को काम करते हुए देखे। उसके कमरे के पर्दे गिरे हैं, किंतु उसने एक छोटा-सा गोल छिद्र उसमें बना लिया है। उस छिद्र से एक दूरवीक्षण यंत्र लगा हुआ है। यंत्र से एक मकान और बगीचा दिखायी देता है। एक लड़की अपने हाथो मे गुलाबों का गुच्छा लिये अपने मंगेतर की प्रतीक्षा कर रही है। ग्राम्य पुस्तकालयो मे उपलब्ध पुस्तकों में वर्णित स्वप्न-नायिका के समान ही वह लडकी हो, यह कोई आवश्यक नहीं। वह एक सुसभ्य युवती हो सकती है, जिसके बायें हाथ में

'प्राउस्ट' की एक प्रति हो सकती है। "क्या वह सुंदर नहीं है?" हमारा लेखक पूछता है। सम्भव है, वह बहुत अच्छा लेखक हो और 'बुक सोसाइटी' ने उसकी प्रशंसा की हो। "क्या वह सजीवता की प्रतिमूर्ति नहीं है?" लेखक कहता है—"उसका नाम सिल्विया है!" और निश्चय ही, हमे स्वीकार करना होगा कि पर्दे मे छिद्रवाले तरीके की देन होने पर भी मकान, बगीचा, युवती और गुलाब के फूलों का चित्रण पूर्ण सजीव है! इस प्रशंसा-भरी दृष्टि से लगभग पच्चीस पृष्ठो तक मौन निहारते रहते हैं और तब अचानक अपने इस प्रश्न से लेखक को भयभीत कर देते हैं—"क्षमा करेंगे, किंतु क्या आप, पृष्ठभूमि के कारखाने की चिमनी, अणु-विभजन, वोरोनाफ (Voronoff) के बंदरो और बंदी-शिविरों का चित्रण करना नही भूल गये हैं?" "क्या आप पागल हैं?"—हमारा लेखक कड़े स्वर में जवाब देता है—"क्या आप चाहते हैं कि मैं अपने उपन्यास मे एक जर्मन शरणार्थी का चित्रण करूँ, जिसकी पीठ पर दाग हैं?"

निश्चय ही, हमारा जवाब है—"नहीं!" हम नहीं चाहते हैं कि वह जबरन किसी चीज का चित्रण करे, पृष्ठभूमि के रूप मे कारखाने की चिमनी का भी नहीं, उससे कुछ नहीं होगा। किंतु हमारे मस्तिष्कों में एक विकल्प है, जो जानना चाहता है कि सिल्विया एक कठपुतली के रूप मे चित्रित की जा रही है, या एक जीती-जागती युवती के रूप मे उसका चित्रण हुआ है, जो इसी सदी की निवासिनी है? विकल्प है : या तो वह बंदी-शिविरो के बारे में जानती है और फिर भी हाथ मे गुलाब के फूल लिये वहाँ खड़ी रहती है और तब यह उसके चरित्र को महत्वपूर्ण बना देता है—उसका यह रूप अपमानजनक है, ऐसी बात नहीं, बल्कि यह महत्त्वपूर्ण है। अथवा उसने उन शिविरों के विषय मे न कभी सुना है, न पढ़ा है और तब इससे पुनः हमे एक संकेत मिलता है। और, ये संकेत आवश्यक हैं, क्योंकि उसके समय के आवश्यक तथ्यो से उसके सम्बंध अथवा उसके सम्बंध के अभाव का हमे इनसे पता लगता है। किंतु पर्दे के उस छोटे-से छिद्र-द्वारा लेखक ने इन आवश्यक तथ्यों को ढँक रखा है। वह हम लोगो को उसे अपने सही रूप मे कैसे दिखा सकता है? उस चित्रण मे नहीं, बल्कि लेखक के मस्तिष्क मे ही हम कारखाने की चिमनी का अभाव पाते हैं।

पृष्ठभूमि का अभाव (चित्रण मे नहीं, बल्कि लेखक के मस्तिष्क में) मकान, बगीचा, और गुलाब लिये सिल्विया को अधूरे और नकली रूप मे चित्रित करता है। खिडकी के पर्दानशीन हिस्सों के पीछे क्या हो रहा है, इससे लेखक की अनभिज्ञता ही उसके चित्रण को, उसकी चौडाई और गहराई, उसके

स्वरूप और अनुपात, से वंचित कर देती है और मुझे ऐसा अनुभव होता है कि बगीचे में प्रतीक्षा करती इस युवती को हम जितनी अधिक देर तक देखते हैं, उतनी ही अधिक वह मोम की पुतली के समान प्रतीत होती है।

सर्वांगसुंदर उपन्यास तब, निश्चय ही, पूर्णरूपेण खुली खिड़की की अपेक्षा करता है और यह भी कि लेखक को, अपने काल के आवश्यक प्रवाह और तथ्यों (आँकड़े भी) विचारों और सिद्धातो (भौतिक विज्ञान भी) का उपयुक्त ज्ञान रहना चाहिए। यह ज्ञान प्रत्यक्ष प्रयोग के लिए नहीं है, क्योंकि तब जो वह सीखेगा वह उपन्यास नहीं, ज्ञानकोष (Encyclopedia) होगा। यह ज्ञान अप्रत्यक्ष प्रयोग के लिए है। जिस प्रकार रचनात्मक समीकरण की प्रकिया में सिल्विया योगदान करती है, उसी प्रकार इसे योगवाहक के रूप में कार्य करना है। इसके बिना, विक्टोरिया-काल के कथानक के समान, कथानक मनमाना और उसके पात्र विकृत होंगे। निर्माण का कार्य सर्वज्ञान की अपेक्षा करता है।

३

किंतु क्या यह सब अव्यावहारिक नहीं है ? सैकडों उपन्यासो में, जिनमें कुछ अच्छे उपन्यास भी शामिल हैं, युवती अपने फैले हुए हाथों में गुलाब लिये, विजय-गर्व के साथ अपने बगीचे मे स्थिर खड़ी रहती है। उसके प्रति हमारी आपत्ति तो इतनी ही थी कि लेखक ने उसके दृष्ट वातावरण, अणु-विभंजन और आग की लपटो के विश्व मे उसका चित्रण नहीं किया था, अथवा नही करना चाहता था। किंतु क्या हुआ, अगर ये संकीर्ण वातावरण, जो उसके चरित्र को स्वरूप प्रदान करते हैं, यथार्थ में, उन अप्रिय घटनाओ से, जिन्हे हम हठपूर्वक सारभूत की संज्ञा देते हैं, सम्बंधित नहीं हैं। क्या वास्तविक जगत् मे ऐसी लाखों सिल्विया नहीं हैं, जो अपने समय की समस्याओं और इन आग की लपटो से अछूती हैं? और, क्या उन लोगो के सम्बध मे अच्छी पुस्तके लिखना सम्भव नहीं है ?

आइये, हम एक ऐसे मनुष्य की कल्पना करे, जो शेष विश्व से सम्बंध-विच्छिन्न एक टापू मे रहता है और उसे शेष विश्व की कोई जानकारी नही है। अवश्य ही, उसका 'वास्तविक' चरित्र उसके निकट के वातावरण से प्रभावित है। फिर भी, उपन्यास के पात्र के रूप में उसके सम्बंध मे सबसे दिलचस्प बात होगी, उस समय के परमावश्यक तथ्यों के विषय में उसकी अबोधता—पृष्ठभूमि से उसका (नकारात्मक) सम्बंध। हम उसे विशिष्ट उपन्यास-पात्र

के रूप में देखते हैं: अर्थात् "वह अपने सम्बध मे जितना जानता है, उससे अधिक हम उसके सम्बंध मे जानते हैं।" हमने अपनी दृष्टि मे, शहरो, पर्वतों और नदियों की, जिनसे वह अनजान है, पृष्ठभूमि को शामिल कर लिया है और इन शहरों, नदियों तथा पर्वतों के अनुपात मे उसे देख कर ही सिर्फ, हम उसे औपन्यासिक जीवन प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों मे, उसका औपन्यासिक चरित्र, उसके टापू के संकीर्ण वातावरण से, जिसकी छाप उसके वास्तविक जीवन पर है, प्रभावित नहीं है, बल्कि उसके औपन्यासिक चरित्र पर सुदूर के वातावरण का, जिससे उसका तनिक सम्बंध नहीं है, प्रभाव है। अगर मैं इस सुदूर के वातावरण को अपने दिमाग से निकाल दूँ, तो वह अपने वास्तविक जीवन मे तो फिर भी जीवित रहेगा, किंतु उपन्यास के लिए मर चुका होगा। क्या बदी-शिविर, कारखाने की चिमनियाँ और आग लगानेवाले, नदियों और पर्वतो से कम यथार्थ अथवा महत्त्वपूर्ण हैं?

औपन्यासिक स्वरूप का नियम कहता है कि लेखक के लिए "यथार्थ जीवन" का चित्रण करना-भर ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि समन्वय-प्रणाली मे उसे इसका ज्यामितीय स्थान भी अवश्य निर्धारित कर देना चाहिए। इस समन्वय-प्रणाली के प्रधान आशय का प्रतिनिधित्व उसके समय के प्रभावकारी तथ्य, विचार और प्रवृत्तियाँ करती हैं। एन (N)-विस्तार और दिक्काल की घटनाओ मे भी उसे उसे इसका स्थान अवश्य निश्चित कर देना चाहिए। वास्तविक सिल्विया स्वरूप-निर्माणकारी तत्त्वों के सकीर्ण पारिवारिक भँवर के केंद्र के चारों ओर चक्कर काटती है, जबकि लेखक उसके औपन्यासिक जीवन का चित्रण करने के लिए, उसके समय की। भीषण व्यापारिक हवाएँ, भयंकर आँधी-चक्रवात और न्यूनताओं से उत्पन्न भँवर के बीच उसे ला पटकता है। निश्चय ही, उसके लिए, इनका वर्णन करना अथवा उल्लेख करना भी आवश्यक नहीं है। किन्तु निस्सदेह वहाँ इनका अस्तित्व होना चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि सिर्फ इसी मार्ग का अनुसरण करके लेखक, स्वय को गलत और अवरुद्ध रास्तो से बचाते हुए, सही मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। उसकी दृष्टि की चौडाई-गहराई के प्रत्यक्ष अनुपात में ही उसकी महानता है। उसका विषय अगर एक युवती और बगीचा है, तब भी उसके कमरे की खिड़की में सभी ग्राह्य दृश्यो का समावेश होना जरूरी है। भले ही उसका ध्यान किसी एक बाजे की ध्वनि पर केंद्रित हो; फिर भी उसके कानों को सभी वाद्यों की ध्वनि-समता और विषमता के प्रति सजग होना चाहिए। "वातावरण

में जहाँ कहीं आशा है, वह उसकी ओर आकर्षित होगा और जहाँ पीडा है, उसे उसका अनुभव होगा।" (सी. डे लेविस)

४

हम लोगो का समकालीन होने से, उसे मुख्यतः पीडा का अनुभव होगा। अन्य कालों में ऐसा प्रतीत हो सकता है कि राजनीति की ओर ध्यान देना कलाकार के लिए एक प्रलोभन है। किन्तु आज के समय में, राजनीति की ओर न ध्यान देना ही प्रलोभन है।

उसकी मान्यताएँ जो भी हो, उसके किसी विचार के लिए—राजनैतिक, दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक—उपन्यास का रूप और अस्तित्व सिर्फ तभी सम्भव है, जब उपन्यास के चरित्रों से उसकी समता हो। एक यथार्थ उपन्यास मे, वर्णन और रिपोर्टो की तरह कोई चीज नहीं होती, उसमें मुख्य घटना पात्र के मस्तिष्क मे घटती है। इस प्रकार, एक दुहरी पाचन-क्रिया के पश्चात् ही, तथ्य और विचार, दोनो व्यक्त होते हैं।

यह एक अद्भुत—कभी-कभी कष्टजनक—प्रक्रिया है। जब मै उपन्यासकार-वर्ग के बारे मे सोचता हूँ, तब मुझे सदैव आस्ट्रेलिया की श्वेत चीटी के कुछ अद्भुत आचरणो का स्मरण हो आता है। इस जाति की साधारण चीटियाँ अपने पाचन-यत्र की न्यूनता के कारण, अपनी पहुँच के भोजन से भी लाभान्वित होने के योग्य नहीं होतीं। वे सभी भूख से तड़प कर मर जाती है, लेकिन कुछ विशिष्ट प्रकार की मजदूर चींटियाँ भोजन बटोरती हैं, उन्हें छाँटती हैं, खाती हैं और सुपाच्य बनाती हैं और अपने पेट की चीजे सभी को खिलाती है—रानी चीटी, मजदूर चीटियाँ और परदार वयस्क चीटियो को। कुछ जातियो में मजदूर-चींटियाँ कभी अपना अड्डा नही छोड़ती, वे दीवट की अंधेरी सुरगो और गुफाओ मे अपना सिर डाल कर भोजन की तलाश करती हैं और सग्रहीत करने के अन्य स्थानों के अभाव मे, स्वय सजीव कुड और मधु-पात्र बन जाती हैं। उनके फूले और लचीले पेट मे फसल जमा रहती है और दूसरों को जब भूख लगती है, तो वे उसमे से निकाल कर उन्हें खाने को देती हैं।

हमारे अंधेरे निवासस्थान मे झाँकते हुए, कड़वी और विषैली फसल के सुपाच्य उत्पादन से सैनिकों और स्वस्थ युवाओ को खिलानेवाला आज का कलाकार कुविचारों की ओर प्रवृत्त है। कई बार वह ऐसा महसूस करता है कि

सिर्फ वही एक व्यक्ति है, जो अभी भी मलिनावस्था मे पडे प्राणियों से घिरा है। अतः ऐसे विश्व मे, जहॉ कोई स्वस्थ नहीं है, उसकी प्रेरणा और उसका कर्तव्य "अस्वीकार करना" ही है।

यथार्थ मे, जितने प्रलोभनों का हमने उल्लेख किया है, उन सबका एक सामान्य नाम है—स्वीकार करने का सम्मोह। खिडकी बन्द करने का अर्थ है, बाहर के पागलपन को असाध्य मान लेना—उत्तरदायित्व से बचना। खिड़की को आधी खुली छोड़ने और ज्यादा दुःखद दृश्यों को छिपाने का अर्थ है सतोषपूर्ण मान्यता। आत्मसतोष भी एक निष्क्रिय दुष्कर्म है और इस अर्थ में, कला जाने-अनजाने एक प्रकार है, किंतु केवल इसी अर्थ मे जान-बूझकर-किये जानेवाले प्रचार का अर्थ है, कलाकार का त्याग और यह पलायन का सिर्फ दूसरा रूप है—नौसिखुआपन के सुखद क्षेत्र मे पलायन, जहॉ सभी समस्याऍ और कठिनाइयॉ आसानी से हल हो जाती हैं।

कलाकार कोई नेता नहीं है, उसका उद्देश्य सुलझाना नहीं, बल्कि व्याख्या करना है, उपदेश देना नहीं, बल्कि व्यक्त करना है। "दूसरों के साथ अपने सघर्ष को हम कर्कश स्वरूप प्रदान करते हैं, जब कि अपने स्वय के सघर्ष को कविता का नाम देते हैं—" यीट्स (Yeats) ने कहा था। व्याधि-मुक्त करने, शिक्षा देने और उपदेश देने का कार्य उसे अवश्य ही, दूसरों के लिए छोड देना चाहिए, किंतु उन विशेष उपायो-द्वारा, जो उन्हे अप्राप्य हैं, वह सत्य को अनावरित करता है और व्याधि-मुक्त करने के लिए भावपूर्ण प्रेरणा की सृष्टि करता है।

इस प्रकार, लेखक को एक निश्चित सामाजिक उत्तरदायित्व और कार्य को पूरा करना है। लेखक जब उपन्यास लिखता रहता है, तब यात्रा पर निकले किसी जहाज के कप्तान से वह भिन्न नहीं है, जिसकी जेब मे मुहरबद लिफाफे मे आवश्यक आदेश रखे होते हैं। किंतु जब समुद्र मे जाकर वह लिफाफा खोलता है, तो उसे ज्ञात होता है कि आदेश अदृश्य स्याही मे लिखा है। उसे पढने मे असमर्थ होने पर भी, वह अपने कर्तव्य के प्रति निरतर सजग है, क्योंकि वह एक सामान्य जहाज का नहीं, युद्धपोत का कप्तान है। उसकी जेब के अस्पष्ट तथापि आवश्यक आदेश उसे अपने उत्तरदायित्व के प्रति सचेत कर देते हैं। यही लेखक के उद्देश्य की महानता है—यही उसकी स्थिति है।

पाठक की उलझन*

प्रिय कारपोरल (फौज का एक छोटा अफसर) जेफ!

मुझे तुम्हारा सकट-सूचक पत्र मिला और मै यथाशक्ति तुम्हारी समस्या को सुलझाने का प्रयास करूँगा। तुम लिखते हो—"मेरी उम्र २२ वर्ष की है। सेना में-भरती होने से पूर्व रेडियो-कारीगर था। अब यहाँ कभी कभी पढने के लिए कुछ पुस्तकें खरीदने की इच्छा होती है। आपको पत्र लिख कर मैं यही पूछना चाहता हूँ कि इसके लिए किन पत्रिकाओ का समालोचना-स्तम्भ मेरे लिए मार्ग-दर्शक बन सकता है? मै हर महीने केवल एक पुस्तक खरीद सकता हूँ और उसके लिए प्रति सप्ताह दो शिलिंग अलग बचा कर रखता हूँ। मै 'न्यूज क्रानिकल' पढता हूँ, कभी-कभी 'ट्रिब्यून' और 'न्यू स्टेट्समैन' भी पढ़ने को मिल जाता है। किन्तु अधिकाश समालोचनाएँ मेरी समझ में नहीं आतीं। हमारी छावनी मे दूसरा कोई पुस्तकों का शौकीन नहीं है। ......हमारी छावनी भी बिल्कुल एकात मे है।"

लोग सभवतः सोचेंगे कि तुम्हारे पत्र को संकट-सूचक कहना अतिशयोक्ति है; किन्तु मेरे विचार से बात ऐसी नहीं है। क्योकि तुम्हारे पत्र में जो सैद्धान्तिक प्रश्न है, उससे मेरा सम्बन्ध आशिक रूप से ही है; और तुम्हारी इन पंक्तियों के बीच जिस द्रवित कर देनेवाली प्रार्थना का आभास है, मुख्यतः मेरा सम्बन्ध उसी से है। विगत तीन वर्षो मे मै फौज में लेक्चरर था, अतः तुम्हारी स्थिति के और तुम्हारे वर्ग के सैकड़ों व्यक्ति मुझसे मिले हैं। गम्भीर प्रकृति और विश्वसनीय होने के कारण तुम वायु-सेना के अतिरिक्त सेना के किसी भी विभाग मे जल्दी तरक्की कर सकते हो। दो पट्टियाँ शीघ्र ही तुम्हारी वर्दी पर सुशोभित हो सकती हैं। तीसरी पट्टी मिलने की नौबत शायद ही आये। जब मै तुम्हारा पत्र पढ़ रहा था, तुम अपनी पूरी आकृति मे मेरे सामने उभरने लगे, यद्यपि मैंने तुम्हे कभी देखा भी नहीं है। मेरी आँखों के सामने एक दृश्य आ खड़ा हुआ, जिसमे तुम शनिवार को दोपहर में छुट्टी के समय वाई. एम. सी. ए. के पुस्तकालय मे अथवा डब्ल्यू. एच. स्मिथ की पुस्तकों

* प्रथम बार 'ट्रिब्यून' (लन्दन) अप्रैल, १९४४ में प्रकाशित।

की दूकान की लड़की से 'पेंगुइन सीरीज' की कोई पुस्तक माँग रहे हो, जो प्राप्य नहीं है। तुम अस्पष्ट रूप से 'कामनवेल्थ' और 'फेडरल यूनियन' के प्रति आकर्षित मालूम होते हो—जब कि मजदूर दल का नाम तुम्हे किसी पुरानी शराब के समान लगता है। तुम डायरी रखते हो; पर नियमित रूप से उसमें नहीं लिखते और 'ट्रिब्यून' अथवा 'न्यू राइटिंग' के लिए सैनिक जीवन पर कोई छोटी कहानी लिखने की योजना भी बनाते हो। सैनिको के क्लास मे तुम 'कर्जन पक्ति' और 'जर्मनो की पुनःशिक्षा' के सम्बन्ध में सावधानी से तैयार किये गये प्रश्न भी पूछते हो। कुछ वर्ष पूर्व तुम 'वामपंथी पुस्तक-क्लब' के सदस्य भी थे, किन्तु अधिकतर पुस्तके तुम्हारे लिए उसी पुरानी शराब की तरह होने से अथवा स्तालिन-हिटलर-समझौते के कारण तुमने क्लब छोड़ दिया। नृत्य समारोह में तुम किसी गम्भीर लड़की को पसन्द करते हो, जो बहुधा निर्बल और कृश-काय रहती है; पर अपनी अन्य खूबसूरत बहनों से अधिक सच्चरित्र है। शाम की कक्षाओ, रात्रि अध्ययन और फ्रास मे एक सप्ताह रह सकने के लिए रुपये बचाने की योजना मे तुम अपना भविष्य देखते हो। तुम धनिको से ईर्ष्या नहीं करते, परन्तु तुम्हें दारिद्रय से तीव्र घृणा है। तुम्हारी दृष्टि मे 'वर्ग-सघर्ष' एक अव्यावहारिक शब्द है; लेकिन 'रुकावटें' तुम्हारे लिए अद्भुत आकर्षण रखती हैं, जिनके साथ पेरिस और पिछली सदी की कल्पना भी जुड़ी है। तुम्हारे समस्त विचारो और भावनाएँ तुम्हारी अत्यधिक निराशाओं की प्रतीक हैं। किन्तु तुम्हारी व्यक्तिगत समस्या पर हम बाद मे विचार करेगे।

पहले तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। उसका सक्षिप्त उत्तर यह है कि कथा-कहानियो के लिए 'हेराल्ड' मे बेजेमन (Betjeman) के लेख पढ़ो और गहन विषयों के लिए 'आब्जर्वर' का वह पृष्ठ पढो, जिसमे पुस्तकों की समीक्षा रहती है। विस्तृत जानकारी के लिए तुम 'लिसनर' खरीदा करो। इन पत्रिकाओं के लेखकों के मत सदैव ठीक ही हों, सो बात नहीं, परन्तु सामान्यतः वे जो लिखते हैं, वे मौलिक एव विचारपूर्ण होते हैं तथा वे विषय से दूर भी नहीं भटकते।

अब तुम्हारे प्रश्न का विस्तृत उत्तर देता हूँ। सर्वप्रथम मुझे यह कह देना चाहिए कि इस देश के आलोचकों का स्तर दूसरे देशों की तुलना मे बहुत बुरा नहीं है। रूस मे प्रायः सरकारी प्रवक्ता की ओर से ही साहित्य-सम्बन्धी मत प्रदर्शित किया जाता है। वहाँ की साहित्यिक चर्चाओं मे प्रतिक्रान्ति की भूलों का ही पुट रहता है। रूस मे जब गिडे का दौर चल रहा था, उस समय

उसकी कटु आलोचना करने का अर्थ था—रूस के अंतर्राष्ट्रीय सास्कृतिक सम्बन्ध को तोड़ना और जब गिडे रूस का विरोधी बन गया, तब उसके साहित्य की प्रशंसा करने का अर्थ था—लेखक या सम्पादक की आत्महत्या। मास्को के एक महान् साहित्य-सयोजक (जे. आर. वेचर) ने मुझसे एक बार कहा था—"जो लेखक हमें अपने लिए उपयोगी जान पड़ते है, हम उनकी प्रतिष्ठा मे वृद्धि करते हैं और जो हमारे लिए हानिकारक प्रतीत होते हैं, उनका हम विनाश कर देते हैं। कलात्मक धारणाएँ तो क्षुद्र बुर्जुआ वर्ग के पक्षपात के समान हैं।"

जर्मनी के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं। वहाँ तो रूस से भी बुरी दशा है। साहित्य की आलोचना भी जाति और दल के दृष्टिकोण से की जाती है। इसलिए कई भले लेखको की पुस्तको पर प्रतिबन्ध है, यथा हेन (Heine) की पुस्तको पर यहूदी होने के कारण, थामस मैन (Thomas Mann) की पुस्तकों पर उदारमतवादी होने के कारण, सायलोन (Silone) की पुस्तकों पर समाजवादी होने के कारण—चाहे उनकी साहित्यिक योग्यता कुछ भी क्यों न हो।

फ्रान्स के समाचार-पत्रों ने पुस्तक-समालोचना को अधिक महत्त्व नहीं दिया। इंग्लैण्ड के पत्रों मे पुस्तक-समालोचना के लिए काफी स्थान और ध्यान दिया गया है। पहले साहित्यिक जगत् में भी राजनीति का हस्तक्षेप और भ्रष्टाचार का आधिपत्य था। वार्षिक पारितोषिक दलबन्दी के अनुसार बाँटे जाते थे। वहाँ पुस्तको की व्यापक बिक्री का प्रमुख साधन है—प्रकाशकों के साहसी प्रयत्न। इन प्रयासों मे कभी-कभी आलाचकों का मुँह मीठा करना भी था।

मुझे वह घटना याद है, जब मेरी पहली पुस्तक फ्रास मे प्रकाशित हुई थी। मेरे प्रकाशक ने मुझे दिन-भर अपने दफ्तर में बैठा रखा, और सम्पादक, आलोचक तथा प्रतिष्ठित लोगों को भेजी जानेवाली लगभग तीन सौ प्रतियों पर मुझे हस्ताक्षर करने पडे। इस सूची में समाज के विभिन्न वर्ग के श्रेष्ठ लोगो के नाम थे। सौभाग्य से इस देश मे ऐसा रिवाज नहीं है। कुछ प्रकाशक समालोचको को दावतें देते हैं। दूसरी ओर आलोचना के तूफान को दबाने के लिए समाचार-पत्रो में विज्ञापन की प्रचुरता भी रहती है। कुछ लेखक आलोचको से मित्रता कर लेते हैं। लेकिन ये सब उचित सीमा के बाहर नहीं होता। साराश यह कि, युद्धपूर्व यूरोप के किसी भी देश की अपेक्षा इंग्लैण्ड में होनेवाली आलोचना अधिक सभ्य तथा प्रामाणिक थी।

किन्तु यह तो इससे सम्बन्धित एक पहलू है। पुस्तक समालोचना के स्तम्भों का—विशेष कर कथा-कहानी से सम्बन्धित स्तम्भो का—अध्ययन करने पर मुझे तुम्हारी शिकायत उचित जॅचती है। अमुक पुस्तक खरीदने-योग्य है या नहीं, कोई यह जानना चाहे, तो पत्रों मे की गयी आलोचनाऍ सहायता करने के बजाय उलझन पैदा कर देती हैं। मेरे मत मे इसका मुख्य कारण यह है कि बहुतेरे पेशेवर उपन्यास-समीक्षक, कालान्तर मे अपनी समालोचना का मूल्य भूल जाते हैं। अवश्य ही, साहित्यिक योग्यता के माप के लिए कोई निश्चित मापदड नहीं है। भावना की उष्णता नापने के यत्र का आविष्कार अभी बाकी है। लेकिन इतनी अपेक्षा तो रहती है कि आलोचक पुस्तक के महत्त्व के आधार पर ही उसकी आलोचना करेगा।

'सडे टाइम्स' के ९ अप्रैल, १९४४ के अंक में, जो मेरे सामने है, राल्फ स्ट्रेस (Ralph Strauss) ने अपने स्तम्भ मे तीन उपन्यासों की आलोचना की है, परन्तु इन सबका अन्त एक ही लय में किया गया है। वे इस प्रकार हैं—

"साथ रखने योग्य सर्वोत्तम पुस्तक। एक भी पृष्ठ नीरस नहीं।"

"यह पुस्तक असाधारण रूप से उत्तम है।"

"बहुत सुन्दर, अति आशाजनक।"

अनायास ही दूसरे सप्ताह (१९ मार्च) का पत्र उठाने पर पॉच आलोचनाऍ मिलीं, जिनमे प्रत्येक के अंत की पक्ति इस प्रकार है—

"इस लेखिका से परिचित होना कितना आनददायी है।"

"इस उपन्यास के चित्रण उत्कृष्ट हैं।"

"मनोरजक और सहानुभूतिपूर्ण ढंग से कहानी कही गयी है।"

"भाषा सरल और आनन्ददायक है।"

"सवाद सरल और स्वाभाविक हैं।"

मुझे तुम्हारे प्रति सप्ताह बचाये हुए दो शिलिंग याद आये और बड़ा दुःख हुआ। इस प्रकार एक ही रग मे रगे इन अभिप्रायों के आधार पर दो शिलिंग खर्च करके तुम कौन-सी पुस्तक खरीद सकोगे? इन आलोचकों ने अपनी आलोचना के सॉचे बना रखे हैं। प्रस्तावना का एक वाक्य, तीन-चार वाक्यो में कथा का स्वरूप, फिर नम्र आलोचना का कोई शब्द और उपर्युक्त मधुर अन्त—अन्त मे तीन तारे लगाये कि समालोचना समाप्त और तुरन्त दूसरी समालोचना का आरभ। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि नवप्रकाशित उपन्यासों मे एक है किसी मिस मारजरी एडवर्ड्स-लिखित 'रोजेज फ्राम

ए कैंटिश गार्डन ' और दूसरी 'क्राइम एण्ड पनिशमेंट'। दोनों एक ही माप से मापे जायेंगे। दोनों की समालोचना मे बीस-बीस पंक्तियाँ रहेंगी। सिर्फ बीच मे तारे रहेगे—कुछ इस प्रकार—

"केट के प्राकृतिक दृश्यो का चित्रण सुन्दर है। चरित्रों का निर्माण कुशलतापूर्वक हुआ है और कथा— यद्यपि कहीं प्रवाह मे रुकावट पड़ जाती है, फिर भी— बड़े सुन्दर और उचित ढंग से कही गयी है।"

"रूसी दास्तोवस्की (Dostoevsky) मे मिस एडवर्ड के सुकोमल हास्य का अभाव है। एक उत्तेजित युवक एक कुल्हाड़ी से एक सूदखोर की हत्या कर डालता है ... कुछ दूषित-से प्रभाव का चित्रण है। किन्तु सभी पात्रो का चरित्र-चित्रण स्पष्ट है; भाषा मे प्रवाह है और सक्षेप मे कहानी बड़े सुन्दर और कुशलतापूर्ण ढग से कही गयी है।"

इन मापदण्डो पर टन और औंस के माप में कोई अन्तर नहीं है। मैं मानता हूँ कि मि. स्ट्रेस की तरह के लोग कम होगे, किन्तु उनमे सिर्फ मात्राओं का अन्तर होता है। दैनिक तथा रविवारीय पत्रो के पुस्तक स्तम्भ की यही मुख्य कमजोरी है। एक-एक करके उनका उल्लेख करना बड़ा कष्टदायक होगा, अतः जिन उच्च स्तरीय साप्ताहिको से तुम्हारी शिकायत है, उनकी बात लेते हैं। तुम कहते हो, तुम उन्हें समझ नहीं पाते और यहीं तुम्हारी निराशा और ईर्ष्या की भावना के आवरण में तुम्हारी व्यक्तिगत समस्याएँ स्पष्ट हो उठती हैं।

मै अनुमान लगा सकता हूँ, तुम क्या अनुभव करते होगे। तुम बड़ी उत्सुकता से कोई लेख पढना आरम्भ करते हो—मान लो 'न्यू स्टेट्समैन' मे रेमंड मोर्टिमर (Raymond Mortimer) या स्टोनियर (Stonier) का लिखा हो—और कुछ पंक्तियो के बाद एक मायाजाल-सा तुम्हारे सामने आ जाता है—शायद प्राउस्ट (Proust) या कफ्का (Kafka) या पेगुई (Peguy) का उल्लेख, जिनकी रचनाएँ तुमने नहीं पढी—और तुम रुक जाते हो। किन्तु लेखक यह अनुमान लगा लेता है कि प्रत्येक ने उनके सम्बन्ध में अवश्य पढ़ा होगा और नहीं तो कम-से-कम सबको पढ़ना जरूर चाहिए। अतः तुम्हारी अवस्था बिना पाठ याद किये पाठशाला में जानेवाले विद्यार्थी या बिना निमत्रण के दावत में गये मेहमान-जैसी हो जाती है। और, यहीं हमारे सामने संकट उपस्थित हो जाता है। प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग और सुशिक्षित मजदूर-वर्ग के बीच दीवार खड़ी होने का यही कारण है।

इमें पाखंड का सहारा छोड़ कर मान लेना चाहिए कि दीवार अब भी खड़ी है। जितना ही हम उसे हटाने का प्रयत्न करते हैं, उतना ही अपना सर फोड़ते हैं।

१९२०–३० के बीच वामपंथी लेखकों ने जनता के लिए लिखा; लेकिन वह भी निरर्थक रहा। उन्होंने उच्च वर्ग का उपहास उड़ाया था; लेकिन वह उनका अपना मज़ाक बन गया। दो वर्गों के बीच की इस दीवार को हमें नष्ट करना ही चाहिए, ऊपर से छलॉग मार कर जाने मे कोई अर्थ नहीं—लेकिन यह राजनीतिक कार्य है, साहित्यिक नहीं। मेरे विश्वास से समाजवाद का यही प्रमुख और अन्तिम कार्य है।

उच्च और निम्न वर्ग के विषय मे होनेवाली सारी बकवास सत्य-स्थिति को छिपाने के लिए उड़ायी गयी गर्द के गुब्बारों के समान है। सही बात यह है कि इन आलोचको के मॉ-बाप औसतन इनके पठन-अध्ययन और चिंतन के लिए सोलह-सोलह वर्ष व्यतीत करते हैं, जिससे इन्हें आध्यात्मिक पोषण—जिसे पाने के लिए तुम उत्कंठित हो—प्राप्त है। लेकिन तुम ९ वर्ष तक ही अपनी परिस्थितियों के कारण पाठशाला मे जा सकते हो। वह पाठशाला भी अलग होती है। चिंतन के लिए आवश्यक वातावरण तुम्हे नही मिलता। तुममें और उसमे—तुममें और मुझमे—जो अन्तर है, वह यही है। किसी सभा मे जब हम एकत्र होते हैं, कन्धे से कन्धा मिला कर बैठते हैं, तब यह दीवार टूटती-सी मालूम होती है। लेकिन जब हम अपनी-अपनी दिनचर्या मे लग जाते हैं, तब यह दीवार फिर खडी हो जाती है। यह न तुम्हारा दोष है, न मेरा। तुम्हारे बारे मे अपने को अपराधी मान लूॅ या मेरे बारे मे तुम अपने को अपराधी मान लो, तो भी इससे कोई अन्तर नहीं पडेगा।

तुम्हारी निराशा की भावना से मुझे सहानुभूति है। इसके मूल मे विद्यमान समाज-रचना का मैं तिरस्कार करता हूॅ। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं, कि मै तुम्हारे द्वारा उच्च वर्ग पर किये गये आक्षेपो का समर्थन करूॅगा। वह फासिस्टों का मार्ग है। हमारा ध्येय उस दीवार को नष्ट करना है। जब तक वह दीवार है, प्रजातंत्र पोला रहेगा।

अब मै तुम्हारे मुख्य प्रश्न की ओर मुड़ता हूॅ। पढ़ने का आनन्द लूटने के लिए पांडित्य-प्रचुर आलोचना पढने को तुमसे भला कहा किसने? मुझे तो यह राह गलत लगती है। प्रचलित कहावत को बदल कर मैं तुमसे कहूॅगा कि अंगूर खट्टे हैं, इसीलिए तुम जबरन् खाने की चेष्टा करते हो। मेरी यही

सलाह है कि तुम आनन्द के लिए पढो, दॉतो-तले होठ च्बा कर इच्छा के विरुद्ध नहीं।

मै तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ। मैं फ्रान्स में बहुत दिनो तक रहा हूँ और मुझे मद्यपान का बहुत शौक है। मेरे कुछ फ्रेंच लेखक-मित्र मदिरा की गन्ध और स्वाद से ही कह देते थे कि वह किस प्रदेश मे किस साल में बनी है। दावत के समय उनमे यही बातचीत होती रहती थी। उनका वार्तालाप मैं समझ नही पाता था और इसी से उसमे हिस्सा भी नही ले पाता था। मै उनमें अकेला पड जाता, अतः मुझमे क्रोध और ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हुई। साथ ही एक प्रकार की हीनता भी मैं अनुभव करने लगा। तुम्हारे ही समान मेरे लिए भी उनकी बाते समझ से बाहर थी। उन्हीं के समान होकर मैंने शराब पीने की नकल करनी चाही, पर मैं इसमे सफल न हो सका—होता भी कैसे? मेरे जीवन के प्रथम बीस साल अंगूर के बाग़ में नहीं, उस प्रदेश मे बीते थे, जहॉ अधिक शराब नहीं पी जाती। एक दिन रात को उनके साथ गलत तरीके से मैंने खाया और गलत तरीके से शराब भी पीता गया, फलतः मैं अपने आपे में न रहा। तब से मैंने सिर्फ अपने आनन्द के लिए ही शराब पीने का नियम बनाया है। इसके लिए कौन शराब अच्छी है और कौन बुरी, कौन पुरानी है और कौन ताजी, इतना समझने की शक्ति मुझ मे है, और शराब से प्राप्त होनेवाले आनन्द के लिए, बस, इतना ही पर्याप्त है।

मेरे कहने का गलत अर्थ मत ले लेना। मै यह मानता हूँ कि मुझसे अधिक अनुभवी मनुष्य को मद्यपान मे मुझसे अधिक आनन्द प्राप्त होगा। यही नियम साहित्य संगीत-कला पर भी लागू है। हमारा ध्येय यह है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी पसंद के क्षेत्र मे उच्च स्थान प्राप्त करने का अवसर मिले, सब लोग अंगूर के बगीचे मे ही पले बढ़े, लेकिन तब तक के लिए हमे प्राप्त परिस्थिति का अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिए, न कि उसे नष्ट करना।

इसलिए, मित्र! आनन्द के लिए पढ़ो। आलोचक क्या कहते है, उसकी चिन्ता मत करो। किसी भी सार्वजनिक वाचनालय या पुस्तक की दूकान मे चले जाओ, जो भी पुस्तक मन मे आये, उठा कर खोलो। उसका एकाध पृष्ठ पढो, तुम्हे स्वय ही मालूम हो जायेगा कि वह पुस्तक तुम्हारे पढने-लायक है या नहीं। यो ही कोई पुस्तक पढने के लिए स्वय को मजबूर मत करो। यह सर्वथा निरर्थक प्रयत्न है। रेडियो का सुमधुर सगीत बन्द करके जिस पुस्तक के पढ़ने मे तुम एकाग्रचित्त हो सको, बस, वही पुस्तक तुम्हारे पढ़ने-योग्य है।

कथा-कहानियाँ तभी पढो, जब तुम्हे वे उत्तेजना प्रदान करती हों। कथा-कहानियो की जितनी पुस्तकें हैं—'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' (Pilgrim's Progress) भी—एक विशेष प्रकार के पाठक वर्ग को उसके जीवन के विशिष्ट काल मे आकर्षक लगती ही हैं। यदि योग्य समय पर योग्य पुस्तके तुम्हारे हाथ आ जायें, तो तुम उन्हें दूर न रख सकोगे, लेकिन दूसरे किसी समय वही व्यर्थ लगेंगी। जो बात उपन्यास के लिए है, वही निबन्ध, इतिहास और तत्त्वज्ञान के लिए भी। यदि उन पुस्तको का तुम्हारे अपने हित, समस्या एवं शकाओ से सम्बन्ध नहीं है, तो उन्हे अपने से दूर ही रखो। कभी भी केवल पढ़ने के लिए ही जबरन कुछ न पढो।

आखिर साहित्य और कला का ध्येय क्या है? अगर समस्त ससार को भावनाओ से भर देना और उसके सर्जन मे अर्थ-निर्माण करना, स्वयं अपना और अपनी परिस्थिति का ज्ञान गहरा और विस्तृत करना उसका ध्येय नहीं है, तो और क्या है? और, यह सब करना तुम्हारे सामर्थ्य मे है।

ध्यान रखना, मै किसी निवृत्ति-मार्ग का उपदेश नहीं दे रहा हूँ। निराश तथा क्रोधित होना तुम्हारा अधिकार और कर्तव्य है, किन्तु राजनीतिक क्षेत्र मे। और, गौर से देखो, तुम अपने क्रोध का क्या करते हो? गरीबों की यही एक मात्र ऐतिहासिक पूँजी है। क्रोध की भावना न होती, तो गरीब अब तक दासत्व ही भुगतते रहते। लेकिन अपने इस क्रोध के परिणाम का ध्यान रखो। दूसरे लोग तुम्हारी इस भावना का दुरुपयोग करने के लिए टकटकी लगाये बैठे हैं। इससे लाभ उठानेवाले केवल नाजी ही पहले और अतिम व्यक्ति नहीं है, और अन्य लोग भी हैं। उनके जाल मे न फँसो। तुम्हारा सच्चा शत्रु धनिक वर्ग है—बुद्धिजीवी उच्च वर्ग नहीं।

एक बड़ा सनकी*

एक बहुत बड़े सनकी व्यक्ति ने यों लिखा है—"लोगों को विश्वास दिलाने का तत्त्व, महान् असत्य में अन्तर्भूत है।" असत्य की महानता दो प्रकार की है—प्रमाण और प्रभाव! असत्य को वैभव प्राप्त होने पर लोग अपने-आप उसकी पूजा-अर्चना करने लगते हैं। सनकियों के रहस्यवाद की कुजियो मे यह कुजी है. वास्तव में, यह वही कुंजी है, जिसने उसके सामने शक्ति के दरवाजे खोल दिये। स्पष्ट ही जब कुजी इतनी अद्भुत है, तो ताला तो और भी अद्भुत होगा।

ताला ऐतिहासिको की समस्या है—हमे तो कुंजी से मतलब है। इस सनकी व्यक्ति ने अपनी युवावस्था मे भाग्य के अनेक दरवाजे खटखटाये। परन्तु वे दरवाजे कभी खोले नहीं गये। उसने चित्रकार होने का प्रयत्न किया; परन्तु उसके सूर्यास्त के चित्र कोई नहीं खरीदता। भवन-निर्माण के काम मे वह लगा, किन्तु अन्य मजदूर उसके साथ मित्रता नहीं बरतते, क्योकि वे शराब पीते थे और यह दूध पीता था। इसके सनकियो-से भाषण भी उन्हें पसद नहीं थे। फिर वह सेना में शामिल हुआ। लेकिन वहाँ भी वह प्रथम श्रेणी से आगे न बढ सका। तदनन्तर वह मुक्ति-सेना मे दाखिल हुआ। पुल के नीचे रहने लगा। समाज के लावारिस, आवारों के साथ घूमने लगा। यों ही कई वर्ष बीते। भावी राजनीतिज्ञ के लिए यह अनोखा अनुभव था। यही उसके ताले की सही कुजी प्रथम आकार धारण करने लगी। इसलिए उसे समाज से घृणा हो गई। वह समाज के कूडे को ही सारवस्तु मानने लगा। यह उसकी भूल थी। पर इस भूल से उसे लाभ ही हुआ।

उसने यह निष्कर्ष निकाला कि जिन मनुष्यों से समाज बनता है, उनके सकलित विचार-विकार समाज के विचार-विकार नहीं हैं। लेकिन मनुष्य के विचार-विकारो का 'लघुतम साधारण विभाज्य' है—समाज का मन। विभिन्न लोगो के एकत्र होने से उनकी बौद्धिक शक्ति मे वृद्धि होने के बजाय उसमे असतुलन पैदा होता है—प्रकाश में प्रकाश के मिल जाने से अंधकार के निर्माण

---

* 'आब्जर्वर', लदन, अक्टूबर १९४२ में प्रकाशित।

होने-जैसी यह बात है—लेकिन भावना के आन्दोलन विद्युत्-प्रवाहों के समान दूसरे प्रवाह से अभिवृद्ध होते हैं।

समाज के निचले स्तर मे उतरने से उस सनकी व्यक्ति को अपने जीवन का पता लगता है। सामाजिक जीवन का 'लघुतम साधारण विभाज्य' उसे प्राप्त होता है। मानो अपने भाग्य का ताला खोलने की उसे कुंजी मिल जाती है। इस कुंजी का जादू पहले उस पर ही होता है। उसका निराश मन स्फूर्ति से भर उठता है। पहले उसका चेहरा, जो मुर्झाया हुआ रहता था, वही अब खिल उठता है। उसकी ऑखों मे आशा-दीप जगमगाने लगते हैं। उसकी नाक के नीचे और भाल पर स्थित काले दाग देख कर लोग उस पर मुँह बनाते थे, परन्तु अब उन्हें लगता है कि वे दाग नर-बलि करनेवाले जंगली लोगों-द्वारा नृत्य के समय चिह्नित किये जाने पर भयानक दाग के समान ही हैं। उसका स्वर पहले की अपेक्षा अधिक कर्कश बन गया, लेकिन लोग उससे वेद-मंत्र निकलते देखने लगे। मत्र का बार-बार उच्चार करने से ढोल बजाने-जैसी आवाज आती है, वह सनकी व्यक्ति इसे जानता था, अतएव वह अपने को 'ढोल बजानेवाला' कहने लगा।

आरम्भ मे वह छोटी-छोटी सभाओं मे बोलने लगा। बुद्धि को परे रख कर, लोगों की भावनाओं को स्पर्श कर, उन्हें उत्तेजित करनेवाले भाषण वह देने लगा। और, उसका परिणाम भी हुआ। उसी समय उसके देश का पराभव हुआ था। फलतः लोगो के मन मे निराशा छायी थी। उनके उत्साह को दूसरी राह बताना आवश्यक था। उन्होने देखा कि यह सनकी उनके लाभ की बाते बता रहा है—यद्यपि इसका प्रभाव तभी लक्षित हुआ, जब इसने एक ऐतिहासिक घटना का रूप धारण कर लिया—कुजी ताले में गयी थी।

इतिहास सदा ऐसे ही ताले-कुंजी को लेकर लिखा गया है। व्यक्तिगत प्रयत्न कुजी के समान हैं और वस्तुनिष्ठ समाज-रचना ताला है। इतिहास की व्यापक रूप-रेखा पहले से ही निश्चित होने पर भी उसमें कुछ अनिश्चित भाग रहता ही है। किस ताले मे कौन चाभी लगेगी? यह भाग्य का खेल है। वेलिंग्टन-जैसे (Wellington) कई शूर सेनापति केवल सेवा-निवृत्त सूबेदार के रूप मे मर गये होंगे। इसके विपरीत भी हुआ होगा। हमारा यह सनकी व्यक्ति उचित समय पर मर गया होता, तो वेमर (Weimar) जिंदा रह जाता और दूसरा महायुद्ध स्थगित हो जाता—अथवा शायद सदा के लिए टल जाता।

लेकिन परिस्थिति ऐसी है कि भाग्य की अज्ञात खाई को ढँकने के लिए मनुष्य को खुली आँखो मरना पड़ता है और यह भय बना रहता है कि इसकी पुनरावृत्ति न हो जाये—भविष्य मे कोई दूसरा सनकी इस कुंजी को न पा ले। यह भय तब तक बना रहेगा, जब तक समाज का 'लघुतम साधारण विभाज्य' (मन) इस ऊँचे स्तर पर नहीं पहुँच जाता कि वह इस प्रकार के सनकियों की सामर्थ्य के बाहर रहे। सनक और प्रजातत्र में सम्भवतः यही मूलभूत समस्या है।

रिचार्ड हिलारी की स्मृति में*

१

एक मृत मित्र के बारे में लिखना, समय के विरुद्ध लिखना है। उसके सम्बन्ध में किसी दंतकथा का आविर्भाव होने के पहले ही सुदूर की धुँधली स्मृति में लुप्त होनेवाली किसी आकृति का पीछा करना, उसे पकड़ना तथा पकड़ कर रखे रहने के समान ही यह लिखना भी है। कारण, मृत मनुष्यों से किसी प्रकार का व्यवहार दुष्कर है। साथ-साथ सेना में काम करने वाला कोई व्यक्ति उन्नति कर के जब अफसर बन जाता है, तब उससे व्यवहार बनाये रहने में जिस कठिनाई का अनुभव होता है, उसी प्रकार की दिक्कत यहाँ भी है। उसके घोर मौन के कारण हमारा चित्र अस्थिर हो जाता है। दौड़ शुरू होने के पूर्व ही हम हार जाते हैं। जिस रूप में वह था, उसी रूप में उसकी प्राप्ति फिर कभी नहीं होगी। उसकी स्मृति के आसपास दंतकथाओं की घटाएँ छाने लगी हैं, उसकी दिलचस्प छोटी-छोटी बातें याद बन कर रह गयी हैं और उसके चरित्र की साधारण घटना भी हमारे स्मृति-गृह में प्रस्तर-प्रतिमा के समान हो गयी है।

युद्धकाल में तो इस प्रक्रिया की गति तीव्र होती है। मृत मनुष्य तत्काल ही अंतर्धान हो जाते हैं और उनकी दंतकथाएँ वेग से प्रसारित होती हैं। हिलारी के सम्बंध में ऐसी ही एक दंतकथा अभी-अभी प्रचलित हुई है और यह

---

* प्रथम बार, अप्रेल, १९४३ में 'होराइजन' (लंदन) में 'दंतकथा का जन्म' The Birth of a Myth शीर्षक से प्रकाशित। "द' लास्ट एनिमी" The last Enemy के लेखक रिचार्ड हिलारी ने सन् १९३९ में, १९ वर्ष की आयु में लड़ाकू विमान-चालक के रूप में हवाई सेना में नाम लिखाया था। ब्रिटेन की लड़ाई में उस के विमान को मार गिराया गया और वह बुरी तरह झुलस गया। शारीरिक रूप से अयोग्य करार दिये जाने के बावजूद उसने सक्रिय सेवा में फिर से जाने पर जोर दिया और ८ जनवरी, १९४३ को २३ वर्ष की उम्र में, एक रात्रि-प्रशिक्षण-उड़ान में उसकी मृत्यु हो गयी। इस दुर्घटना के रहस्य का पता नहीं लग सका।

अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि वह शीघ्र ही फैलेगी, जब तक उसका नाम इस महायुद्ध का एक प्रतीक बनकर नहीं रह जायेगा। दंतकथा के विस्तार को रोकना सम्भव नहीं है और किसी को इसकी चेष्टा भी नही करनी चाहिए। दतकथा का विस्तार स्फटिक के समान ही होता है। जिस प्रकार भूमि के परमाणु एकत्र होकर स्फटिक का रूप धारण करते है, उसी प्रकार समाज के मन मे बिखरी हुई सुप्त भावनाएँ दंतकथा के रूप मे प्रकट होती हैं।

निश्चय ही, प्रश्न उठता है कि एक उपयुक्त क्षेत्र का निर्माण कौन करता है? स्पष्ट ही, समाज की इस अस्पष्ट और विस्तृत भावना के साथ उसका निकट का सम्बंध होना चाहिए—उस प्रकार का वीर पुरुष बनने की उसमें तीव्र इच्छा होनी चाहिए, जिस प्रकार के वीर पुरुषो के बारे मे दंतकथाएँ कही जाती हैं। उसे स्पष्ट ही कुछ ऐसा करना चाहिए, जो उसकी उस तीव्र इच्छा का द्योतक हो। हिलारी का जीवन और मरण एक प्रकार से प्रतीकात्मक था। किंतु किसका प्रतीक? यही उसे मालूम नहीं था और यह स्वयं यह जानने का बहुत इच्छुक था। उसने एक पत्र मे लिखा था—

"...मैं सोने के पूर्व इसे लिख रहा हूँ और मुझे अजीब-सा लग रहा है, क्योंकि मुझे आज ही पता चला है, कोलिन पिकने (Colin Pinckney) सिंगापुर मे मारा गया। तुम उसे नहीं जानते हो, किंतु पुस्तक पढने के बाद उसे जान जाओगे और मुझे आशा है, उसे पसंद भी करोगे। उसकी मृत्यु एक उचित अनुलेख का जन्म देती है और फिर भी मेरे मस्तिष्क मे उसी प्रश्न को उठाती है, जिसका मैंने पुस्तक मे उल्लेख किया है और जवाब देने का प्रयास किया है। प्रश्न है, जो व्यक्ति बच गया है, उसका उत्तरदायित्व क्या है? मेरा तात्पर्य व्यक्ति से है, व्यक्तियो से नही, क्योंकि अब मै ही अंतिम व्यक्ति बचा हूँ। यह बडी विचित्र बात है कि मुझ-जैसा व्यक्ति जिसने सबसे कम योगदान किया है, बचा रह जाये। मैं ताज्जुब करता हूँ, ऐसा क्यो हुआ? .."

किस प्रकार का उत्तरदायित्व उस पर आ पडा था? वह किस प्रतीक का प्रतिपादक था? इससे एक दतकथा पनप सकती है और हमें पसद भी आ सकती है। उसी के अनुरूप हम सोच सकते हैं, और फिर भी, ऐसा क्यों होता है, हम इससे अनजान रह सकते हैं। बिना रहस्योद्घाटन के भी प्रतीक का हमें आभास हो सकता है। आखिर कोई दो हजार वर्षो से भी अधिक काल के बाद हमे कोई यह बता सका कि ओडिपस रेक्स (Oedipus Rex) की दत-कथा हम साँस रोक कर क्यो सुनते हैं?

मृत्यु से दो वर्ष पूर्व हिलारी इसी प्रश्न का उत्तर खोज रहा था। दतकथा के उस क्षेत्र का वह विश्लेषण करना चाहता था, जिसे वह स्वय के निकट अनुभव करता था। वह जानता था कि वह मरने वाला है। लेकिन क्यो? यही वह जानना चाहता था। वास्तव मे, उसने जानबूझकर ऐसे मार्ग को अपनाया था, जिसका अंत मृत्यु के अतिरिक्त कुछ नहीं था। उसने एक पत्र मे लिखा था :

"मित्र! तुम कहते हो, विश्वास रखो, लेकिन किस पर विश्वास रखूॅ? तुम्हारा कहना है—'सब कुछ ठीक हो जायेगा।' यह तो इस पर निर्भर करता है कि 'ठीक' से तुम्हारा क्या तात्पर्य है? अगर तुम यह कहना चाहते हो कि कोई चमत्कार होगा और मुझे किसी ऐसे काम को करने का आदेश मिलेगा, जिसे मै सिर्फ भलीभॉति कर ही नही सकूॅगा, बल्कि उसे करने मे मुझे आनंद आयेगा, तो वह मुझे तनिक भी मान्य नहीं। वैसा विश्वास रखना बुरा है, हानिकारक है। अगर तुम्हारे कहने का अर्थ यह है कि प्रथम विमान-दुर्घटना के बाद, मेरा सक्रिय सेवा के लिए वापस आना ठीक है, और इस पर मै विश्वास रखूॅ, तो यह मुझे मान्य है। कितु अब मै मृत्यु को पराजित कर दूॅगा—इस कथन पर भी विश्वास करना मुझे स्वीकार नहीं। इन घटनाओ का क्रमिक अंत एकमात्र मृत्यु ही तो है। कुछ घटे विमान मे उडने के पश्चात् मेरी सहज प्रवृत्ति कहेगी—'अब मै जीवित रहूॅगा।' जबकि मेरी बुद्धि कहेगी—'मै बचूॅगा नहीं।'—और इस बार बुद्धि का कथन ही सत्य सिद्ध होगा।

"और फिर.

".. पहले के समान ही, जितनी ज्यादा उडान मै भरूॅगा, मेरी सहज प्रकृति मुझसे कहेगी कि मै बच कर निकल जाऊॅगा, जबकि मेरी बुद्धि का कथन कि मै नहीं बचूंगा, धीमा पडता जायेगा।

"कितु इस बार मेरी बुद्धि का कथन सत्य प्रमाणित होगा। इस पर मुझे इतना अधिक विश्वास है कि इसमे सदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती. "

यह कुछ विचित्र है—है न? साधारणतया हमारी सहज प्रवृत्ति ही हमें सकट का आभास देकर डरा देती है और बुद्धि हमे धीरज बॅधाती है। कितु हिलारी के सम्बध मे बात उल्टी है। कितु अभी तो और कुछ विचित्र घटित होनेवाला है। हमने स्वयं लक्ष्य किया है, यह सहज बुद्धि कितनी भ्रमात्मक रही है। वह इसे जानता था और बार-बार उसने इस पर जोर दिया।

उदाहरणार्थ,   "औषध ने पहले ही काम करना आरम्भ कर दिया है। जब मै मेस मे प्रवेश करता हूॅ, तो मेरे चलने का ढग बनावटी होता है . ।" आदि। और फिर भी वह उडान पर वापस जाने का घातक निश्चय करता है—जानबूझ कर अपनी सहज प्रवृत्ति का अनुसरण करता है और बुद्धि की उपेक्षा करता है। अपने स्थान पर पहुॅचने के कुछ ही दिनो बाद, वह लिखता है :

"कोई सदा के लिए विवेकपूर्ण हो सकता है और उसकी बुद्धि अततः उसे कहती है कि यह पागलपन है पर वह सदा अपनी सहज प्रवृत्ति का कथन सुनता है ।"

और एक दूसरे पत्र में :

"यात्रा की समाप्ति के लिए निश्चय ही, यह एक अद्‌भुत स्थान है।"

इस प्रकार, उसकी "सहज प्रवृत्ति" जब कहती है, वह बच जायेगा, तो वह उस पर विश्वास नहीं करता है, कितु जब वह उसे यात्रा की समाप्ति की ओर ढकेलती है, तो वह उसका विश्वास करता है। यहॉ कौन किसे धोखा देता है? स्पष्ट ही, सहज प्रवृत्ति अपने शिकार को धोखा देती है वह मनुष्य को भुलावा देकर मृत्यु-जाल मे फॅसा देती है। कितु ध्यान से देखने पर हमे ज्ञात होता है कि मनुष्य स्वेच्छा से, जान-बूझकर, स्वय को मृत्यु जाल की ओर ले जाये जाने देता है :

"मै अमरीकी फिल्मो के उस नायक के समान अनुभव करता हूॅ, जो एक डाकू है और स्वेच्छा से जेल की ओर कदम बढाता है और अंतिम बार अपने पीछे जेल के दरवाजे बद होने की आवाज सुनता है. ।"

यह अद्‌भुत और सदिग्ध 'सहज प्रवृत्ति'—जिसका दड वह स्वीकार करता है और जिसकी सात्वना का वह असतोपपूर्वक तिरस्कार करता है, जिसके विरुद्ध इच्छापूर्वक तर्क पेश करता है, मुॅह बनाता है, "एक बच्चे के समान रोता भी है," कितु अंत मे, नम्रतापूर्वक उसे स्वीकार करता है—हमारे लिए निश्चय ही, एक विचित्र शक्ति प्रतीत होती है। हमारे पास अब तक इसके नामकरण के लिए कोई वैज्ञानिक शब्द नही है, लेकिन स्फटिक-परमाणु के विशिष्ट प्रकार में एकत्र होनेवाली शक्ति के समान ही यह दीखती है।

२

यहॉ हम देखते हैं कि किस प्रकार दतकथा अपने शिकार पर हावी होती है

और उसका विनाश करती है। हिलारी के पत्रो मे तत्कालीन अपेक्षा और आकाक्षा स्पष्टतया प्रतिबिम्बित होती है। ये उसके रक्त मे घुलमिल गयी थीं। वह उनका प्रतीक बन गया था।

किंतु यह सब-कुछ हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं देता—किसका प्रतीक? आखिर पैट फिनुकेन (Pat Finucane) ने तो शत्रु के बत्तीस विमान गिराये थे, जबकि हिलारी ने केवल पॉच ही। उसे कोई पदक भी नहीं मिला था। "द' लास्ट एनिमी" नामक पुस्तक उसकी पीढी से सर्वाधिक आशाजनक पुस्तक थी। किंतु उसमे केवल आशा ही है, सिद्धि नही। उसने कौन-सी मनोवृत्ति, कल्पना अथवा आशा व्यक्त की है? हिलारी स्वय भी किसी मूल्य पर यह जानने का इच्छुक था, किंतु इसकी उसे अनुमति नहीं थी। यह खेल के नियमो के विरुद्ध होता क्योकि इस अस्पष्ट-धुँधले क्षेत्र मे उचित बात सदा गलत कारणों के लिए करनी पडती है। वह सिर्फ इतना ही जानता था कि इस सम्बध मे उसकी सहज प्रवृत्ति सही थी, और सूत्र रूप मे वर्णन करने की लेखक की अभिलाषा के कारण, उसने बार-बार यह बताने का प्रयत्न किया है कि वह क्यो सही थी? किंतु इसमे उसे सफलता नही मिली। सफलता मिली होती, तो सहज प्रवृत्ति मर गयी होती और वह जीवित रह जाता। लेकिन उसे तो अपने स्मृति-लेख की खोज करते हुए मरना था।

"द' लास्ट एनिमी" के अंतिम अध्याय मे पुस्तक के पूर्व-अध्यायो की भडकीली सुविधा लगभग असहाय तुतलाहट मे बदल जाती है, किंतु एक बार जहॉ सकट—व्यक्तित्व के टूटने तथा पुनः जुडने की अपरिहार्य प्रक्रिया—खत्म हुआ, वह पुनः यह खोजने निकल पड़ता है कि, वह किस तथ्य का प्रतिपादन करता है। उसने एक पत्र लिखा था—

"कुछ दुविधा के साथ मै पुस्तक लिखने बैठा, क्योकि मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि जब किसी ने अततः यह बताया कि देश के युवा-वर्ग पर युद्ध का परिणाम, चलचित्रो के अनेक चरम बिंदुओ से कुछ अधिक—एक प्रकार के मानसिक सघर्ष के रूप मे—था, तो पुस्तक काफी अच्छे ढग से लिखी जानी चाहिए और विषय का इसमे उचित प्रतिपादन होना चाहिए। मै नहीं जानता, मुझे सफलता मिली अथवा नहीं। अत मे, मै अपने 'आइलैंड फोर्टेस' (Island Fortress) और "द' नाइट्स आव द' एयर" (The Knights of the Air) के बारे मे इतना परेशान हो गया कि मैने इसे किसी प्रकार लिख देने का दृढ निश्चय कर लिया—इस आशा मे कि अगली पीढी शायद यह

समझ सके कि बेवकूफ होने पर भी हम इतने बेवकूफ नहीं थे—हमें यह भलीभाँति स्मरण था कि पिछले युद्ध मे ये सारी बातें देखी गयी हैं; किंतु उसके बावजूद—उसके कारण नहीं—हम इसे संघर्ष-योग्य समझते थे।"

एक मुहावरे के अलावा कि "उसके बावजूद, उसके कारण नहीं" यह पर्याप्त सफाई नहीं है। केवल यह मुहावरा किसी प्रकार हमारे मन मे ताल देनेवाले चिमटे के धीमे कम्पनों को स्थिर कर देता है, क्योकि अधिक अथवा कम, हम सभी जानते हैं कि हम यह युद्ध किसी चीज के 'कारण' नहीं, बल्कि किसी चीज के 'बावजूद' लड़ रहे है। बड़ी-बडी बाते और नारे हमे हतोत्साहित करते हैं। हमे कोई इतना सीधा समझे, यह हमे पसद नहीं। कोरी बातो की देशभक्ति, निराशावादी-पाखडी-योद्धा का बर्ताव इस युद्ध के मानसिक वातावरण के उपयुक्त है और हमे उन शक्तियो के बारे मे आभास मिल जाता है, जो अपने कार्य के लिए इस विशिष्ट नायक का चुनाव करती है। किंतु यह आभास-मात्र है। बार-बार की शल्यक्रियाँ के बाद, जिसने हिलारी के चेहरे को पुराने पेबंद लगे कोट के समान नया कर दिया था, एक दूसरे पत्र मे, यह कुछ बढा-चढा कर लिखा गया। इसमे मूल तत्त्व से पेबद अधिक थे और तारीख के स्थान पर था—

अस्पताल मे
बिस्तरे पर
क्रोध मे

"..मानवता आकंठ दुर्भाग्य से ग्रसित है। मेरा अनुमान है, तुम अगर इसके लिए सघर्ष करना चाहते हो, तो तुम्हे इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। तुम्हे इससे कुछ नहीं मिलने का। सद्गुण स्वयं में ही पर्याप्त पुरस्कार है, यदि तुम इससे सहमत नहीं हो, तो तुम्हे इसका आनद उठाने के योग्य होना चाहिए—अन्यथा, परमात्मा तुम्हारी मदद करे।"

छः सप्ताह बाद, हाथो पर एक और शल्य-क्रिया होने के पश्चात् एक दूसरे पत्र मे वह यही भाव दूसरी दृष्टि से व्यक्त करता है—

"वायुसेना का विशेष गुण क्या है? इसका विश्लेषण करना मेरे लिए कठिन प्रतीत होता है। मेरा अनुमान है, इसमे कोई ऐसी बात है, जो इसके सदस्यो को दूसरे सैन्य दल के सदस्यो से बिलकुल पृथक् कर देती है। यह कहना कि वह कोई वायव्य गुण है, असत्य और एक प्रकार की सनक है, तथापि मै इसके लिए इससे अच्छा शब्द नही सोच पा रहा हूँ। यह कुछ ऐसी चीज है—एक

प्रकार की अबोधगम्य जानकारी—जिसका जन्म सिर्फ उच्च कोटि के आत्मविश्वास और नम्रता के सयोग से हो सकता है और जिसे प्रत्येक सघर्षकारी वायुयान-चालक अनुभव करता है। शायद अत मे, यही वह विशिष्ट गुण है। कोई भी मनुष्य किसी सगठन की अपेक्षा अदृश्य के अधिक समीप रहता है, किंतु वायुसेना, एक सगठन के रूप मे, किसी अन्य सगठन की तुलना मे, मनुष्य को अधिक अवसर देती है। और फिर भी अगर वायुसेना के सैनिक इसका अनुभव करते हैं, तो अवश्य ही अनजाने, क्योंकि वे अद्भुत रूप से निराश हैं। मि० डी० मोरगन के उपन्यासों के समान—मूल उद्देश्य तो प्रभावशाली है, किंतु इसकी प्राप्ति मे किसी चीज का अभाव खटकता है। जैसा कि मि० हैरिसन पूछते हैं, शाति के दिनों मे क्या वह दिन आयेगा, 'जब वे भय से भी कुछ अधिक पर विजय प्राप्त करेंगे ?'"

कितने ईर्ष्यालु ढग से वह अपने नैराश्य की सघनता की रक्षा करता है। वह अपने दरवाजे की सीढ़ियो पर इसे एक पहरेदार कुत्ते के समान बैठा देता है। यह सदा क्रुद्ध, और उत्तेजित रूप से भूँकता रहा, किंतु इसने काटा नहीं। उसके पीछे दरवाजा खुला था और मकान सुरक्षित था।

पॉच महीने बाद, सहज प्रवृत्ति ने अपना प्रभाव दिखाया और वह पुनः उडान भरने लगा, यद्यपि उसके हाथों मे, जो चिड़ियों के चंगुल की तरह लगते थे और जो चाकू और कॉटे को भोजन के समय काम आनेवाली सलाइयों की तरह पकड़ते थे, दो एंजिनवाले भारी वायुयान का, जिस पर उसने प्रशिक्षण पाया था, ब्रेक सॅभालने की भी शक्ति नहीं थी। उन्हे ब्रेक के यंत्र मे विस्तारक बैठाना पडा। वह 'अडर-कैरेज' (नीचे की छोटी गाडी) को भी नहीं खोल सकता था। इस कार्य के लिए अपने साथ उसे एक और व्यक्ति को रखना पडता था। कभी-कभी वह पट्टा तक नहीं बॉध सकता था। ("... अब मैं सचमुच ही परवाह नहीं करता। अगर विमान किसी दुर्घटना का भी शिकार हो जाये, तो हो जाये। अगर मुझ पर कुछ बीतती है, तो कोई बात नहीं।" हिलारी ने एक पत्र मे लिखा था।) उसकी घायल आखों पर कृत्रिम पलके बिठायी गयी थीं, जिससे वह कभी-कभी ऊँचाई नापने के यत्र को ठीक से पढ नही पाता था। उसके सिर मे भयकर दर्द रहता और वह बुरी तरह अस्वस्थ हो उठता। तूफान मे विमान ले जाते समय, भारी एजिन के सचालन से उसके जले हुए हाथ की चमड़ी उखड़ जाती। मेडिकल बोर्ड को धोखा देने मे वह किसी प्रकार सफल हो गया था; किंतु स्वय को धोखा नहीं दे सका। अपनी

अंतिम रात्रि-प्रशिक्षण-उड़ानों मे वह लगातार कई बार दुर्घटना का शिकार होते-होते बचा और देर-सवेर कभी तो उसके बचने की यह शृंखला टूटने ही वाली थी।

लेकिन तब वह उडान पर वापस क्यो गया?

क्या यह उसका अहकार था? हिलारी ने लिखा था—"मुझे स्वय आश्चर्य है कि क्या यह सही है, जैसा किसी बेवकूफ लडकी ने कहा था, मै सिर्फ अपने अहंकार की रक्षा करने के लिए वापस गया? मेरे विचार से यह गलत है, क्योकि मेरे वापस आने के निर्णय मे, मेरा यह विश्वास निहित था कि मैं जीवित नही बचूँगा।" आप बुद्धिमानी से इस उक्ति को तोड़-मरोड़ कर कह सकते है कि यह उस पर लादे गये अभियोग से उसे बरी नहीं करता। यह मान लिया, किंतु तब आपको उस प्रेरणा के लिए, जो अपने सतोष की खातिर विनाश स्वीकार करती है, अधिक उपयुक्त नाम खोजना पड़ेगा।

आत्मविनाश अथवा पीड़ा से आनंद प्राप्त करने की प्रेरणा? उसने एक पत्र मे लिखा—"मेरे मित्र! मै उस व्यक्ति की तरह हूँ, जो अँधेरी सुरग से गुजरता है और बहुत दूर पर दीख पड़ने वाले प्रकाश पर नजर जाते ही आनंद से उछल पड़ता है, फिर हिचकिचाता है, उसे सदेह होता है—यह भ्रम-जाल तो नहीं! पुनः आश्वस्त हो, वह आगे बढता है—मौन, उसका हृदय धक धक करता है और जब वह प्रकाश मे पहुँच जाता है, तब सतोष की साँस लेता है, आनंदाश्रु बहाते हुए मानो अपना अतःकरण उड़ेल देता है—रिचार्ड!" एक युवक, जो इस प्रकार का प्रेमपूर्ण पत्र लिखता है, कठोर और निर्दय प्रवृत्ति का नहीं प्रतीत होता। किंतु, पुनः कोई यह तर्क पेश कर सकता है कि ये दोनो गुण किसी एक मे हो सकते हैं, चलिए यह भी मान लिया।

ध्येय-विशेष के प्रति भ्रांतपूर्ण आसक्ति? . . . हिलारी ने लिखा है—"अपने शुभेच्छुओं को, गलत स्थान पर दिखायी गयी उनकी दया के लिए, थोडा विक्षिप्त बने और बनावटी नम्रता का सहारा लिये बिना मै, तत्काल उन्हें धोखा नहीं दे सकता था। अतः मै पाखडी बना रहा। वे कहेगे—'हमें विश्वास है, अवश्य ही उनके पास कुछ ऐसा था, जिसने तुम्हे हानि पहुँचायी। निश्चित रूप से, उन शैतानो से तुम बुरी तरह घृणा करते होगे।' और मै क्षीण स्वर में कहूँगा—'मै नहीं जानता।' बस, इतना ही। मै यह नहीं समझा सकता था कि उनके युद्ध मे मै घायल नहीं हुआ था, 'आवर आइलैंड फोर्ट्रेस' अथवा "मेकिंग द' वर्ल्ड सेफ फार डेमोक्रेसी" के विचार, युद्ध में जाते समय, मेरे

लिए घातक नहीं प्रमाणित हुए। मैं यह नहीं कह सकता था कि जो भी तकलीफ मुझे हुई है, उसके लिए मुझे अफसोस नहीं है, बल्कि मैं उसका स्वागत करता हूँ और अब, जब युद्ध समाप्त हो चुका है, मै एक प्रकार से इसके लिए कृतज्ञ हूँ और यह निश्चित है कि समय पर, यह मुझे अपने निजी विकास के मार्ग पर बढने मे सहायता करेगा।" किंतु शायद यह कोरी विनम्रता है अथवा अधोमुखी अहंकार—युवा अंग्रेज अपनी त्रुटियो का बढा-चढ़ाकर वर्णन करना पसद करते हैं।

इस प्रकार हम चालाकी और विश्लेषण का सहारा लेकर इस पीडित व्यक्ति पर तब तक लेबिल चिपकाते जा सकते हैं, जब तक वह विश्व-भ्रमण के लिए निकले व्यक्ति की लेबिल लगी ट्रक की तरह नहीं लगने लगे। ऐसे वक्तव्यों मे सदैव कुछ न-कुछ सत्य रहेगा और वह हर किसी पर किसी-न-किसी रूप मे अवश्य लागू होता है। अगर हमारे विशेषणो मे कोई एक प्रत्यक्ष रूप से सही नहीं बैठता, तो हम इसका रूप बदल सकते हैं और इसे जरूरत से ज्यादा प्रतिफल अथवा 'शमित का प्रतिशोध' की सज्ञा दे सकते हैं। हमे अपने ये छोटे विशेषण अवश्य ही प्रिय हैं, वे हमे व्यग्रता और उदासीनता से—दु खद उलझनो का सामना करने की आशका से—बचाते है। हम अपनी ज्योति को, तारों के नीचे मोमबत्तियों के प्रकाश के समान ही प्रकाशमान रखना पसद करते हैं। किंतु एक बार जहाँ वह बुझ गयी—इतने बड़े आकाश के नीचे, जहाँ से हम रवाना हुए थे, लौटकर वही आ जाते है। हमारे विशेषण धूमिल पड़ जाते हैं, लेबिलें उखड़ जाती हैं, सिर्फ व्यक्ति बच जाता है—तारों के नीचे अकेले—उस शक्ति के सामने, जिसका कोई नाम नहीं है और जो उसके विनाश के लिए निर्धारित की गयी है। हम उसके भाग्य के विरुद्ध उसकी बुद्धि—दतकथा के विरुद्ध मनुष्य—का सघर्ष देखते हैं और दतकथा मनुष्य का भक्षण कर जाती है।

अपने एक पत्र मे हिलारी ने लिखा—"मै सोचता हूँ, मै वापस जाऊँगा। और अधिक विवेकपूर्ण मै नहीं बन सकता। सहज प्रवृत्ति ही इसका निर्णय करे। सम्भव है, ऐसा इसलिए है कि मै स्वय अपने-आपे मे लौट आया हूँ। मै नहीं कह सकता। मै इस पत्र से कुछ नहीं समझा (तुम शायद समझ जाओगे) और फिर भी यह किसी रूप मे व्याख्या प्रतीत होती है।.. पुनः यह शाति के वही वृत्त हैं। उन्हे निश्चित रूप से वापस आना चाहिए—निश्चित रूप से।"

किस प्रकार वह जाल मे उलझा हुआ सघर्ष करता है—बच निकलने के

लिए, जीवित रहने के लिए! आखिर, केवल बाईस वर्ष की उम्र थी उसकी। वह एक पत्र में लिखता है—

"प्रिय, मैं तुमसे विनती करता हूँ, इस हल्केपन पर तुम अपनी भौहे न सिकोडो, क्योंकि वस्तुतः यह वह नहीं है, जो प्रतीत होता है। यह एक व्यग्र अंतःकरण की प्रक्षुब्ध धड़कने है। हल्के-से आवरण से ये ढँकी हैं, बस! ...

"यदि मैं बेवर्ली निकोलस (Beverley Nichols) होता, मेरे पैरों मे स्वेड के जूते होते और सामने डेफोडिल्स (एक प्रकार के विलायती फूल) होते, तो मैं स्वच्छद बाहर भ्रमण करता और जीवन का आनद पाने के लिए उनके बीच मे उछल-कूद मचाता। किंतु ये तीनों चीजें मेरे पास नहीं हैं। अतः मै 'मेस' की मदिरा की बोतल पर ही सतोष कर लेता हूँ। स्वयं में प्रसन्न रहने का एक हल्का-सा भाव-मात्र ही दृष्टिगत होता है, जो इसका प्रतीक है कि अपने अंतर मे मै सुखद भविष्य की उम्मीद को चिपकाये हूँ। .. .."

कुछ भी हो, हिलारी केवल बाइस वर्ष का था। इससे दुगुने साल की उसकी अवधि कम-से-कम अभी और बाकी थी। लेकिन बचने की कोई सूरत नही थी और वह इसे अनुभव करता था। अतः जो बेनाम शक्ति उसे विनष्ट करती है, उसका नामकरण करने का प्रयास वह बारम्बार करता था—"और अधिक विवेकपूर्ण मै नहीं बन सकता। सहज प्रवृत्ति ही इसका निर्णय करे"—आरभ से अत तक उसके विभिन्न प्रयासों पर हमने विचार किया है। निर्णय हो जाने के बाद भी उसने पुनः एक प्रयास किया—इसे विवेकपूर्ण बनाने के लिए। इस दैवी घटना का रहस्योद्घाटन करने का उसका अंतिम प्रयास ही उसके पत्रों मे छाया है, जो उसने अपनी मृत्यु के पूर्व के कुछ अंतिम सप्ताहों में लिखे थे। यथा—

"केनिगटन के सम्बंध मे तुम्हारी भावना भी मजेदार रही। अगर मै उसके साथ नहीं रहा होता, तो मुझे "द' मिट" नहीं पढ़ना चाहिए था और यदि इसे मै नहीं पढ़ता, तो (शायद) मुझे वापस नहीं आना चाहिए था।"

इसका अर्थ निम्न अश से स्पष्ट हो जाता है, जो उसने एक सप्ताह बाद लिखा था—

"जब मै अभी भी अस्थिर चित्त था, मैंने "द' मिट"—वायुसेना में टी. ई. लारेंस की अप्रकाशित यातना—पढी। उसमें अक्सब्रिज में, वायुसेना के उच्च कर्मचारी की हैसियत से बितायी गयी उसकी अवधि का वर्णन था। यह मै स्वीकार करता हूँ कि मैं इससे बहुत प्रभावित हुआ, क्योंकि इसमे मुझे वही मिला, जिसकी मुझे तलाश थी। वायुसेना के उन कर्मचारियों और उनके साथ जिन

छोटी-छोटी चीजों में उसने हिस्सा बँटाया—जैसे यातनाएँ—उनके बीच, उसने एक प्रकार की मित्रता की भावना और प्रसन्नता का अनुभव किया, जो पहले उसे नहीं मिली थी।

"मैं उसी के लिए वापस आया और फिर भी... "

तो इसी के लिए वह वापस आया था, मित्रता और प्रसन्नता की भावना लेकर। सात महीने पूर्व लिखे गये "मानवता आकंठ दुर्भाग्य से ग्रसित है" से यह काफी दूर का मार्ग है। जो कम उम्र मे मरते है, वे बडी तेजी से रास्ता तय कर लेते हैं। किंतु यह भी अंतिम लक्ष्य नहीं है। अपने वापस आने के उद्देश्य को स्पष्ट करने के इस अंतिम प्रयास के पीछे अद्‌भुत दुर्भाग्य था, क्योंकि उसने एक पत्र मे लिखा था—

"...और फिर भी स्वय को पुनः तीन साल पहले ले जाना कठिन है। युवा उड़ाके वही हैं और फिर भी जैसे वे वह नहीं है—किसी प्रकार की कमी है उनमे। मैं अभी भी बाहर हूँ. ..मैं कभी-कभी युद्ध-विषयक भाषण में सिर उठाकर देखता हूँ। मुझे उम्मीद रहती है कि मैं अपनी बगल मे नोएल एगेजेरियन (Noel Agazarian) को बैठा देखूँगा, किंतु उसके बजाय कोई मुहासे वाला युवक मेरी बगल में बैठा अपनी नाक खुजाता रहता है ।"

और उसी पत्र मे इसके पहले :

"यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि यह स्थान इतना सर्द और उजाड है—सिर्फ मकानो तथा वृक्षों से नहीं, बल्कि सभी मानवीय सम्बधो की दृष्टि से भी!...पहली दो रातें मैं धीरे-धीरे चलकर अपनी झोपड़ी में वापस आ गया और एक बच्चे के समान रोता रहा। इसका मुझे स्वय आश्चर्य है, क्योंकि मैं समझता था कि इसके लिए मैंने स्वय को फौलाद बना लिया है .."

इवेन लारेंस भी, जिसका उस पर इतना अधिक प्रभाव था, उसके काम नही आता। अपने पहुँचने के दूसरे दिन, वहाँ के पुस्तकालय मे, उसे पहली पुस्तक जो मिली, वह थी, डेविड गारनेट द्वारा सम्पादित 'लारेंस के पत्र'। यह उसके लिए एक विलक्षण महत्त्व वाली प्रतीत होती है। उसने एक पत्र मे लिखा है—"मैंने वह पुस्तक निकलवायी और तुम चाहे, विश्वास करो अथवा नहीं, इस पृष्ठ. .को खोला।" फिर वह लारेंस की वायुसेना में वापस जाने की इच्छा पर गारनेट के वक्तव्य का हवाला देता है—

"आश्चर्य होता है। क्या उसकी इच्छाशक्ति उसकी बुद्धिमत्ता से अधिक महान् नहीं हो गयी है? कुछ उपद्रव करके उस पर अभिमान करने का इस युवक

का दुस्साहस एक ऐसी चीज है, जिसकी हम प्रशसा करते हैं, किंतु एक शिक्षित मनुष्य के लिए यह हास्यास्पद और असाधारणता का चिह्न है।"

लारेंस पर दिया गया निर्णय वह स्वय पर लागू करता है। यह उचित मूल्याकन नहीं है—"मित्रता और प्रसन्नता" की तलाश सम्बंधी उसके उद्देश्यों से उसे भयानक रूप से परे हटा देना है। वह अपने नैराश्य और एकाकीपन के सम्बध में शिकायत करना बंद नही करता। वह लिखता है—

"शायद यह सिर्फ बिलकुल अकेले होने का भय ही है, जब कि मै सोचता था, मुझे एकाकीपन बहुत पसंद है। परतु यहाँ के एकातवास मे मानवीय सम्पर्क का पूर्ण अभाव है। कितना भयानक है यह—कड़वी गोली निगलने के समान ही! वे आदमी नही, केवल यत्र हैं। युद्ध-सेना मे आदमी थे, उनसे बाते कर सकते थे, उन्हे प्यार कर सकते थे। . ..मेरा तुम पर इतना प्रेम है कि कभी-कभी ऐसा लगता है, मानो मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा। अपनापन, मानवता, हास्य, बुद्धि—यहाँ जिन-जिन गुणो का अभाव है, तुम उन सब के आगार हो।"

निश्चय ही, उस भयानक नीरस जीवन मे कुछ हर्ष के क्षण भी थे। दो एंजिनवाले विमान को पहली बार अकेले उड़ाकर वापस ले आने पर जब वहाँ के युवा वायुयान चालक उसे बधाई देते हैं, तब उसका हृदय आनद से भर आता है।

वह एक पत्र मे लिखता है—"आखिर वे आदमी ही हैं। उनके स्नेह की पुरानी उष्णता भी मुझे नयी प्रतीत होती है। औषध अपना काम कर रही है।

"मै एक समाचार-पत्र उठा लेता हूँ—'बेवरीज रिपोर्ट'! आह, वह युद्धोत्तर परिस्थिति पर विचार कर रहा है। लेकिन हमे युद्धोत्तर काल की क्या चिंता है! तब तक हम मर चुके होंगे। देखे, 'डेली मिरर' मे जेन क्या कर रही है? हम पृष्ठ उलटते हे, उसके पैरो के विषय मे अपने विचार व्यक्त करते हैं और मै अपने चारो ओर के चेहरो को गौर से देखता हूँ और जो मै देख पाता हूँ, उससे मुझे प्रसन्नता होती है। मै खुश हूँ।

"हम भोजन-गृह की ओर जाते हैं और बाद मे, अलाव के इर्द-गिर्द बैठते हैं, शराब मँगाते हे. और मँगाते हैं, फिर गप्पे लडाते हैं। समय बीतता जाता है। क्या मै दुःखी हूँ? हाँ, लेकिन थोडा-सा—बहुत थोड़ा-सा, क्योंकि कल मुझे पुनः उडान भरनी होगी।"

किंतु स्नेह और सुख के ऐसे क्षण थोडे ही होते हैं और जो होते हे, वे भी

दिखावटी—कृत्रिम। तुरत ही, उसके मन पर एकाकीपन एक बार फिर हावी हो जाता है। उसकी जिंदगी के दिन गिने हुए हैं। अब उसे केवल दस ही दिन जीना है।

वह एक पत्र में लिखता है—"मैं के. के सिद्धान्त पर विचार करता हूँ। जब तक व्यक्ति शारीरिक रूप से थक नहीं जाता है, तब तक मृगतृष्णा के पीछे पागलों-सी दौड़-धूप चलती रहती है।

"आज रात मुझे लगभग विश्वास हो गया है कि वह ठीक कहता है। किंतु उसका सिद्धात ठीक नहीं होना चाहिए, क्योंकि 'मित्रता और सुख' की तलाश में ही मैं वापस आया हूँ।"

दस दिन और—फिर यह सारी दौड़-धूप खत्म हो जायेगी। लेकिन क्या यह सच है कि वह इसी कारण वापस आया था? पर मित्रता किससे? मुहासेवाले युवक के पीछे नोएल अगेजेरियन, पीटर पीज और कोलिन पिकने तथा दूसरे मित्रो की आकृतियाँ हैं। अपने साथियो मे—ब्रिटेन की लडाई मे भाग लेने वाले उडाको मे—वह अकेला बचा था। हवाई अड्डे के युवा वायुयानचालक "किसी न-किसी रूप मे पहले की तरह नहीं हैं।" हिलारी केवल २३ वर्ष का था, लेकिन वह बहुत वृद्ध दीखता था—मानो पिछली पीढी का हो! एक-के-बाद-एक उसके सब साथी मारे गये थे। इस सम्बंध मे हिलारी ने अपनी पुस्तक "द' लास्ट एनिमी" मे एक वाक्य लिखा है। वह वाक्य समाधि-पत्थरो की कतार के समान ही प्रतीत होता है। "इस उडान से ब्रूडी बेसन वापस नहीं आया। इस उड़ान से बबल वाटरसन वापस नहीं आया। इस उड़ान से लैरी कनिंघम वापस नहीं आया।" जब-जब वे वायुयान-चालक अपने-अपने वायुयान पर चढे और युद्ध के लिए रवाना हुए, तब ऐसा लगता था, मानो वे अपने दिवगत साथियों को भावुकतापूर्ण श्रद्धाजलि अर्पित करते थे। हिलारी अकेला बच गया था और उन्हे श्रद्धाजलियाँ अर्पित करने जाता था; क्योंकि जीवित बच जाने वाला सदा कर्जदार रहता है। हिलारी ने सोचा था, वह वापस आया है, जीवित प्राणियों से मित्रता करने, जब कि मृतको से उसका पहले से ही भाई-चारा था।

हम देखते हैं कि अपने ध्येय की मीमासा करने और उसे विवेकपूर्ण बनाने का उसका यह प्रयास पहले के प्रयासों के समान ही, सत्य का आधार लिये था—लेकिन पूर्ण सत्य नहीं। शायद अतिम और पूर्ण सत्य उन सूत्रों से निर्मित—जिन्हें हमने एकत्र किया, कुछ समय के लिए उनका अनुसरण किया और फिर उन्हे छोड़ दिया—एक ढाँचा है। पर सब सूत्रों को एकत्र करने से ही ढाँचा

नही तैयार हो जाता है। उसका अपना प्रतीकात्मक स्वरूप है, जिससे ये सूत्र बिलकुल अनजान हैं। वे मामूली धागे हैं—कारण और प्रभाव से बुने हुए धागे; किंतु पूर्ण हुए स्वरूप मे प्रभाव, कारण का सचालन करता प्रतीत होता है। धागे अस्थायी हैं और ढॉचा स्थायी!

३

शायद मुझ पर कल्पित कथा गढने का आरोप लगाया जाये। कुछ लोगो को अपने नायको को मिट्टी की प्रतिमाओं के रूप मे देखना पसद है—कुछ लोग एक दूरवीक्षण यत्र से, सिर-से-पैर तक उनकी जॉच करना पसद करते हैं। पहली श्रेणी के व्यक्तियो को हिलारी के पत्रो के प्रकाशन से दुःख पहुँचेगा, जब कि दूसरी श्रेणी के व्यक्ति प्रसन्न होंगे। अंतिम दिनो के उसके पत्र वस्तुतः बडे भयानक हैं। ये उस आदमी के पत्र हैं, जो शीशे मे स्वय को देखकर यह जान लेता है कि वह समाप्तप्राय है। हिलारी ने लिखा है—

"दिन-भर रो-रोकर मेरी ऑखे फूल गयी हैं। अपने कमरे मे, एकात मे, मैं घटे-भर तक एक छोटे बच्चे की तरह रोता रहा था। क्यो? डर के कारण? अभी तक मैंने यह नहीं देखा है कि वायुयान कैसा है और अब तक मैं यह नहीं जानता हूँ कि रात भयावह होगी अथवा नहीं। यहॉ के वातावरण के कारण ही इस भय की सृष्टि हुई है? बहुत-कुछ अंश मे ऐसा ही है, यह मैं जानता हूॅ। शायद वायुसेना मे 'नैतिक सूत्र का अभाव' इसे ही कहा जाता है। मुझे बहुधा ताज्जुब होता है। एक बार व्यक्ति का धैर्य टूट जाने के बाद ऐसा ही होता होगा। किंतु मुझे किसी चीज का स्पष्ट डर नहीं लगता। केवल मै दुःखी हूॅ—इतना दुःखी कि कहा नहीं जा सकता ।"

यह दुःख मुख्यतया शारीरिक कारणो से ही है। हिलारी लिखता है—

"...मैं कुछ स्वार्थी हूॅ। इसलिए मेरे सामने यही प्रश्न मुख्य है कि यहॉ की अत्यंत तीव्र ठड मेरे हाथ-मुॅह की जली हुई चमडी को कहीं निर्जीव न बना दे। उससे भी अधिक डर इस बात का है कि मेरी आत्मा मे पैठ कर यह ठड मेरे सारे शरीर को निर्जीव बना देगी। मेरे अंतर्मन मे छिपा हुआ भय ही यहॉ के वातावरण के कारण बाहर निकल आया है। ..इस जगह, रात्रि के समय, इस ठंड मे मै मर जाऊॅगा, यही भय मुझ पर हावी होता जा रहा है।"

निश्चय ही, उसने साहस नहीं छोड़ा था। हवाई अड्डे पर किसी को उसकी

इस मनोव्यथा का आभास तक नहीं था। वहाँ के लोग उसे खूब पसंद करते थे। अपने दग्ध मुँह और हाथ के साथ अपने कृत्रिम होठों पर बच्चों-सी सरलता बिखेरे जब कदम बढ़ाता वह हवाई अड्डे की ओर जाता, तो लोग उसे देखते ही रहते थे। वे उसे 'दिलचस्प प्राणी' के नाम से पुकारते थे। और वहाँ की दिनचर्या थी, मद्यपान, नृत्य और विमान-दुर्घटनाएँ। वह इन सब का आदी बन गया था।

उसके जीवन मे कुछ क्षण निराशा के थे, तो कुछ हर्ष के। एक पत्र मे वह लिखता है—

"आज काफी अच्छा लगता है, क्योंकि आज मैंने वास्तव में उडान भरी है।. सर्दी से दाँत किटकिटा रहे हैं, इसीसे पैदल चलना पडता है, अन्यथा यह समय हवाई अड्डे पर मौन बैठकर इस प्रशात स्तब्धता की ओर एकटक देखते रहने का है। सर्वत्र निस्तब्धता विराज रही है। उडनेवाले और नीचे उतरनेवाले वायुयानों की मशीनों की आवाज ही सिर्फ सुनायी देती है।

"मनोविज्ञान की दृष्टि से यह बात कितनी अद्भुत प्रतीत होती है कि मेरा संहार करने का अवसर खोजनेवाले उस फौलादी वायुयान में कदम रखते ही मेरा भय भाग जाता है और मन को शाति महसूस होती है।"

उसके जीवन मे कुछ क्षग अत्यत अन्यमनस्कता के भी होने है, जिनके लिए उसकी इच्छा होती है कि ये जल्दी से जल्दी समाप्त हो जायँ। मृत्यु से एक सप्ताह पूर्व ही, उसने हवाई अड्डे पर एक नृत्य देखा था। उसका उल्लेख करते हुए वह लिखता है—

"मुझे अब सोने जाना है, लेकिन मदिरा के नशे मे मदहोश लोगों को देखने के लिए मैं रुका हूँ। रात के ढाई बज रहे हैं, फिर भी मै यहीं रुका हूँ। न जाने क्यों, कुछ खोया-खोया सा लगता है। यह भावना युवको और अधेड़ स्त्रियों मे पायी जाती है। मैं इस भावना पर बहुत पहले ही काबू पा चुका हूँ—कुछ खोने का भय—फिर भी मैं रुका रहा।"

सबसे बुरा यह है कि अपने 'अहंकारी अभिप्रायो' के लिए वह स्वय का तिरस्कार करता है। वह लिखता है—"इस लम्बे और स्वय पर तरस खानेवाले पत्र के लिए मुझे क्षमा करना (मुझे विश्वास है, यह सच है)। अगर सम्भव हो, तो मेरे लिए शर्मिंदा मत होना।" दिवगतों के भाईचारे का यह विचित्र शिष्टाचार है। उनके साथ सम्बंध बनाये रखने के लिए मृत्यु को अपनाना ही पडेगा—यह भावना हिलारी के मन मे घर कर चुकी थी। किंतु पुन, लेखक होने

के नाते उसमें यह जानने की उत्सुकता भी है कि उसकी नाड़ी की गति क्या है; लम्बे-लम्बे पृष्ठो पर अपनी मनोव्यथा का चित्रण करने की इच्छा भी है। आत्मनिरीक्षण और आत्मवंचना, स्वीकृति और विद्रोह, अहंकार और विनय, तेईस वर्ष की उम्र और अनत काल—इन द्वद्वो मे उसका मन परेशान हो जाता था।

एक दूसरे पत्र मे वह लिखता है—"कोस्लर (Koestler) के पास इसके लिए एक सिद्धात है। उसका विश्वास है कि हमारे जीवन की दो अवस्थाएँ हैं—एक दुःखद जीवन और दूसरा, तुच्छ जीवन। प्रायः तुच्छ जीवन की सतह पर हम विचरते हैं, किंतु समय-समय पर, गर्व और भय के क्षणों मे हम स्वय को दुःखद जीवन की सतह पर स्थानातरित पाते हैं। मानवीय अवस्था का एक दुर्भाग्य यह है कि हम किसी सतह पर स्थायी रूप से नहीं रह सकते, बल्कि दोनों के बीच झूलते रहते हैं। जब हम तुच्छ जीवन की सतह पर होते है, तब दूसरे की यथार्थताएँ बकवास लगती हैं। जब हम दुःखद जीवन की सतह पर रहते हैं, तब दूसरे के सुख-दुख छिछले और मूर्खतापूर्ण लगते हे। कुछ लोग सारी जिदगी यह तय करने मे ही बिता देते हैं कि किस सतह पर रहा जाये। वे इस सत्य को पहचानने मे असमर्थ रहते हैं कि हमें बारी-बारी से दोनो सतहो पर रहने का दड मिला हुआ है। किंतु ऐसा होता है कि असाधारण परिस्थितियों मे—उदाहरणार्थ, यदि किसी को लम्बे अर्से तक शारीरिक संकट की स्थिति मे रहना है—व्यक्ति दोनो सतहों की विभाजन-रेखा पर आ जाता है। यह एक अद्भुत स्थिति है—कसे हुए रस्से पर चलने के समान ही। चूँकि बहुत कम लोग इसे सह सकते हे, अतः वे सिद्धातो और धारणाओं को विस्तृत कर देते हैं—उदाहरणार्थ, वायुसेना की भद्दी भाषा और किसी बात को दबा कर कहने का तरीका। दूसरे शब्दो मे, वे दुःखद और तुच्छ सतह को एक सदृश करने की चेष्टा करते हैं। कोस्लर के विचार से, दुःखद और प्रबल सिद्धात को एक प्रतिष्ठित लौकिक सिद्धात मे बदल कर स्थिर कर देना, सभ्यता की क्रमिक उन्नति का मुख्य मार्ग है। मेरे विचार से वह सही है।"

यथार्थ मे, मै अभी भी विश्वास करता हूँ कि लक्षणों के अनुसार यह सही है। एक सतह से दूसरी सतह की उछाल ही साधारण व्यक्तियों को नायक बना देती है—मनोविज्ञान को धर्म मे बदल देती है। ब्रिटेन के युद्ध मे हजारो ऐसे प्रतिबिम्ब पृथक्-पृथक् देखने को मिले। सिर्फ समय बीतने का भी यही परिणाम है, क्योंकि वर्तमान मुख्यतः तुच्छ सतह पर है, जब कि इतिहास सदा दुःखद

सतह पर रहता है। जिस प्रकार ज्वालामुखी फूटने पर, (पम्पाई में जैसा हुआ) पाठशाला जानेवाले बच्चे गोलियॉ खेलते-खेलते प्रस्तर-स्मारक मे बदल जाते हें, उसी प्रकार मानव पर युद्ध का दुःखद परिणाम होता हैं।

किंतु शायद कोई यह कहेगा कि लावा ने उन लडको को स्मरणीय बना दिया!

४

दोनो सतहों की विभाजन-रेखा पर—कसी हुई रस्सी पर—चलने का अभिशाप एक प्रकार के व्यक्ति को और मिला है—कलाकार को, विशेष कर लेखक को। यान-चालक दु.खद सतह को तुच्छ सतह की ओर बढ़ाकर यह तनाव सह सकता है; किंतु कलाकार दूसरी ओर बढता है। वह दु.खद अथवा सम्पूर्ण सतह के स्वरूप से तुच्छ को देखने का प्रयास करता है।

क्या हिलारी एक लेखक की हैसियत मे ऐसा करने मे सफल रहा? आशा तो स्पष्ट ही लक्षित है, मेरा विश्वास है, उसे सिद्धि भी मिल जाती। वायुसेना के लेखको मे सेंट इक्सपरी (St Exupèry) के साथ उसका एक विशिष्ट स्थान है। दूसरो की तुलना मे—"जहॉ लोग कैमरा हाथ मे लिये प्रतीक्षा करते रहते हे कि सयोग मिले और उन्हे अच्छी तस्वीरे उपलब्ध हों"—वह एक पेशेवर कैमरामैन (फोटोग्राफर) की तरह सिद्धहस्त है, जिसे सदा अच्छी तस्वीरे मिल जाती हैं—सयोग चाहे उपलब्ध हो अथवा नहीं।

"द' लास्ट एनिमी" नामक उसकी पुस्तक से यह सिद्धहस्तता स्पष्ट दिखायी देती है। उसकी लेखनी मे प्रथम श्रेणी का सजीव चित्रण करने की योजना है। यथार्थता, सुस्पष्टता, तेजस्विता, अर्थ-गाम्भीर्य, उत्साह—आदि सभी आवश्यक गुण उसमें थे। इस पुस्तक के दो प्रकरणो के लिए मै उसे युद्ध का सर्वोत्तम चित्रण करनेवाली पुस्तक कहूँगा। ये प्रकरण हैं—"द' वर्ल्ड आन पीटर पीज" और 'आइ सी, दे गाट यू टू।' और, इन्हीं दो प्रकरणों से यह सिद्ध होता है कि वह केवल रिपोर्टर ही नहीं था। इन प्रकरणो मे वह नैतिकता के मूल्याकन की समस्या सुलझाने की चेष्टा करता हे। और यहॉ उसकी सारी सुविधा, सारी वाक्-चपलता उसका साथ छोड देती है। उसकी भाषा नीरस बन जाती है। उसके विचार उलझ जाते ह। ऐसा प्रतीत होता है कि भावातिरेक के कारण वह घबडा जाता है और इसी से ठहर-ठहर कर बोलता है। वह अपनी पुस्तक मे लिखता है—

.. "मैं इन व्यक्तियों के बारे में लिखूँगा, पीटर के बारे मे और दूसरो के बारे में लिखूँगा। मैं उनके लिए उनके साथ रहकर लिखूँगा। वे मेरी बगल मे रहेगे। इन व्यक्तियों से अथवा जिसे सम्बोधित करके मै यह पुस्तक लिखूँगा, उनसे मेरा अभिप्राय किनसे है, मैं यह भी जानता था—मानवता से। मानवता ही किसी पुस्तक का पाठक-वर्ग है। हॉ, वही तिरस्कृत मानवता—जिसका मैंने पीटर के सम्मुख उपहास किया था, जिसे मैंने धिक्कारा था।"

भावना के आवेग में लिखे उन दो सर्वांग सुंदर प्रकरणों की और इसकी तुलना करके देखिये, तो ज्ञात हो जाता है कि कहॉ आशा सिद्धि से दूर हो जाती है। भावना-प्रधान ज्ञान का उल्लंघन और यथार्थता को सूचित करने की सुविधा ही दो ऐसे मूल गुण है, जो लेखक को जन्म देते हैं। "द' लास्ट एनिमी" के लेखक के बारे मे ऐसा आभास होता है कि पुस्तक में इन दोनों का समन्वय करनेवाले का अलग-अलग अस्तित्व है। किंतु पुस्तक मे ऐसे स्थल भी हैं—और ऐसे स्थल काफी है—जहॉ लेखक के दोनो रूप वस्तुतः मिलते हैं। उदाहरणार्थ, ऑखो-देखी विमान की प्रथम प्राणघातक दुर्घटना के सम्बध मे वह लिखता है—

"एक झोपडी मे 'शस्त्रविद्या' पर व्याख्यान हो रहा था। व्याख्यान समाप्त हुआ ही था कि हमारे कानो मे, काफी ऊँचाई से आनेवाली चीख टकरायी। आकाश से नीचे की ओर तेजी से गिरते हुए वायुयान से वह चीख सुनायी पडी थी। कारपोरल (फौज का एक छोटा अफसर) नीचे बैठ कर सिगरेट पीने की तैयारी करने लगा। उसने सिगरेट का कागज निकाला, तम्बाकू का डिब्बा खोला, कागज पर थोडी तम्बाकू रखी, उसे लपेट कर सिगरेट बनाया और कागज के कोर पर जीभ फिराकर उसे चिपका दिया। सिगरेट उसने मुँह मे लगाया और तभी हमने यान के गिरने की आवाज सुनी। हम जहॉ थे, वहॉ से कोई एक मील के फासले पर यह दुर्घटना हुई होगी। सिगरेट सुलगाते हुए, वह अफसर बोला—'मुझे इसके पहले घटी एक ऐसी ही दुर्घटना की याद है। मै उस समय सफाई-दल मे था। वह कोई अच्छा दृश्य नहीं था।'

"बाद में, हमे ज्ञात हुआ कि युद्ध-सामग्री लेकर आदमी अधिक-से-अधिक कितनी ऊँचाई पर जा सकता है, वह यान इसी की परीक्षा कर रहा था। चालक सम्भवतः बेहोश हो गया होगा। उसके अवशेष नहीं मिले, किंतु हमने शव-पेटी रेत से भरी और बड़ी धूम-धाम से उसका अंतिम संस्कार किया।"

यह है दुःखद और तुच्छ का मिलन। अस्पताल के प्लास्टिक सर्जरी के

भयानक कमरे का वर्णन करनेवाले अध्याय "द' ब्यूटी शॉप" मे भी हम इसे पाते है। उस "ब्यूटी शॉप" मे नाक, कपाल से आगे निकली होती है, कृत्रिम सफेद होठ मरक्यूरोक्रोम से लाल रगे होते हैं, कृत्रिम पलके, जिनका उपयोग नहीं हो पाता और जो बेकार हो जाती है, तोड कर टोकरी मे फेंक दी जाती हैं। किंतु यह सब ऐसे उत्तम और विलक्षण ढग से कहा गया है कि बुरा अनुभव करने के बजाय हम उन्मुक्त हँस पडते हैं। यह खूबी उसे कैसे प्राप्त हुई? यह विभाजन-रेखा पर चलने का ही प्रभाव है, क्योकि जो हमे विलक्षण प्रतीत होता है, वह वस्तुतः तुच्छ के विकृत दर्पण मे दुःखद का प्रतिबिम्ब है।

इस प्रकार के प्रसग पुस्तक मे भरे पडे हैं। हर दूसरे या तीसरे पेज पर ऐसे प्रसग मिलते हैं—आक्सफोर्ड की स्मृतियॉ, जर्मनी मे हुई एक नाव-दौड़, बम फेकनेवाले हवाई जहाज से प्रथम सम्बध, आतकपूर्ण रात्रिकालीन उडान, टार्फसाइड (Tarfside) के बच्चे, उडाको के चित्रण, हवाई सेना के प्रतिरूप—हवाई अड्डे का वातावरण, दुर्घटनाएँ, मृत्यु, शराब मे मत्त रहना, आपरेशन...और अधिक आपरेशन, अधापन, नर्सो के साथ झगडे और दर्शन-सम्बधी बाते। जीवन की दोनो सतहें अभी तक मिली नहीं हैं, किंतु एक पर विचरते हुए, वह दूसरी सतह से भी सम्बध रखता है। और, इससे यह विश्वास होता है कि अगर उसे कुछ सालों तक और जीवित रहने तथा कुछ और पुस्तकें लिखने का अवसर मिला होता, तो आशा पूरी हो गयी होती।

परतु अब, साहित्य मे हिलारी के नाम पर स्थान सदा रिक्त रहेगा, तथापि हम इस रिक्तता की कुछ आशावादिता के रूप मे व्याख्या कर सकते हैं। 'बुर्जुआ' (Bourgeois) उपन्यास दिन-प्रति-दिन नीरस एव निस्सार बनते जा रहे हैं, क्योंकि जिस युग में उनका जन्म हुआ था, वह युग ही अब समाप्त हो चला है। सुसस्कृत मध्यमवर्ग से मानवतावादी नये लेखको का उदय हो रहा है। इनमे हवाई सैनिक, क्रातिकारी, साहसिक व्यक्ति, सकटपूर्ण जीवन बिताने वाले व्यक्ति शामिल हैं। इन लेखको ने पर्यवेक्षण की एक नयी क्रियात्मक प्रणाली, अद्भुत अतरावलोकन और इससे भी अधिक अद्भुत चितन की प्रवृत्ति अपनायी है—साथ मे अध्यात्मवाद भी। सेट इक्सपरी, साइलोन, ट्रेवेन, हेमिंग्वे, मालरौक्स, शोलोखाउ, इस्ट्रेटी अग्रगामी हो सकते हैं, और हिलारी भी उनमे स्थान पा सकता था। किंतु एक पतली-सी पुस्तक, पत्रो का सग्रह, दो छोटी-छोटी कहानियॉ—बस, इतना ही शेष है और यह उस रिक्तता को भरने के लिए पर्याप्त नहीं।

थामस मेन का कहना है कि दीर्घकाल तक लोग याद रखे, इसके लिए पुस्तक

का उत्कृष्ट होना ही नहीं, बल्कि आकार में भी बड़ा होना आवश्यक है। दुर्भाग्य-वश यह सत्य होने पर भी हिलारी की पतली-सी पुस्तक पाठकों की स्मृति की गहराई में जा बैठने के लिए काफी वजनदार है—जब कि बहुत-सी वजनदार पुस्तकें स्मृति की ऊपरी सतह तक ही रह जाती हैं।

आखिर वह कौन-सी चीज है, जो इस युवा यान-चालक और लेखक के जीवन-मरण को प्रतीक बना देती है? हमारे इस आरम्भिक प्रश्न का उत्तर अभी तक बाकी है। क्योंकि यह प्रश्न जिन विचारों या मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है, अततः उन्हें, उसकी पीढी और वर्ग के विचारों तथा मूल्यों में समा-हित होना ही है। यही उसने अपनी पुस्तक में लिखा है—

"विश्वविद्यालय के अधिक बुद्धिमान् विद्यार्थियों में आत्मनाश का बीज अधिक स्पष्ट दिखायी दे रहा था। ये विद्यार्थी जिस मध्यमवर्ग से आये और विद्या प्राप्त कर सके, उसी मध्यमवर्ग का तिरस्कार करने लगे—उसी पर हमला करने लगे। इन्हें इसमें बढ़ावा मिला, अपने साहित्यिक आदर्शों से—ओडेन, इशरवुड, स्पेडर तथा डे लेविस के प्रति अपनी असदिग्ध भक्ति से। इस प्रकार अपने वर्ग के सीमित दृष्टिकोण के बधन से इनकार करने पर भी यथार्थवादी मजदूर-नेताओं द्वारा वे संदेह से देखे जाने लगे। वे उन्हें 'बुर्जुआ' 'आदर्शवादी' आदि कहने लगे। एक तिरस्कृत विश्व, जिससे वे आये थे और दूसरे, तिरस्कार करने वाले विश्व, जिसमें वे प्रवेश करने वाले थे, के बीच बड़ी संदिग्धता और झुँझलाहट के साथ वे अपना सतुलन बनाये हुए थे।"

तो इस रूप में उसने अपना अतीत देखा। परंतु उसके सम्बंध में तथा तत्कालीन वातावरण के सम्बन्ध में इसके विपरीत जानकारी देनेवाला एक पत्र उपलब्ध है। यह पत्र हिलारी की मृत्यु पर ट्रिनिटी कालेज के उपप्रमुख ने हिलारी के पिता को सात्वना देते हुए लिखा था—

"..फिर डिक अपने मोहक और महान् व्यक्तित्व के साथ पहुँचा और साल समाप्त होते ही उसने जो पराक्रम दिखाया, वह हमारी सस्था के इतिहास में अमिट रहेगा। हमारी सस्था-भर में उसका वर्ग उत्कृष्ट था और डिक अपने वर्ग में उत्कृष्ट था। एक नौका-दौड में उसने जिस फुर्ती और बहादुरी का परिचय दिया, वह अविस्मरणीय है—उसके चलते हमारे विद्यालय को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, वह कभी धूमिल नहीं होने की। सन् १९३९ में भी उसके अदम्य उत्साह और कौशल से विद्यालय की प्रतिष्ठा बनी रही, जो विद्यालय ने पिछले

वर्ष उसके नेतृत्व में पायी थी। और तब यह निर्दय युद्ध छिडा . ”

मेरा अनुमान है, इसे कोई एक विपक्षी तर्क कह सकता है, किंतु इसके बिना कुछ सध नहीं सकता। नौका-दौड़ मे उसने विलक्षण वीरता का परिचय दिया। वह और ओडेन एक प्रकार से एक-दूसरे के पूरक हैं। उस वीरता के अभाव मे वह ब्रिटेन के युद्ध मे भाग नहीं लिये होता, और ओडेन के प्रति भक्ति नहीं होती, तो "द' लास्ट एनिमी" पुस्तक नहीं लिखी जाती। अपनी परम्परा के विरुद्ध जिस वेग से इन युवकों पर प्रतिक्रिया हुई थी, वह प्रमाणित करता है कि उन पर परम्परा की पकड कैसी मजबूत थी। मनुष्य पर परम्परा का परिणाम दो प्रकार से होता है—एक सहारक और दूसरा शुद्धिकारक। अधिकाश व्यक्तियो पर उसका पहला परिणाम होता है—हिलारी की गणना दूसरे वर्ग मे होती है, जिसमे बहुत कम लोग होते हैं। आक्सफोर्ड की शिक्षा का जो इस पर परिणाम हुआ, उसे वह कुछ उल्लेखनीय पक्तियो मे कहता है—

"मैने वहाँ खूब पढा। उससे अधिक महत्त्व की बात यह है कि कितनी मदिरा पी जाये, महिलाओ के साथ किस प्रकार शिष्ट व्यवहार करना चाहिए, किसी की आँखो मे गडे तथा स्वय को उलझन में डाले बिना, दूसरों से कैसे सम्बन्ध बनाये रखा जाये—इन सबकी शिक्षा मुझे वहीं मिली। परिणामतः मुझ मे थोड़ा आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ। शिक्षा की किसी अन्य प्रणाली से मेरे लिए यह सर्वथा असम्भव था।"

लेडी फार्टस्क्यू ने हिलारी के सबन्ध मे उसकी प्रशसा करते हुए कुछ लिखा है, जो प्रकाशित नहीं हुआ है। वे लिखती हैं— "डेवान मे जंगल की सफाई के समय, मैने रिचार्ड हिलारी की अतिम उड़ान के बारे मे सुना। मौन बैठकर मैं, हवा मे बाजों को चक्कर काटते देखती। वे झपट्टा मारने को तैयार रहते और तब अपने शिकार पर टूट पड़ते। हिलारी ने भी अपने बम-वर्षक यान का इसी कुशलता से सचालन किया था। हमे और इग्लैड को सुरक्षित रखने के लिए, सकटों की पर्वाह किये बिना, दुश्मनों के विघ्नों की ओर से बेफिक्र वह मौत के मुँह मे कूद पड़ा।"

यह दूसरा विपक्षी तर्क कहा जा सकता है। किंतु हिलारी की स्वय अपने सम्बन्ध मे इसके विपरीत धारणा थी। "द' लास्ट एनिमी" मे उसने लिखा है—

" ..३ सितम्बर, १९३९ के दिन आक्सफोर्ड के युवकों की टुकडी युद्ध के लिए गयी हम लोग भ्रमजाल में फँस गये थे और हमारा सब-कुछ नष्ट हो गया था। समाचार-पत्रों ने 'विनष्ट पीढ़ी' के रूप मे हमारा उल्लेख किया और

हम अप्रसन्न नहीं हुए। बनावटी तौर पर हम स्वार्थपरायण और अहकारी थे, किंतु अहंकार करने योग्य दिव्य अनुभूति हममे नहीं थी। महायुद्ध ने हमारी यह कमी पूरी कर दी। इसके लिए कोई बहुत बडे पराक्रम की आवश्यकता नहीं थी। यद्यपि हम अनुशासनबद्ध नही थे, फिर भी हिटलर की सेना के सकल्पी युवको की तुलना मे इस किसी प्रकार कम भी नहीं थे। ससार के सम्मुख यही बात प्रमाणित करने का अवसर इस महायुद्ध ने हमे दिया।"

अपना अंतर पक्षपातरहित और निरभिमानी रखने की कह कैसी व्यग्रता है? कुछ लोग अपने कर्मो को निष्कलक रख के मरते है और कुछ लोग अपने अंतःकरण को निष्कलक रख कर मृत्यु का वरण करते हैं। पहले वाले ढंग से मरना आसान है—उनका जीवन-मरण उद्‌गार-चिह्नो द्वारा शासित होता है। किंतु हिलारी के लिए कठिन मार्ग था। इस मार्ग के अनुयायियो का जीवन-क्रम प्रश्न-चिह्नों से भरा रहता है, जिनको उन्हे स्वय सीधा करना पड़ता है।

किंतु जिस लक्ष्य की ओर वे सकेत करते हैं, हम उसका केवल अनुमान लगा सकते हैं। उसके सिद्धातों और तर्कों से हम इसका अनुमान नहीं लगा सकते, बल्कि उसकी रचनाओं के उन अंशो से ही इसका अनुमान लगाया जा सकता है, जहाँ वह अपने से वेसुध और अस्पष्ट है। वह पीटर पीज से—वही पीटर, अपने मित्रो में वह जिसकी सबसे अधिक प्रशसा करता है, जिसकी मृत्यु वह अपनी कल्पना-दृष्टि में देखता है और जिसकी स्मृति उसके लिए पीड़ा-दायक होने के साथ-साथ धर्म का रूप ले लेती है—कहता है—"इस युग मे अपने देश को प्यार करना भद्दा, ईश्वर से प्रेम करना पुराणपथी और मानवता को प्यार करना भावुकता मानी जाती है, किन्तु तुम इन्हीं तीनो से प्यार करते हो!" और उस एक वाक्य तथा उसके तीनों उपेक्षापूर्ण विशेषणों द्वारा हम उसके आवरित गृह-प्रेम की एक झलक पाते हैं, जो अपना अंतःकरण निष्कलंक रख कर मरते हैं।

शत्रु को छलने की कलापूर्ण सैनिक विधि और चपलता के बावजूद, कोई "सगठित भावना और देशभक्ति के अनादर" की भावना-मात्र से प्रेरित होकर स्वयं को तीन-तीन बार मृत्यु के मुँह मे नहीं भेजता है। सुनने मे तो यह बहुत अच्छा लगता है; पर सचाई यह नहीं है। किंतु ऐसा होता है—सम्भवतः जब कोई सामान्य से अधिक भावुक, वीर तथा गृह-प्रेम की बीमारी से पीडित होता है, तब वह ऐसा करता है—एक ऐसी भावना, ऐसे स्वीकृत मत की खोज में निकलता है, जो न तो भावुकतापूर्ण हो, न भद्दा और न प्राचीन तथा जिसके

सम्बध में कोई बिना किसी शर्म और दुःख के बोल सके। जब सभी वाद अर्थहीन हो जाते हैं, ससार कुटिल प्रश्नचिह्नों से पूर्ण हो जाता है, तब निश्चय ही, ईश्वर के प्रति मनुष्य की उत्कंठा इतनी प्रबल हो उठती है कि वह लौ पर झपटने वाले पतिंगे के समान आचरण करता है और अपने पंख जलाकर लौट आता है। किंतु यह अवश्य ही मानव की एक ऐसी सहज प्रवृत्ति है, जिस पर विवेक का जोर नहीं चल सकता।

वस्तुतः रिचार्ड हिलारी की तीन बार मृत्यु हुई—वह तीन बार जलाया गया। पहली बार आपरेशन करके और टुकड़े जोड़-जोड़ कर उसे नया चेहरा दिया गया। यह व्यर्थ था, क्योंकि दूसरी बार उसका शरीर झुलस कर जले कोयले के समान हो गया था, किंतु जो प्रक्रिया है, वह अवश्य पूरी हो, इसीसे उसकी इच्छा थी कि उसे विधिवत् दफन किया जाये। अतः गोल्डर्स ग्रीन में १२ जनवरी, १९४३ को उन्होंने तीसरी बार उसका अतिम सस्कार किया और कोयला राख बन गया—राख समुद्र मे मिल गयी।

यहीं मनुष्य का जीवन समाप्त होता है और दंतकथा आरम्भ होती है। यह, विनष्ट पीढी—अधार्मिक युद्ध लडनेवालो, अयोग्य सरदारों और उन व्यक्तियों की, जिन्हें लड़ने के लिए कुछ भी चाहिए—की दतकथा है। यह बिना किसी क्रास के धर्मयुद्ध और क्रास की तलाश मे भटकने वाले धर्म-योद्धाओं की दतकथा है। कौन-सा धर्म—ईसा का अथवा बाराबास का—वे ग्रहण करेंगे, यह देखना अभी बाकी है।

बुद्धिजीवी वर्ग*

जो शब्द समझने में सरल, किन्तु जिनकी व्याख्या कठिन होती है, उनमें 'बुद्धिजीवी' एक है। तार्किक दृष्टि से वह अस्पष्ट किन्तु भावनात्मक दृष्टि से स्पष्ट है। इसके आस-पास कई प्रभामंडल घूमते हैं और स्थल तथा काल के अनुसार एक-दूसरे से टकराते हैं। उदाहरणार्थ, दीवानखाने में बैठकर कल्पना के चित्र रँगनेवाला व्यवसायी मध्यमवर्ग, १९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध मे रूस का विद्यार्थी और उच्चवर्ग का क्रान्तिकारी-संगठन, नेपोलियन के बाद के युग मे जर्मनी के विश्वविद्यालय के देशाभिमानी विद्यार्थी आदि—ये सब बुद्धिजीवी ही माने जाते हैं। उनके कपड़े अलग, बालो की बनावट अलग, खान-पान भी अलग-अलग। इस वर्ग की श्रेणी सदैव बदलती रहती है। इस वर्ग के प्रतिनिधियो के कालानुसार गुट, वर्ग, विभाग और उपविभाग बनते हैं। उनके आस-पास की परिस्थिति के कारण उनका वर्ग ढॅक जाता है। इसका सही अर्थ प्राप्त करने के लिए आक्सफोर्ड डिक्शनरी देखना ही उचित है। उसके सन् १९३४ की तीसरी आवृत्ति मे लिखा है—

'बुद्धिजीवी' स्वतन्त्र विचार की इच्छा धारण करनेवाला, राष्ट्र का—विशेषतः रूस का—एक भाग।

१९३६ की आवृत्ति मे उस समय की परिवर्तित परिस्थिति के अनुसार इस शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है—"समाज का वह सुशिक्षित वर्ग, जो लोकमत तैयार करने के लिये योग्य समझा जाता है।"

दूसरा अर्थ स्पष्टतः अत्यन्त आशावादी सिद्ध हुआ है, इसलिए पहले के उचित अर्थ को ही हमे आधार मानना चाहिए।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये, तो बुद्धिजीवी की एकमात्र विशेषता होगी—"विचार-स्वातंत्र्य की आकाक्षा धारण करने वाला।"

यह आकाक्षा राष्ट्र के एक ही भाग मे क्यो निर्मित होती है? हमारे इस वर्गबद्ध जग मे, सरदारों और मजदूरो की सतानो मे सहज एकता नहीं होती। कालविशेष और स्थल-विशेष का बुद्धिजीवी वर्ग समाज के प्रायः एक ही स्तर से आता

---

* प्रथम बार 'होराइजन' (लन्दन) मार्च १९४४ में प्रकाशित।

है। उसके छूटे हुए धागे ऊपर ही दिखायी देते हैं। बुद्धिजीवी वर्ग का अंग बनने के लिए केवल बुद्धि का ही होना आवश्यक तथा पर्याप्त नहीं, वरन् इस वर्ग के तैयार होने के लिए समाज की विशेष रचना भी अनिवार्य है। अर्वाचीन समाज की दृष्टि से ऐसी रचना का आरम्भ फ्रान्स की क्रान्ति से हुआ है।

२—बुद्धिजीवी वर्ग और तीसरी अवस्था

समाज की 'तीसरी अवस्था' वह थी, जिसके अनुसार विचार-स्वातंत्र्य की लालसा के लिए आवश्यक चीज कोई शौक की वस्तु नहीं, वरन् एक महान् आवश्यकता थी। तानाशाही के नीचे चूर होनेवाला मध्यम वर्ग अपना ऐतिहासिक स्थान प्राप्त करना चाह रहा था, और उसके लिए वह अपने विचार-स्वातन्त्र्य की सुरग लगा कर तानाशाही के किले को उडा देना चाहता था। प्रथम आधुनिक 'बुद्धिजीवी' थे फ्रास के विश्व-ज्ञान-कोष (Encyclopedia) लिखने वाले। उन्होंने इतिहास की रगभूमि पर यथार्थवादी और मूर्तिभजक बन कर प्रवेश किया। यदि पुनर्जन्म पाकर गेटे पुनः अवतरित हुआ, तो वह हमारे युग के लिए सुसगत नहीं होगा। लेकिन यदि वाल्टेयर पुनः अवतरित हुआ, तो एक पखवारे मे ही वह अंग्रेज जनता मे हिलमिल जायेगा और 'न्यू स्टेट्समैन' पत्र की सभी साप्ताहिक पहेलियॉ भरा करेगा। क्योंकि गेटे, पुनरुज्जीवन के युग का अन्तिम प्रतिभावान् लेखक था—लियोनार्दो (Leonardo) का सीधा उत्तराधिकारी—और समाज मे उसका स्थान, किसी प्रतिभाशाली फ्लोरेंटाइन राजकुमार के दरबारी के समान था, जबकि वाल्टेयर के जमाने से सामतशाही की निंदा की परम्परा आरम्भ हुई।

इस प्रकार 'बुद्धिजीवी' वर्ग का आधुनिक युग मे यह अर्थ निश्चित होता है कि "सामाजिक परिस्थितिवश जो विचार-स्वातन्त्र्य की लालसा रखता है—वह नहीं, वरन् जो विचार-स्वातन्त्र्य की ओर ढकेला जाता है, वह है बुद्धिजीवी वर्ग।" विद्यमान् मूल्यो को नष्ट कर उनके स्थान पर अपने नये मूल्यो की स्थापना करने की मनोवृत्ति को ही यह नाम दिया जाता है। रचनात्मक प्रवृत्ति 'बुद्धिजीवी वर्ग' का दूसरा मूलभूत लक्षण है। सच्चे मूर्तिभजक लोगों के पास सदा भविष्य का एक चित्र खींचने की क्षमता रहती थी और सभी यथार्थ-वादियो मे उपदेश देने की एक लज्जाजनक छिपी प्रवृत्ति रहती है।

लेकिन उनके नये विचार कहॉ से आते है, मार्क्स ने इसका विश्लेपण सरल

भाषा मे किया है —

"मध्यम वर्ग ने इतिहास में महान् क्रान्ति की है। उत्पादन मे सदैव परिवर्तन, सामाजिक स्थिति में परिवर्तन और अस्थिरता तथा आन्दोलन की अखण्ड भावना—इसके लक्षण हैं। इसमे प्राचीन और पूज्य मत तथा विचार बहा ले जाये जाते हैं और नये मत और विचार स्थायी होने से पूर्व ही सनातनी एव पुराने मान लिए जाते हैं। जो वस्तु कठोर है, वह पिघलकर वायुरूप बनती है, जो पवित्र है, उसे पाखंडी सिद्ध किया जाता है और अन्त मे अपने जीवन की सही स्थिति और सामाजिक सम्बन्ध का ज्ञान मनुष्य शान्त चित्त से प्राप्त कर सकता है।

"जो बात भौतिक द्रव्यो के उत्पादन में है, वही बौद्धिक उत्पादन में भी है। किसी-किसी राष्ट्र का बौद्धिक उत्पादन समस्त ससार की जायदाद बन जाता है। राष्ट्रीयता का पक्षपात और एकाकीपन सदा के लिए नहीं टिक पाता। स्थानीय एव राष्ट्रीय साहित्य के असंख्य प्रवाहो का संगम होकर ससारस्पर्शी साहित्य-सागर का निर्माण होता है।"

इसमे पहला परिच्छेद उत्तम है, परंतु दूसरे में आर्थिक मीमासा से कला की ओर घातक छलॉग मारी गयी है। मार्क्सवादी समाज की इमारत मे नीचे और ऊपर के दो तल्ले हैं, परन्तु ऊपर आने के लिए इन दोनों को आपस मे जोडनेवाली लिफ्ट या सीढ़ियॉ नहीं है।

भौतिक सम्पत्ति का उत्पादन और बौद्धिक सम्पत्ति का उत्पादन दो छोर हैं। समाज का जो वर्ग यशस्वी होता है, वह अपनी उत्पादन-प्रणाली के लिए उचित तत्त्वज्ञान की भूमिका बनाता है, लेकिन फ्रास की एनसाइक्लोपीडिया, वहॉ की नेशनल एसेम्बली के आदेश से नहीं बनी। जब-जब कोई गुट या वर्ग अपने सघर्ष मे विजयी बन कर आता है, तब-तब तैयार कपड़े के समान उसके विचार उसकी प्रतीक्षा मे खडे दृष्टिगत होते हैं। मार्क्स, मुसोलिनी, हिटलर और स्तालिन के कार्यों को तत्त्वज्ञान की भूमिका प्रदान करने वाले लेखक सहज ही प्रकाश मे आ गये थे।

उपरोक्त उदाहरणों मे प्रगतिशील और प्रतिगामी—उभय आन्दोलनो का समावेश हुआ है। वास्तव में, इन आन्दोलनो को अलग-अलग रखना चाहिए। प्रतिगामी आन्दोलन जीर्ण मूल्यों का आधार ले सकता है। एक-दो पीढी पूर्व के, पुराने विचारो के आधार पर क्रान्ति के काल्पनिक चित्र बनाये जा सकते हैं और उस भ्रामक क्रान्ति से उत्साह की लहरे प्रवाहित हो सकती हैं। उसका

साथ देने के लिए बुद्धिजीवी वर्ग का एक भाग तैयार ही रहता है, वह अपने विचार-स्वातंत्र्य का तत्त्व छोड़ देता है, इतना ही नहीं, अपितु अपने वर्ग से सम्बन्ध भी तोड़ लेता है।

इसे अलग रखने पर भी मूल प्रश्न शेप ही रह जाता है और वह यह है कि इतिहास मे प्रगतिशील एवं विकासशील आन्दोलनों के जीर्ण मूल्यों का आधार नहीं है, और तब भी ये आन्दोलन 'मानव के अधिकार' और 'मजदूरो की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सस्था' स्थापित कर सकते हैं, और इन्हे उचित समय पर आवश्यक विचार अनुकूल रूप मे हमेशा तैयार मिलता है। इसका क्या कारण है? अब मेरा इस बात पर विश्वास नही रहा कि आर्थिक प्रक्रिया हमारे तत्त्वज्ञान का निर्माण करती है। इस सिद्धान्त का पुराने मार्क्सवाद ने कोई ऐतिहासिक आधार नही बताया, इसे योगायोग भी नहीं कह सकते, इसका एक ही अर्थ हो सकता है, वह यह है कि राजनीतिक परिस्थिति और सास्कृतिक विकास एक ही घटना के दो स्वरूप हैं, पर अब तक हम यह नहीं जान सके कि वह एक ही घटना कौन-सी है।

अन्य क्षेत्रो से दो उदाहरण लेकर मै अपना विचार स्पष्ट करता हूँ। मन और शरीर का सम्बन्ध क्या है? उसमे कारण क्या है और कार्य क्या है? मुर्गी कौन और अण्डा कौन? इस प्रश्न का उत्तर उक्त दुमुही क्रान्ति के तत्त्वज्ञान से अस्थायी रूप में मिल सकता है। आपके शरीर का अम्ल आपकी मनोवृत्ति का न तो कारण है और न तो कार्य ही, लेकिन अम्ल और मनोवृत्ति—दोनो आपकी जीवन-रीति के परिणाम हैं।

दूसरा उदाहरण पदार्थ-विज्ञान और गणित-शास्त्र से सम्बन्धित है। जब आइन्स्टीन ने पदार्थ-विज्ञान मे दो शुद्ध प्रयोगों के परिणाम परस्पर-विरोधी देखे, तब उसने अपना सापेक्षवाद सामने रखा, उससे पूर्व एक दूसरे गणितज्ञ ने इस सिद्धान्त की पूर्व तैयारी कर रखी थी। गणित-शास्त्र और पदार्थ-विज्ञान द्वारा सापेक्षवाद के स्वरूप स्वतंत्र प्रकट हुए थे। इन दोनो की युक्ति को चमत्कार ही मानना होगा, यदि वैज्ञानिक विचारों मे विकास के मौलिक झुकाव को स्वीकार न करे, जिसके विभिन्न रूप पहले से ही पृथक्-पृथक् विद्यमान् रहते हैं।

इस प्रकार प्रगतिशील मध्यम वर्ग और 'तीसरी अवस्था' मानवीय उदार-मतवादी दर्शन का न तो कारण था और न कार्य। वे एक ही मूल से उत्पन्न दो अकुर है—अंतर इतना ही है कि वे एक-दूसरे से सम्बद्ध हो गये। एक ही वस्तु का आकार और रग जैसे निर्धारित होता है, उसी प्रकार ये दो स्वरूप

हैं। इस सामाजिक और बौद्धिक क्रान्ति में सुसंगति निर्माण करना ही फ्रेंच 'एन-साइक्लोपीडिया लिखने वाले और बाद के बुद्धिवादी का मुख्य कार्य है। उन्हे मूर्तिभजन और नवधर्म की स्थापना—विध्वंसक और रचनात्मक—दोनों ही कार्य करने हैं।

३—तीसरी अवस्था का पतन

विध्वसक और रचनात्मक—इन दोनों कार्यो के सपादन से ही बुद्धिजीवी वर्ग के विचित्र ढाँचे पर प्रकाश पडता है। समाज का आचार, विचारो की अपेक्षा अधिक निश्चल होता है। विज्ञान, कला और शास्त्रीयता के सकलित ज्ञान में तथा हमारे सामूहिक जीवन मे सदैव बहुत अन्तर रहता है। हम युद्ध करते हैं, प्रार्थना-मन्दिरो मे जाते हैं, राजा को पूजते हैं, निषिद्ध अन्न ग्रहण करते हैं, निषिद्ध यौन सम्बन्ध रखते हैं, अपने बच्चो को बिगाडते हैं, अपना ससार दुःखमय बनाते हैं, दूसरों पर अत्याचार करते हैं और दूसरों का अनाचार सहते हैं, लेकिन हमारी पाठशाला की पुस्तको मे और कला-प्रदर्शनियों मे आदर्श जीवन के चित्र चित्रित रहते हैं। वैसा आचरण व्यवहार मे लाने मे सदियाँ लग जाती हैं। हम अपने-आप मे ही विसगत पाये जाते हे। काल-विशेष के गुलाम बन कर हम अपना दिन-प्रति-दिन का जीवन बिताते हैं। आकाश के बीच विद्यमान अन्तर ज्यों अजस्र अको मे गिनना पडता है, त्यों ही हमारे ग्रथालय और शयनगृह के गहरे अन्तर को नापना पडेगा। तथापि तात्त्विक ज्ञान और स्वतंत्र विचारो का वातावरण उपस्थित रहने पर भविष्य में सामाजिक परिवर्तन मे उसका काफी उपयोग होगा। फ्रेंच एनसाइक्लोपीडिया लिखने वालो द्वारा निर्माण किये गये वातावरण का जाकोबिन लोगो ने उपयोग किया।

वातावरण से सहायता लेने का गुण वर्गविशेष मे ही है। यह वर्ग अपने आचरण और ज्ञान की पृष्ठभूमि पर निश्चित किये हुए आदर्श आचरण मे अपनाता है और सुसगति निर्माण करने का यत्न करता है। जिनके स्वार्थ और हित सामाजिक चहारदीवारी मे निहित रहते हैं, उनके मन में विचार-स्वातंत्र्य की प्रभावपूर्ण प्रेरणा का आना प्राय. असम्भव है। आये भी कहाँ से? उन्हे स्वीकृत प्रणाली को नष्ट करने की आवश्यकता और नये विचार स्थापित करने की आकाक्षा नहीं होती। अज्ञात स्थिति के बारे में बेचैनी होने पर ही ज्ञान की लालसा उत्पन्न होती है। जो स्वस्थ और सुखी होते हैं उनमे जिज्ञासा कदाचित्

ही होती है। इसके विपरीत जो दीन और दलित होते हैं, उन्हें न तो विचार-स्वातंत्र्य के पीछे पड़ने का अवसर मिलता है, और न उनमें इतनी सामर्थ्य ही है। वे विवशता के कारण ही विद्यमान विचारों को स्वीकार या उनका तिरस्कार करते हैं।

ऐसी गलतफहमी में मत पड़िए कि बुद्धिजीवी का अर्थ होता है 'मध्यमवर्ग'। सम्वेदन-क्षमता, जिज्ञासा, प्रगतिशीलता आदि वृत्तियाँ विशेष प्रकार की असफलता से ही निर्मित होती हैं। ऐसी असफलता बहुत अधिक होना उचित नहीं, और बहुत कम होना भी अच्छा नहीं। तनिक से दुख और चित्त की किंचित् अस्वस्थता से जिज्ञासा का उद्भव होता है। परम्परागत विचारों को अंगीकार करनेवाले उच्चवर्ग में असफलता की भावना नहीं होती, परन्तु निचले वर्ग में वह होती है—इतनी तीव्र कि परिणाम में यह वर्ग या तो पराश्रित बन जाता है या असफलता के धक्के खाता रहता है। यह असफलता एक खास तरह की होनी चाहिए। कोई असंतुष्ट लेखक या कलाकार जब विद्रोह कर उठता है, तो उसका कारण यह नहीं होता कि समाज ने उसके विकास का अवसर छीन लिया है, और उसे विनाश की खाई में ढकेल दिया है, वरन् अपना विकास करने का मौका उपलब्ध रहने पर भी परिस्थिति के सम्मुख वह अपने आपको कमजोर पाता है, तथा उसे ऐसा लगता है कि वर्तमान परिस्थिति के सामने उसे अपना सिर झुका देना चाहिए। आत्मसंतुष्ट मनुष्य के लिए विचार करना शौक का विषय होता है, परन्तु असफलता से ग्रसित मनुष्य को विचार की आवश्यकता महसूस होती है। जब तक विचार और परम्परा, तात्त्विक सिद्धान्त और व्यावहारिक आचरण के बीच गहरी खाई है, तब तक हमारी बुद्धि पर तिरस्कार एवं आकांक्षा का भिन्न-भिन्न नियन्त्रण बना रहेगा।

यह समूचा वर्णन बहुसंख्यक मध्यम वर्ग पर लागू नहीं किया जा सकेगा। जब तक उनमें जाकोबिनियों की क्रान्तिकारी वृत्ति थी, तब तक यह वर्णन उन पर लागू हो सकता था, परन्तु बाद में, एक समय का क्रान्तिकारी अनुदार बन गया। अब वह एक बुद्धिमान सदस्य नहीं रहा, बल्कि निश्चल चिपचिपा सरेस बन गया है, जो इस सामाजिक संस्था को जोड़े रहता है। उसकी निराशाएं दबा दी गयीं। उसमें नये विचार-निर्माण की आकांक्षा नहीं रही, वह पुरातन विचारों के शिखर पर बैठने की आकांक्षा करने लगा। इस तरह बुद्धिजीवी वर्ग, जो एक समय उत्कर्षाभिमुखी बुर्जुआ वर्ग की रीढ़ था, उसके अपकर्ष-काल में विरोधी बन गया।

४—बुद्धिजीवी-वर्ग और चौथी स्थिति

तीसरी स्थिति जैसे-जैसे अपनी प्रगतिशील वृत्ति खोकर, पहले स्थिर, फिर प्रतिगामी बनने लगी, वैसे-वैसे बुद्धिजीवी वर्ग उससे अधिकाधिक दूर जाने लगा और अपने विध्वंसक तथा विधायक कार्य के लिए उपयुक्त शक्तिशाली मित्र खोजने लगा। इस खोज का उत्तम उदाहरण है १९-वीं सदी का रूस। 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल' मे लिखा है:—"जब-जब क्रान्तिकारी और बुद्धिवादी कार्यकर्ता राज्य-स्वातंत्र्य की आवश्यकता का वर्णन करते, किसान की दुर्दशा की बाते करते अथवा भावी समाजवाद का चित्र उपस्थित करते, तब-तब उनमे उनकी निजी दुर्दशा का ही वर्णन होता, जिसके कारण उनका हृदय भर जाता था, और उनकी यह दुर्दशा मुख्यतः भौतिक न होकर मानसिक होती थी।"

रूस के बुद्धिजीवी वर्ग की यह मानसिक दुर्दशा उस द्वन्द्व का दूसरा स्वरूप था, जिसका मैंने वर्णन किया है। वह द्वन्द्व था निश्चल, पुराना -एवं स्वभाव-नियंत्रित दैनिक जीवन का सिद्धान्त और आदर्श के सकलित स्वरूप से विरोध। १९-वीं सदी के रूसियो को पश्चिमी यूरोपीय सस्कृति से जो तत्त्वज्ञान और विचार मिलते, वे थे ब्रिटिश लोकशाही, फ्रेंच साहित्य और जर्मन दर्शन। उन रूसियो को पश्चिम के राष्ट्र, ज्ञान का भाडार प्रतीत होते। इतिहास की गति ऐसी विलक्षण है कि दो महायुद्धों के पश्चात् कालातर मे, पश्चिमी राष्ट्रो का 'बुद्धिजीवी वर्ग' रूस के साम्यवाद से मंत्रमुग्ध हो गया। उसे अपनी पूजीशाही का ह्रास होता दीख रहा था और साम्यवाद ही मानव की आशाओ का केन्द्र आभासित हो रहा था। फिर भी पूर्ववर्ती रूसी क्रातिकारी बुद्धिजीवी—शेलावो, सोजा, पेट्रोव्स-काजा, बाकुनिन, नेचाइयू क्रोपोटकिन के अनुयायियो और सॅकरे नावों के युग के ब्लूम्सबरी मे मौलिक अंतर है। इस सादृश्य का उपहास करना और द्वितीय अलेक्जेंडर के हत्यारो की वीरता तथा साइबेरिया के निष्कासितो तथा स्ल्यूसेल-वर्ग के कैदियों के बलिदान द्वारा ब्लूम्सबरी लोगों की अमारता दर्शाना आसान है। अर्द्ध एशियायी रूसियो और उच्च श्रेणी के पाश्चात्य लोगो की सर्वसम्मत महान् सहनशीलता और दैवाधीनता की जातीय तुलनाएँ एक भेदमूलक तत्त्व अवश्य प्रदान करती हैं, किन्तु मूल तत्त्व नहीं। मूल चीज यह है कि लोग अपने उत्तरदायित्वों के बोझ-तले पनपते हैं और जब यह बोझ उन पर से हटा लिया जाता है, तो वे सिकुड़ने लगते हैं। नेचाइयू वर्षों कारावास की एकान्त

कोठरी मे सीकचों से बँधा पड़ा रहा और जब उसके साथियों ने उससे सम्बन्ध स्थापित करने और उसे मुक्त करने की व्यवस्था में सफलता पायी, तब उसने वहाँ से जाने से इनकार कर दिया, क्योकि वह चाहता था कि उसके साथी अन्य आवश्यक कर्तव्यो की ओर एकाग्रचित्त हों। किन्तु बाद मे, वह जनेवा मे अत्यधिक गदे सघर्षो में लिप्त हो गया और एक अपरिचित की मौत मरा। आदरणीया रूसी छात्र-वीरागनाएं और अन्य शहीद हक्सले अथवा इवेलिन वॉघ (Evelyn Waugh) के उपन्यासो के किसी पात्र से कम उन्मत्त नहीं थे, 'द' लेसले' गवार था, जिसने एक काल्पनिक द्वन्द्व-युद्ध मे अपनी जान गॅवायी, मार्क्स दूसरों के टुकडो पर जीवित रहनेवाला एक झगडालू व्यक्ति था, बाकुनिन एक सिस्टर पर आँख गडाये था, किन्तु वह नपुसक था और मृत्यु-पर्यंत क्वॉरा रहा। ट्राट्स्की अपनी दोपहरी और शाम वियेना के 'काफे सेन्ट्रल' मे शतरज खेलने मे बिताता था। लेनिन को अपने भाई अलेक्जेन्डर के फासी पर लटकाये जाने से प्राणघातक आघात पहुँचा। अतः बुर्जुआ वर्ग के प्रति उसकी घृणा बड़ी तीव्र थी—रूसी क्रान्ति मात्र जिसकी प्रलम्बता थी। बुद्धिवादियो की प्रकृति में एक प्रकार का उन्माद स्वाभाविक है (मै इस विषय पर शीघ्र ही लौटूॅगा)। इतिहास किसी व्यक्ति के उद्देश्य में नहीं, केवल उसकी सफलताओं मे दिलचस्पी रखता है। किन्तु क्या बात है कि ब्लूम्सबरी को असारता का अपराधी ठहराते हुए कुछ कालो मे ही उत्तरदायित्व का भार और परम सुख बुद्धिजीवी वर्ग को सौंपा जाता है। यही वह प्रश्न है, जहॉ रूसियों और ब्लूम्सबरी की तुलना नर्म पड जाती है। अत्यधिक सच यह है कि यह ऐतिहासिक निर्माण का प्रश्न है, जो उत्तरदायित्वों को बॉट लेने का जिम्मेदार है।

दोनों देशो के समाजवादी ढाचो की तुलना से इस प्रश्न का जवाब तत्काल ही स्पष्ट हो जाता है। १९-वीं सदी के रूस मे मजदूर-सघ नहीं थे, सहकारी सस्थाएँ नहीं थीं, और न मजदूरों का आन्दोलन ही था। दास-प्रथा का उन्मूलन १८६२ मे ही हुआ था। उस आलसी-उनीदे प्रचण्ड देश मे तानाशाही से आधुनिक पूँजीवाद की ओर क्रमिक सक्रमण नहीं हुआ था। मैंने वहॉ के किसानों से बातचीत की है। उन्हें अपने सिर पर घूमने वाले विमान का ज्ञान था, परन्तु रेल या मोटर उन्होने कभी न देखी थी। दूसरी ओर, कुछ लोग ऐसे भी थे, जो मोटर में तो बैठे थे, किन्तु साइकिल नाम की कोई चीज होती है, यह मानने को तैयार नहीं थे।

ऐसे लोगों में ज्ञान का प्रचार करना बुद्धिजीवियों के लिए स्वर्ग-सुख के समान था। उनमें से जो लोग शुरू से ही किसान का रूप धर कर समाज में घुलमिल कर नये सन्देशो का प्रचार करने लगे, उन्हे साफ मैदान हाथ लग गया। न तो मजदूर-संघ या मजदूर नेता उनके प्रतिस्पर्धी बनकर खडे थे, और न कोई यह कहने वाला ही मिला कि तुम अपना स्वाग उतार कर मास्को लौट जाओ। रूसी किसान वर्ग निर्विकार रहा। उसने प्रचारको की पुकार पर ध्यान न दिया, फिर भी सुधार करने के लिए निकले हुए बुद्धिजीवी प्रचारक निराश नहीं हुए, क्योंकि उनके सामने कोई प्रतिस्पर्धी नहीं था। उन्होने अपना ढग बदला। जनता को प्रेमपूर्वक समझाने के बजाय उन्होने आतंक फैलाना आरंभ किया; फिर वे कारखाने के मजदूरो मे और सैनिको मे मिलकर काम करने लगे। वे लडे, बॅटे और अलग हुए, लेकिन हर हालत मे उन्होने अपना यह ऐतिहासिक कार्य जारी रखा। पुराने का विध्वस कर नये की स्थापना करने की अपनी इच्छा वे तृप्त करने लगे। उनके इस अखंड विश्वास ने जैसे पर्वत को भी हिला दिया।

इसके ठीक विपरीत पश्चिमी राष्ट्र के बुद्धिजीवी वर्ग को ऐसी उपजाऊ भूमि नहीं मिली। उनकी आकाक्षा को समझने वाले सच्चे मित्र भी उन्हे नहीं मिले। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार बुद्धिजीवी वर्ग को मजदूर वर्ग से मिल-जुल कर उनका परामर्शदाता बनना चाहिए था। इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि इसके लिए आवश्यक धैर्य और योग्यता बुद्धिजीवी वर्ग मे न थी। सन १८४८ में विद्यार्थी वर्ग और मजदूर वर्ग साथ-साथ रणागण मे लडे। फ्रान्स मे और पिछले महायुद्ध के बाद जर्मनी, आस्ट्रिया, हगेरी, बलगेरिया तथा स्पेन के अन्तर्राष्ट्रीय सैन्यदलो के क्रान्तिकारी आन्दोलनो मे भी उन्होंने उत्तम कार्य-कुशलता का परिचय दिया।

परन्तु १९-वी सदी के पूर्वार्ध के बाद से मध्य एव पश्चिम यूरोप के मजदूरो ने अपने-अपने संगठन-दल, ट्रेड यूनियन तेजी से स्थापित किये और अपने नेताओं का चुनाव किया। इस कार्य की विशेषता यह रही कि उन्होने अपनी नौकरशाही को जन्म दिया। दल के व्यक्ति तीव्र इच्छा शक्ति वाले और दृढ निश्चयी थे। यह तीव्र क्रान्ति का युग था। उसमे 'तीसरी स्थिति' विनष्ट हो गयी और 'चौथी स्थिति' का महत्त्व तो तीसरी से भी जल्दी घट गया। द्वितीय समाजवादी आन्दोलन की जिन शाखाओ ने कुछ ऐहिक सुख प्राप्त कर लिये थे तथा शासनकर्त्ता से सत्ता की डोर हथिया ली थी, उनका ध्येयवाद शीघ्र ही

पंगु बन गया। पश्चिमी राष्ट्र का 'बुद्धिजीवी वर्ग मजदूर दल का सदस्य बन कर पार्लियामेन्ट मे शामिल हुआ, वामपंथी समाचार-पत्र का सम्पादक बना, सायंकालीन बौद्धिक वर्ग का प्राध्यापक बना, परतु उसके 'विचार-स्वातन्त्र्य' से कोई समस्या हल होती नहीं दीखती थी। १९-वीं सदी के अन्त मे पश्चिमी राष्ट्र के बुद्धिजीवी वर्ग के सामने दो ही रास्ते रह गये। बुर्जुआ वर्ग के उत्तराधिकारी के रूप मे रहना अथवा मजदूरो के स्कूल मे शिक्षक बन कर दिन काटना। इन विभिन्न भूमिकाओं के अनुसार ही उनका विकास हुआ और गुट बने। शा और वाल्टेयर की तुलना कीजिए, लीओन ब्लम और सेन्ट जस्ट की तुलना कीजिए—अन्तर स्पष्ट हो जायेगा, यह अन्तर अवस्थामूलक नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक अवसरो से सम्बधित है।

प्रथम महायुद्ध से ससार को एक ओर धक्का पहुँचा, तो उससे नव-निर्माण का अवसर भी मिला। उस समय तक समस्त कल्पनाओ में मूलतः परिवर्तन हुआ—चाहे वह कल्पना सापेक्षवाद की हो या क्वाटम सिद्धान्त की हो, मनो-विश्लेषण की हो या नग्न यथार्थवादी हो, वायुयान विद्या से सम्बन्धित हो या वेतार के तार से। ग्रन्थालयों मे पूर्णतः नवीन संसार से सम्बन्धित ग्रन्थ भरे थे और उससे निकलने वाली प्रकाश-किरणों को देखकर 'बुद्धिजीवी वर्ग' अर्द्ध पागल हो गया। अपनी प्राचीन, पुरानी, दीमक लगी दैनिक परम्परा और आचार-विचारों से उसे चिढ़ हो आयी। नव-निर्माण के लिये यह कैसा स्वर्ण अवसर था!

लेकिन उससे फायदा उठाने वाले सहयोगी कहाँ थे? उन बीस बरसों में यूरोप के ध्येयवादी युवको के कार्यो के सारे सूत्र अकेले 'तृतीय समाजवादी आन्दोलन' के हाथ मे थे। उस सस्था ने यूरोपीय क्रान्ति का जो नक्शा तैयार किया था, वह रूस की तत्कालीन परिस्थिति पर आधारित था। ८० प्रतिशत लोग निरक्षर थे, और ग्रामीण जनता तथा नगर की जनता का अनुपात था—दस और एक का।

दो दशाब्दियों के बीच अपने अस्तित्व में यह क्रान्ति उसी अर्द्ध एशियायी तानाशाही द्वारा शासित होती थी। यूरोप मे उसका अमल कराने के लिए बुद्धिवादी लोगों की आवश्यकता थी, साथ ही आँख मूँदकर आज्ञापालन करनेवाले निष्ठुर अनुयायियो की भी जरूरत थी। पश्चिमी बुद्धिजीवी वर्ग के जिन थोडे सदस्यो को उसमे शामिल किया गया, पहले उनके विचार-स्वातन्त्र्य का अधिकार खो गया, फिर विचार-स्वातन्त्र्य की इच्छा भी अस्त हो गयी। वे हठधर्मी, इस विशेप पथ के अनुयायी और दल के किराये के टट्टू बन गये और उन मे जो महान् थे, उनका बडा शोचनीय अन्त हुआ। जर्मनी में क्रान्ति कोत्र

मे आयी लगती थी, लेकिन वहॉ के क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी वर्ग का अन्त बड़ा ही दुखद हुआ। लिइक्नेट (Liebknecht) तथा लक्जेम्बर्ग (Luxemburg) की हत्या कर दी गयी। कम्यूनिस्ट पार्टी से पाल लेवी (Paul Levy) का निष्कासन हुआ और बाद मे उसने आत्महत्या कर ली। रूथ फिसर को भी निकाल बाहर किया गया और उसका अन्त अज्ञात ही रहा। न्यूयार्क में टालर ने अपने आप गले मे फॉसी लगा ली। नाजियों के एक बंदी शिविर में म्यूसैम मार दिया गया। मार्क्स होल्ज रूस मे सदेहास्पद परिस्थितियों मे पानी में डुबा कर मार डाला गया। हेंज न्यूमैन भी, कम्यूनिस्ट पार्टी का अन्तिम जीवित नेता, जो बुद्धिजीवी वर्ग से सम्बंधित था, इसी प्रकार समाप्त कर डाला गया।

परन्तु इस रक्तपात में पश्चिमी बुद्धिजीवी वर्गसमूह को शामिल नहीं किया गया। इसके नेताओं को इसकी आवश्यकता महसूस नहीं हुई। पश्चिमी बुद्धिजीवी लोग इस क्रान्ति के सहयात्री बन कर रहे; ठीक उस पॉचवें पहिये के समान, जो चार पहियो वाली गाड़ी में जुड़ा होता है। इस संक्रान्तिकाल के लिए बुद्धिजीवी वर्ग उत्तरदायी नहीं था, क्योकि उसे जिम्मेदारी की जगह से हटा दिया गया था। वे अंधकार के खोखले कोने मे मन मार कर पड़े रहे, और बुर्जुआ वर्ग के उत्तराधिकारी बन कर रह गये। इसमें किसी का दोष नहीं, क्योंकि उनकी स्थिति आइने के रूप मे थी—प्रकाश के रूप मे नहीं।

मैं न तो किसी को अपराधी मानता हूँ और न किसी के अपराध का बचाव ही करता हूँ। बुद्धिजीवी वर्ग हमारे समाज का एक अंग है और बड़ा ही सवेदनशील अंग है। जब शरीर मे रोग होता है, तो उसके कुप्रभाव से चमड़ा भी खराब हो जाता है। बुद्धिजीवी वर्ग का अधःपतन सामाजिक रोग का ही लक्षण है। जिस तरह प्रशासक वर्ग का भ्रष्ट होना तथा मजदूर वर्ग का निद्रालीन रहना सामाजिक रोग का चिह्न है, वैसा ही यह भी है। एक ओर बुद्धिजीवी वर्ग को परेशान कर के उसका स्वातन्त्र्य छीन लेना और दूसरी ओर उसके सिर पर अपयश मढ़ना—या तो यह कोरी मूर्खता है या इसमे कोई दॉव-पेच है। जब नाजीवाद ने यूरोप के बुद्धिजीवी वर्ग को विध्वस्त कर दिया, तब वह भलीभॉति जानता था कि वह क्या कर रहा है।

५. बुद्धिजीवी वर्ग और मतिविभ्रम

यह भावात्मक आवरण सिर्फ भिन्न-भिन्न जाति के सामाजिक वर्गों के बीच ही

नहीं, बल्कि समस्त सामाजिक संस्था और इसके वातावरण के बीच फैला था। इस रूपक को कुछ और आगे ले जाने का जी करता है, और ऐसा करना शायद पूर्णतया निरर्थक भी नहीं है। तत्त्वसम्बन्धी इस असारता का यह ऊपरी आवरण है, एक सतह है, ऊपरी झिल्ली है, जो स्नायुओं के लिए ततु और अपरिपक्व अवस्था मे रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क का कार्य करती है। मुख्य स्नायु-प्रणाली—जैसी लोग आशा करते हैं—भीतरी सुरक्षित भागों तथा अंतर्भाग से नहीं, बल्कि झुँझलाहट और उत्तेजना, कुछ मोह और अधिक यातना के बाह्य उभाड़ के आक्रमण के समक्ष स्थायी रूप से समर्पित बाहरी सतह से उत्पन्न है। उभार के इस स्थायी प्रभाव के अंतर्गत तन्तु क्रमश अपनी विषमता खो बैठते हैं और परिवर्तन की उस प्रज्वलित प्रक्रिया के अंदर से गुजरते हैं, जो अंत मे चेतनता की प्रथम धुँधली चमक को जन्म देता है। मस्तिष्क-आवरण की भूरी वस्तु मूलत. चर्मततु थी—प्रत्यक्ष और विशिष्ट चेतना-युक्त रूपान्तर द्वारा परिवर्तित। यहाँ तक कि महा धर्मभ्रष्ट फ्रायड भी जहाँ अपनी पुस्तक "बियाड द' प्लेजर प्रिंसिपल" मे मस्तिष्क की रचना के सम्बन्ध मे इस पहलू का उल्लेख करता है, वहाँ वह छंदमय हो गया है। मनुष्य ने अपना मस्तिष्क विकसित किया, जिसमे उसका भूरा पदार्थ, किसी बद बक्स मे रखी बहुमूल्य वस्तु के समान, सुरक्षित है। समाज द्वारा स्नायु-तंतुओं के लिए ऐसा कोई आवरण प्रदान नहीं किया जाता, बल्कि उनके साथ पैर के गोखरु की तरह व्यवहार किया जाता है—क्योकि वे एक स्थायी रोग की तरह हैं, जो छोटे छोटे आघातो के द्वारा बराबर पीडा पहुँचाते हैं।

रूपक से यथार्थ की ओर वापसी, बुद्धिवादी वर्ग और उन्माद के बीच का सम्बंध आकस्मिक नहीं है, बल्कि नियमित है। बहुसख्यक लोग अपना आचार-विचार परम्परागत प्रथा के अनुसार बनाये रखते हैं। जो स्वतन्त्र रूप मे अपने आचार-विचार निश्चित करता है, उसे स्वभावतः ही इस समाज का विरोधी माना जाता है। मतिविभ्रम के लिए अल्पसख्यक गुट मे रहना ही पर्याप्त है। स्वतन्त्र बुद्धि का मनुष्य और विक्षिप्त मनुष्य मे केवल एक सीढी का ही अंतर है। इस अन्तर को दूर करने के लिए समाज का विरोधी दबाव शक्ति प्रदान करता है।

किसी नाचघर मे किसी एक के खाँसने पर प्रत्येक व्यक्ति खाँसने लगता है और हरेक को लगता है कि उसका गला खुजला रहा है। सामूहिक अनुकरण एक यथार्थ शक्ति है। उसका विरोध करने का अर्थ है, अपनी सामाजिक परिस्थिति के विरुद्ध विद्रोह करना। परिणाम मे ज्ञानततु की विकृति और अपराध

की भावना का निर्माण होता है। कोई व्यक्ति भले ही सिद्धान्ततः हजार बार सही हो, अपने अन्तर्मन मे डट कर बैठी बुरी परम्परा का विरोध करते ही, स्वयं अपराधी होने की भावना उसमे जाग्रत हो जाती है। समाज से लडने का अर्थ अपने मन की सामाजिक कल्पनाओं से ही लडना है। इससे अपना व्यक्तित्व विभक्त हो जाता है। सर्वज्ञता और न्यूनता, कायरता और उद्दडता आदि मानसिक विकार दृष्टिगत होने लगते हैं। ये सब मस्तिष्क का सन्तुलन खोने के उदाहरण हैं। बुद्धिजीवी वर्ग उच्च वर्ग का आधार प्राप्त न होने पर भी अपने एकाकी ससार मे भटकता रहता है और बौद्धिक मंथन करता रहता है। गत दस वर्षो से बुद्धिजीवी वर्ग यही कर रहा है। ऐसे अवसर पर विचार-स्वातंत्र्य के ध्येय में विश्वास न रखने वाला छिछला समूह एकत्र होने लगता है और वह धीरे-धीरे सच्चे बुद्धिवादियों पर हावी हो जाता है।

और वह भी अवश्य स्पष्ट होना चाहिए कि मिथ्या बुद्धिवादियो का, जिनका प्राथमिक उद्देश्य 'विचार-स्वातत्र्य की प्रेरणा' नहीं, बल्कि सीधा उन्माद है और जो गर्म वातावरण के इर्द-गिर्द एकत्र होते हैं—क्योंकि बाहरी ससार उनके लिए बहुत सर्द है—आकर्षण दूषित है। वे अपनी अप्रतिष्ठा में वृद्धि करते हुए बलपूर्वक घुस पड़ते हैं और न्यायोचित वासियों को क्रमशः निकाल बाहर करते हैं।

वे ऐसा तब तक करते रहते हैं जब तक विनाश के काल में शिविर के अनुयायी उन्हे खत्म नहीं कर देते हैं। परिवर्तन का यह दुःखद रूप है, जब सामाजिक विरोध सामाजिक गंदगी मे विलीन हो जाता है।

सच्चे बुद्धिवादियों को भी उन्माद हो जाता है। अविवेकी समाज मे विवेकपूर्ण योजना कभी सफल नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, यौन-प्रसग ही लीजिये—एक ओर हम जानते हैं कि विवाह-सस्थाओ के कारण समाज में कितना दुख फैला है। इसीलिए 'अनिर्बंध मित्रता', 'परस्पर सम्मत विवाह' आदि प्रयोग जारी हैं। लेकिन दूसरी ओर इन सब का अन्त दुखद होता है। 'अनिर्बंध प्रेम' का मनचाहा अर्थ लगाया जाता है। हमारे ऊपर बाह्य और आन्तरिक परिस्थिति का बहुत दबाव है। फलस्वरूप इस विकृत प्रभाव के अंतर्गत प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं। लेखनकला मे भी इसका प्रतिबिम्ब दिखायी दे जाता है। डी. एच. लारेंस और हेमिंग्वे-जैसे सुयोग्य लेखकों के साथ भी आप यही अनुभव कर सकते हैं। जब ऐसी गम्भीर परिस्थिति आती है, तो आप लेखक को स्वयं से यह कहते सुनते हैं—"गोली मारो इसे। यह

प्रकृति का एक कार्य है, और मैं इसे इतनी सरलतापूर्वक और स्वाभाविक ढग से प्रस्तुत करने की सोच रहा हूँ, जैसे वे दोनों खाना खा रहे हैं।" और तब अपनी कमीज की बाहें चढ़ाकर लिखने के लिए बैठे उस लेखक को आप देखिये। उसके माथे से पसीने की धारा बहने लगती है, आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है, और उसकी कलम की नित्र सहज रीति से प्रकृति का चित्रण करने के प्रयास मे टूटने लगती है।

वातावरण का दबाव जिस प्रकार मनुष्य का बर्ताव सकुचित कर देता है, उसी प्रकार कला का स्वरूप भी सकुचित कर देता है। चाहे तो कोई इस परिस्थिति को चुनौती दे सकता है, लेकिन इसके लिए उसे बड़ी कीमत चुकानी होगी और वह कीमत है—मानसिक विकृति। दूसरों को धनी बनाने के लिए जिस प्रकार हम आय-कर चुकाते हैं, उसी प्रकार अपराधी होने की भावना के बिना कभी कोई बुद्धिजीवी वर्ग नहीं रहा। शस्त्रास्त्रों को बनाने वाले की चेतना पूर्ण स्वच्छ हो सकती है, लेकिन शातिवादी मनुष्य की आँखों मे अपराधीपन की भावना न हो, ऐसा उदाहरण मुझे तो कभी नहीं मिला।

"बुद्धिजीवी लोग विक्षिप्त ही होते हैं"—यो बदनाम करने वाले लोग यह भी कह सकते हैं कि खान में काम करने वालों को क्षयरोग होता ही है। यदि यह ध्यान में रखा जाये कि ये इस उद्योग के अपरिहार्य और क्रमिक परिणाम हैं, तो इसके प्रति क्षोभ या घृणा नहीं होगी।

६–बुद्धिजीवी वर्ग और भविष्य

यूरोप का पुराना उदारमतवादी और समाजवादी बुद्धिजीवी वर्ग अब रहा नहीं। "सस्कृति शब्द सुनते ही मैं अपनी पिस्तौल छोड़ता हूँ" जर्मन कवि लारेंटो के इस कथन को नाजीवाद किस प्रकार कार्यान्वित करने में सफल हुआ, हम अभी तक इसे समझने मे असमर्थ हैं। शायद वहाँ नया बुद्धिजीवी वर्ग भूमिगत रहकर कार्य कर रहा होगा—बर्फ के नीचे दबे बीज में नया अकुर फूटा होगा। पर समाचार-पत्र के लेख, आकाशवाणी पर होने वाले भाषण आदि सब सुनने पर भी ब्रिटिश चैनेल के उस पार के लोगों की मनःस्थिति वैसी ही ज्ञात होती है, जैसी हम मगल के मनुष्यों के सबन्ध में जानते हैं। हमें इसका तनिक भी ज्ञान नहीं होता कि यूरोप के लोग अपने भूत, वर्तमान, भविष्य के बारे में क्या सोचते-बोलते या कहते-सुनते हैं। फ्रान्स से आनेवाला साहित्य

आशाजनक नहीं है। फिर भी मेरा यह विश्वास है कि फ्रान्स, इटली, बालकन्स, आस्ट्रिया, नार्वे इन देशों मे कोई नया आन्दोलन पनप रहा है, जीवन-सम्बन्धी कोई ऐसा नया दृष्टिकोण बन रहा होगा, जिससे हम विक्टोरिया युग के कॉपते हुए वृद्ध प्रतीत होगे और हममें से जिसे संरक्षण प्राप्त हो जायगा, उसे वह सब श्रेय मिल जायगा, जिसके ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हम योग्य हैं।

किन्तु यह सब बाद की बाते हैं और वह भी आने वाले १०–२०–३० सालो के बाद की। हमे इस बात का कुछ ज्ञान तो है कि ऐतिहासिक दृष्टि से हम किस रास्ते पर चल रहे हैं, लेकिन इस रास्ते के मोड़ और चौराहों की हमे कोई जानकारी नहीं। यदि सुव्यवस्था-सम्पन्न राज्य आनेवाला होगा, तो उसमें निश्चय ही बुद्धिजीवियो को काफी सख्या मे उच्च पद मिलेगे। पिछले बीस वर्षो में रूस मे यही बड़े पैमाने पर हुआ है और जर्मनी भी गत दस वर्षों से इसी मार्ग पर अग्रसर है। रूस में प्रकाशन-सस्था, नाट्यगृह, अनुसधान-प्रयोगशालाएँ, विश्वविद्यालय और डाक्टरी सस्थाएँ—सब सरकारी हैं। वहाँ के लेखक, कलाकार, शिल्पी, वैज्ञानिक, सब वास्तविक अर्थ में सरकारी नौकर हैं। यद्यपि वहाँ के और ह्वाइट हाल के वातावरण में बिल्कुल समानता नही है। वहाँ की साहित्यिक गतिविधियाँ भी दलीय काग्रेस और सरकारी प्रवक्ता के बताये मार्ग पर चलती हैं। काव्य, नाटक, स्थापत्य, चित्रपट, इतिहास, तत्त्वज्ञान, सब न्यूनाधिक रूप मे सरकारी नियत्रण मे ही हैं। इसलिए रूस मे दर्शन और कला की प्रगति सरकार के इच्छानुसार होती है। जर्मनी का सास्कृतिक कार्य भी इसी तरह का है।

यद्यपि ऐग्लो-सेक्सन देशो मे यही स्थिति आना कठिन है, किन्तु असम्भव भी नहीं है। आखिर भिन्न-भिन्न रास्ते भी एक ही लक्ष्य तक ले जा सकते हैं। प्रस्तुत महायुद्ध मे सम्पूर्ण सैन्य-सगठन नौकरशाही राज्य के पश्चिमी दृष्टिकोण से एक प्रकार पूर्व प्रदर्शन (Dress Rehearsal) है। गत दो वर्षो मे इग्लैड के बुद्धिजीवी लोगों को अस्थायी सरकारी नौकरी के रूप मे प्रचार-विभाग, आकाशवाणी, जन-सम्पर्क-विभाग आदि मे नियुक्त किया गया। फिलहाल नौकरी और 'व्यक्तिगत सृजन' भिन्न हैं, लेकिन निजी कार्य की अवस्था दिन-ब-दिन क्षयरोगी-जैसी हो रही है। किन्तु सभव है, किसी परिस्थिति में इन दोनो का मिलन हो जाय। फिर बुद्धिजीवी वर्ग की पूरी शक्ति नौकरी के ही मार्ग पर बहने लगेगी। कुछ लोग नया मार्ग बनायेंगे, कुछ लोग उनका साथ

देंगे और उन सबको लगेगा कि हम अपने व्यक्तिगत प्रेरणानुसार चल रहे हैं, लेकिन सच पूछा जाय तो नयी सरकार की बनायी गयी समाज-रचना के अनुसार ही वे चल रहे होंगे।

ऐसी स्थिति मे संकट और भी भयंकर हो जाता है, क्योंकि अनुकूल बनने की भावना धोखे का ही एक रूप है। जिन्हें प्रामाणिकता से अपनी बौद्धिक निष्ठा का पालन करना है, उनके भाग्य मे सदा के लिए दुख ही लिखा है। दूसरी ओर सरकारी काम करने का समाधान और सुख का बड़ा मोह है। क्राति-कारी आन्दोलन का नाश हो जाने से बुद्धिजीवी वर्ग बचाव पक्ष मे है। इसके बाद उसके सम्मुख 'पूँजीवाद या क्राति' का सवाल नहीं आयेगा। हॉ, एक प्रश्न अवश्य खड़ा होगा—"लोकशाही और मानवता के मूल्य रक्षित रह सकेंगे या सबका नाश होते देखना पड़ेगा?" इस दुरवस्था को टालने के लिये बुद्धिजीवी वर्ग को अपना विचार-स्वातन्त्र्य-ध्वज, जो चिथडे-चिथड़े हो चुका है, मजबूती से पकड़े रहना होगा।

आज यह ध्वज उतना प्रिय नहीं है, क्योंकि उसके कपड़े पर हुतात्माओं के रक्त-बिन्दु पड़े हैं और साथ ही तिरस्कार के धब्बे भी हैं। इसीलिए एक तरह से वह असामान्य है।

को हिरासत में डाल देना। यह व्यक्तिगत वामपथ-विरोधी कार्य सर्वसाधारण को रुचिकर लगे, इस विचार से इस 'गंदगी' में वास्तविक अपराधी-जगत के बीस प्रतिशत लोग भर दिये गये। इनमें मादक द्रव्यों का व्यवहार करने वाले, आवारा लडके, अपराधी-दलों के संचालक तथा अन्य अपराधी शामिल थे।

किंतु बचे हुए ८० प्रतिशत लोगों मे, जो इस सीलन और गंदगी मे फेके गये थे, वे ही लोग थे, जिन्होंने सन् १९३० या उससे पहले ही हमारे इस युद्ध का श्रीगणेश किया था। उन्होंनें मुसोलिनी के शासन मे अत्यधिक यन्त्रणाएँ सही थीं—डकाउ, बुकारेस्ट और लोवोव में उन्होंने काफी तकलीफे उठायी थीं—लोहे की चाबुकों की मार सही थी। वियना और प्रेग में उन्होंने गुप्त रूप से नाजी-विरोधी परचे छापे थे और इन सबसे ऊपर स्पेन ने जब युद्ध का श्रीगणेश किया था, तबसे उसमें लड़ते रहे थे। हॉ, मुझे ले वर्नेट की निशानी पर, अपने स्कूल के दिनो की टाई के समान ही, गर्व है।

सन् १९४० की जनवरी मे मेरी वहॉ से मुक्ति हुई। उसके बाद वहॉ क्या-क्या हुआ, इसकी अस्पष्ट अफवाहे तब से मै सुनता रहा हूॅ, किन्तु पहली अधिकृत रिपोर्ट जो मुझे मिली वह इस अंग्रेज से ही, जो मेरे छूटने के ५ महीने बाद वहॉ लाया गया था। चूॅकि अभी उसके रिश्तेदार फ्रास मे मौजूद हैं, मैं उसे 'मर्डोक' के कल्पित नाम से पुकारूॅगा। जर्मनों का अधिकार होने के कुछ ही दिनों बाद वह गिरफ्तार कर लिया गया था और रीम्स के निकट, युद्धकालीन बंदियों के एक शिविर मे भेज दिया गया था। वहॉ से वह भाग निकला और किसी प्रकार फ्रास के उस अंचल मे पहुॅचा, जिस पर जर्मनों का अधिकार नहीं हुआ था। किन्तु सैनिकों ने बिना अनुमति-पत्र के विभाजन-रेखा पार करने के अपराध मे उसे गिरफ्तार कर लिया और एक संदिग्ध के रूप में वह वर्नेट भेज दिया गया। वहॉ हथकड़ियो से जकड़ा हुआ वह जुलाई, १९४० के आरम्भ मे पहुॅचा।

वर्नेट मे वर्ष-भर मे जो-जो होता था, वह सब मर्डोक के वर्णन मे शामिल था। उसने वहॉ के उस पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के बारे मे मुझे बताया। सिर्फ तीन महीनों में ही उसका वजन १५० पौड से घटकर १२० पौड तक पहुॅच गया। ६ महीने बाद उसे टायफायड हो गया, लेकिन उन लोगो के विपरीत, जो उससे दस साल पहले से वहॉ थे और जिनकी शक्ति क्षीण हो गयी थी, वह बच गया। एक वर्ष के बाद वह ऐसी स्थिति मे पहुॅच गया था, जहॉ उसने दीर्घकालीन यातना से ऊब कर अल्पकालीन वेदना भुगतने के पक्ष मे फैसला

मैंने पहले ही कहा है कि हमारा शिविर अन्य शिविरों से भिन्न था। इसका नाम है 'ले वर्नेट' (Le Vernet)। वही एक ऐसा शिविर था, जहाँ का अनुशासन बहुत कड़ा था। दूसरे शिविरों के बंदी सजा भुगतने के लिए वहाँ भेज दिये जाते थे। पायरेनेस के उत्तर मे यह किसी 'शैतान' के टापू के समान ही था। स्पेन ने जब इस युद्ध का आरम्भ किया था, तभी यह शिविर बना था, जिससे पराजित प्रजातत्रवादी सैनिकों को फ्रास के 'आतिथ्य सत्कार' का अनुभव कराया जा सके। ले वर्नेट मे पहले रहने के लिए ठड से सिकुडी धरती के नीचे खोदी गयी खाइयॉ ही थीं, जिनमे आहत सैनिकों को मरने के लिए और स्वस्थ सैनिकों को बीमार होने के लिए डाल दिया जाता था। शिविर का पहला निर्माण-कार्य उसे चारों ओर से कॉटेदार तारो से घेरने के रूप मे हुआ। बगल मे ही कब्रिस्तान था, जहा कब्र की पहली कतार पर लगे सभी लकड़ी के क्रासों पर स्पेनिश नाम थे। ये नाम किसी शिलालेख के समान नहीं हैं, बल्कि किसी जोसे या डियेगो या जेसस ने अपनी जेबी छुरी से लकडियो पर खोद रखा है— "आडियस, पेट्रो, फासिस्ट सरकार तुम्हे जिन्दा जला देना चाहती थी, किंतु फ्रासीसियो ने यहॉ तुम्हे ठड में सिकुड़ कर शातिपूर्वक मरने की अनुमति दी।"

बाद में, लकडी की कुछ झोंपडियॉ बाधी गयीं। प्रत्येक झोंपडी मे दो सौ सैनिक रहने वाले थे और उनमे प्रत्येक को रहने के लिए २१ इच जगह मिलने वाली थी। लेकिन जब झोंपड़ियॉ तैयार हुईं तो उनमें से सब को हटा दिया गया, क्योकि उन झोपड़ियों के निरीक्षण के लिए आये हुए एक कमीशन ने फैसला दिया कि वह जगह मनुष्यो के रहने के योग्य नहीं है। कुछ महीने तक वह शिविर बिल्कुल खाली रहा—सिर्फ चूहे और खटमल ही वहॉ रहते थे। फिर युद्ध छिड़ गया और वह जगह पुनः बदियों से भर गयी। समस्त यूरोप से आये लोगों की अद्भुत भीड़ हो गयी वहॉ। फ्रेंच समाचार-पत्रों ने बडी उदारतापूर्वक उसे 'पृथ्वी की गदगी' के नाम से पुकारा।

उस शिविर मे आये हुए लोग कौन थे? कुछ अंतर्राष्ट्रीय सैन्य दलो के अतिम मोहिकन और कुछ सभी देशों से—जहॉ फासिस्टो का अधिकार था—निकाले गये राजनीति मे सक्रिय भाग लेनेवाले फ्रेन्च राष्ट्रवादियों ने, जो बोनेट-लावाल-नीति के हाथो की कठपुतली-मात्र थे और जो नीति सितम्बर १९३९ से ही मुहरबद होकर विकने को तैयार थी, निश्चय किया कि हिटलर के विरुद्ध लड़ने के लिए सबसे पहला जरूरी काम था, सभी शरारती हिटलर-विरोधियों

अनुसार अलग-अलग दलो मे वे वहाँ घण्टों खडे रहे। उन्होने स्नान कर रखे थे, उनके बाल सँवारे हुए थे, उनके कानों मे मैल नहीं जमी थी, नाखून कटे थे और वे पूर्ण सैनिक व्यवस्था मे खड़े थे—जैसे मेमने कसाई की प्रतीक्षा कर रहे हो। कमीशन में १६ चुस्त जर्मन अफसर थे और उन्होने अलग-अलग किस्म की वर्दियाँ पहन रखी थीं। उनमें गेस्टापो भी थे। जिस प्रकार मवेशियों का खरीद-फरोख्त करनेवाला मवेशियों का निरीक्षण करता है, उसी प्रकार निरपेक्ष भाव से अपनी यातनाओ के शिकार उन व्यक्तियों की परेड का उन्होंने निरीक्षण किया। उनके साथ चेहरे पर मुस्कान लिये फ्रेंच सैनिक और अफसर भी थे।

यह बड़े आश्चर्य की बात थी कि जर्मनो को अपने हिस्से का पौंड-भर मॉस लेने की जल्दी नहीं थी। अगले कुछ महीनो मे सब मिलाकर अधिक-से अधिक ३० बदियो को—जो राजनैतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे—तीन अथवा पॉच के छोटे छोटे दलो में ले जाया गया। उन लोगो मे हैन्स डलेम और जर्मन कम्यू-निस्ट दल की केंद्रीय समिति के अन्य सदस्य थे। हँस शल्ज भी था, जिसने नाजी क्रूरताओं पर लिखी प्रसिद्ध पुस्तको के सम्पादन मे मुख्य भाग लिया था। वह मेरे सबसे प्रिय मित्रों मे था और विलि मेन्ज़ेन्बर्ग का सेक्रेटरी था। कम्यूनिस्ट अंतर्राष्ट्रीय के पश्चिमी विभाग का वह प्रचार-प्रधान था और कमिंटर्न ने जितने प्रतिभाशालियों को जन्म दिया, उनमें गोबेल्स की समता करने वाला वह सम्भवतः एकमात्र व्यक्ति था। (विनाश के काल मे, ग्रेनोबल के निकट एक जंगल मे, मेन्ज़ेन्बर्ग फॉसी से लटकता पाया गया। वह मार डाला गया था अथवा उसने आत्महत्या की थी, यह प्रमाणित नहीं हो सका।)

मुख्य-मुख्य बंदियों के अलावा, बाकी शरणार्थियो को वापस ले जाने के लिए नाजी उत्सुक नहीं प्रतीत होते थे। सम्भवतः उन्होने सोचा हो कि जब सारा यूरोप उनका था, तो ये क्षुद्र जीव उन्हें और अधिक नुकसान नहीं पहुँच सकते थे। उन्हे वस्तुतः मजदूरो की जरूरत थी। प्रसिद्ध टाड-कमीशन (यह नाम सीग फ्रायड पक्ति के निर्माता के नाम पर दिया गया था, जो हाल ही मे मार डाला गया था) ने अपने श्रम-शिविरों, मोर्चों, कारखानो तथा खानों मे काम करने के लिए मजदूरों को रखने के विचार से ले वर्नेट मे एक आफिस खोल दिया। मजदूरो की अपनी इस जरूत को पूरी करने के लिए वे इतने परेशान थे कि उन्होने सब को भर्ती करना शुरू कर दिया—चाहे उनके राजनैतिक विचार कुछ भी हों। हॉ, एक बात का ध्यान वे रखते थे—"भर्ती किये जाने वाले का आर्य होना जरूरी था। साथ ही उसे पूर्ण स्वस्थ होना चाहिए

किया। उसने भूख-हडताल शुरू कर दी और २० दिनों के बाद उसे सफलता भी मिली। इसके लिए उसकी उन विशिष्ट परिस्थितियों को धन्यवाद है, जिनके अतर्गत उसके पास एक पासपोर्ट था और मार्सेलीज मे एक ऐसा कानूनी सलाहकार भी, जो उसके सम्बंध मे शोरगुल मचा सके। उस 'गंदगी' के साधारण सदस्य की यही विशेपता थी कि न तो उसके पास पासपोर्ट होता था, न उसका कोई कानूनी सलाहकार होता था और नही कोई ऐसा व्यक्ति, जो दो पेस खर्च करके उसका हाल-चाल पूछ लिया करे।

मर्डोक शिविर मे ठीक उस वक्त पहुँचा, जब युद्ध स्थगित करने के लिए की जानेवाली सधि की शर्तों और उसके घातक १९-वे अनुच्छेद के सम्बंध मे अफवाहें आरम्भ हो गयी थीं। १९-वें अनुच्छेद के अनुसार जर्मनी मे पैदा हुए सभी व्यक्तियों को जर्मन अधिकारियो को सौप देने की व्यवस्था थी। दूसरे शब्दो मे जर्मन अधिकारियो की माग थी कि सभी नाजी-विरोधी शरणार्थी गेस्टापो के हवाले कर दिये जाये।

फिर भी जब सधि की शर्तें प्रकाशित हुई, तब शिविर के बंदियो मे तनिक भी भय का सचार नहीं हुआ। सब बंदियो ने एकत्र होकर कमांडर से प्रार्थना की कि उनमे से कुछ को जर्मनों का अधिकार होने के पूर्व ही 'भाग निकला हुआ' बता दिया जाये। कमाडर ने इनकार कर दिया। एक अफसर की हैसियत से उसे जो काम करना पड़ता था, सम्भवतः उससे उसे घृणा थी, किन्तु दूसरी ओर प्रति माह वेतन के रूप मे मिलने वाले १० पौड के हाथ से निकल जाने का भय भी तो था। बाद में, बदियो के एक प्रतिनिधिमंडल ने यह अनुरोध किया कि गेस्टापो के आने के पहले शिविर के कार्यालय मे रखी उनके सम्बंध की फाइले नष्ट कर दी जाये। कमाडर ने ऐसा करने का वचन दिया, किन्तु जब पहला जर्मन कमीशन पहुँचा, तो कैदियो की सूची पूरी थी।

प्रथम नाजी कमीशन जुलाई महीने मे किसी वक्त शिविर मे पहुँचा था और अब वहाँ के दुःखद दृश्य ने पापपूर्ण प्रहसन का रूप धारण कर लिया। कमीशन के आने के दो दिन पहले कमाडर के आदेशानुसार सफाई के लिए दौड-धूप शुरू हो गयी। झोपड़ी के घास के छप्पर बदल दिये गये, उनमे कीटाणु-नाशक दवाइयाँ छिड़क दी गयीं, शौचालय साफ करवा दिये गये। कमीशन जब वहाँ पहुँचा, तो परेड के मैदान मे निरीक्षण के लिए सब बदी कतार से खड़े थे। एक दर्जन के लगभग वही लोग अनुपस्थित थे, जिन्होंने फाँसी लगा ली थी अथवा समय पर अपनी नसे काट डाली थीं। अपने-अपने राष्ट्रों के

आतंक दिन रात, सप्ताहों और महीनों तक लटकता रहा। अपने भविष्य के लिए उन्हे कोई आशा नहीं थी और वर्षों से यातनापूर्ण और लोगो से परे जो जीवन वे व्यतीत कर रहे थे, उससे उनका अतीत उनके लिए और भी अधिक अवास्तविक बन गया था। और फिर भी एक दर्जन से अधिक व्यक्ति पागल नहीं हुए थे और बीस से अधिक लोगो ने आत्महत्या नहीं की थी। बाकी लोगो ने सिर्फ अपनी नैतिकता बनाये ही नहीं रखी, बल्कि अपने रक्षकों के प्रति रक्तहीन विद्रोह किया और उन्हे सफलता भी मिली।

यह विद्रोह अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य दलो के सात सौ सैनिकों द्वारा-जो पूरे समुदाय की रीढ़ थे—आयोजित किया गया था। मेरे ले वर्नेट छोड़ने के बाद ये सैनिक दूसरे शिविर से वहाँ भेज दिये गये थे। मर्डोक ने मुझे बताया—"उनके अभाव मे, हम सब मर गये होते।"

सन् १९४० के अंत में, असतोष फैलने लगा। उस वक्त तक शिविर मे खाद्यान्न का अभाव भुखमरी का रूप ले चुका था। रोटी का राशन घटा कर सिर्फ ९ औंस कर दिया गया था और बाकी खाने मे प्रति दिन सुबह मे आधा पिंट (प्रायः डेढ पाव) काली काफी मिलती थी और लगभग एक पिंट शोरबा। जो भी खाद्यान्न शिविर मे पहुँचता था, उसका बड़ा हिस्सा, वहाँ के अधिकारी द्वारा चुरा लिया जाता था और उसका कुछ हिस्सा, वहाँ काले बाजार मे बेचा जाता था। कुछ हिस्सा शिविर के कैंटीन द्वारा काफी बढ़े हुए दामों पर शिविर के धनी व्यक्तियो के हाथ बेचा जाता था। कैंटीन मिमि डेज्यूने नामक एक महिला चलाती थी। वह लेफ्टिनेंट कौम्प के साथ—जो सर्वाधिक बदमाश और क्रूर था—रात गुजारती थी और अपना मुनाफा उसके साथ बाँट लेती थी। चुराये गये आलुओ और गाजरो की जगह, बंदियों के लिए, शोरबा बर्फ-से सर्द (खराब) शलगमो से तैयार किया जाता। दिसम्बर, १९४० मे एक दिन बंदियो ने मिलकर उन शलगमों को गाड़ दिया और एक साथ नारे लगाने लगे—"हम भूखे हैं। और "हमारे अधिकारों का आदर करो!" घंटों यह चलता रहा। अंत में, कमांडर कुछ सैनिको के साथ आगे-आगे चलकर बंदियो के तार के घेरे के निकट पहुँचा। सबने अपनी राइफले तान रखी थी। कमाडर ने कहा—"मेरे तीन गिनने तक तुम सब तितर-बितर हो जाओ।" उसने तीन तक गिना, पर कोई हिला भी नहीं। कमाडर हिचकिचाया। अगर उसने गोली चलाने का हुक्म दे दिया होता, तो वह अपने इच्छानुसार अधिक-से-अधिक बंदियों को मौत के मुँह मे भेज सकता था, किंतु उसके फौजी दस्ते के आधे सिपाही भी मारे जाते

था, कठिन श्रम करने का इच्छुक भी!" वे उनको काफी तनख्वाह देने का वचन देते थे—१२० फ्राक प्रति दिन—१३ शिलिंग के लगभग।

हजार से भी अधिक निराश व्यक्तियों ने टाड-कमीशन मे अपना नाम लिखा लिया। उनमें से अधिकाश या तो अपराधी-वर्ग के थे या गैर-राजनीतिक वर्ग के। अतर्राष्ट्रीय सैन्य दलो के सैनिकों ने अपना नाम लिखाने से इनकार कर दिया। मुझे यह सारी बात बतानेवाले अंग्रेज ने एक व्यक्ति को कमीशन के इस प्रश्न का कि क्या वह जर्मनी वापस जाना पसद करेगा—जवाब देते हुए सुना था—"बडी खुशी से—किन्तु थेलमन के प्रेसिडेट बना दिये जाने के बाद!" (थेलमन जर्मन कम्यूनिस्ट पार्टी का नेता था, जो सन् १९३२ से ही बदी था।) ताज्जुब है, ऐसे उत्तर पर भी उस व्यक्ति को कोई दड नहीं दिया गया।

दूसरे एक हजार अथवा उससे कुछ अधिक व्यक्तियों को फ्रेन्च अधिकारियों ने बलपूर्वक जहाज पर अफ्रीका भेज दिया, जिससे ट्रास-सहारा रेलवे के आधुनिक गुलामो के दल मे शामिल होकर वे भी काम कर सकें। जर्मनी को सौपे जाने के समान लोगों की हदपारी (देश से बाहर निकालने का काम) भी बड़ी भयानक थी। ऐसे व्यक्तियों के चुनाव में न तो कोई नियम बरता गया था, न कोई सावधानी! कोई नहीं जानता था कि अगली बार उसे चुना जायेगा या छोड दिया जायेगा। ले वर्नेट मे जो पत्र पहुँचते थे, वे सेसर होने (अधिकारियों द्वारा पास कर दिये जाने) के बावजूद लोगों को इस बात का आभास दे देते थे कि मोरक्को-निवासी गुलामों के दल की कैसी दुर्दशा है और उस खूनी (अस्वास्थ्यकर) जलवायु मे लोग किस प्रकार पर्याप्त पोषण के अभाव, अत्यधिक थकान और सक्रामक रोगों से मक्खियो की तरह मर रहे हैं। मर्डोक की जब रिहाई हुई, तो वह एक सैनिक के साथ, जो निष्कासित व्यक्तियों को लेकर सेटे बदरगाह तक गया था, मार्सिले भेज दिया गया। उसने मर्डोक को बताया था—"सब के हाथों मे हमने हथकड़िया लगा रखी थी, फिर भी वे शाति से नहीं बैठे रहते थे। एक ने चलती गाडी की खिड़की से बाहर कूदने का प्रयास किया, लेकिन मैंने उसे समय पर पकड़ लिया। जहाज पर उन्हे पहुँचाने तक छः व्यक्ति भाग निकले· लेकिन एक बार जहाँ वे जहाज पर पहुँचा दिये गये कि हमने मशीनगन के जोर पर उन्हें बद कर दिया और उसके बाद उन्होंने कोई बदमाशी नहीं की।"

गेस्टापो के हवाले किया जाना अथवा निष्कासित कर के सहारा में भेजा जाना प्रतिदिन के लिए आतकदायी बन गया। ले-वर्नेट के आदमियो के सिर पर यह

अधिक व्यक्ति जर्मनी के लिए गुलामी करने टाड-कमीशन के साथ चले गये थे, लगभग आठ सौ व्यक्ति निष्कासित करके अफ्रीका भेज दिये गये थे; किन्तु हर बार रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए नये बंदी ले आये जाते थे। नये आने वालों मे अधिकाश विदेशी स्वयंसेवक थे, जिन्होने फ्रास की लड़ाई लडी थी। कुछ उनमें आहत हो गये थे, कुछ को उत्कृष्ट बहादुरी का सम्मान मिला था। किन्तु वर्नेट में जो शौचालयों का कष्ट था, उसके सम्मुख उनका शौर्य भी धरा रह गया। उनमें दो चीनी भी थे और अबीसीनिया के कबीले का एक व्यक्ति था, जो १९३५ में एक इटालियन बंदी-शिविर से भाग निकला था और तब से मार्सिले मे उस वक्त तक रहता आया था, जब तक पुलिस ने उसे "फासिस्ट-विरोधी कार्रवाइयो का सदिग्ध" कह कर बंदी नहीं बना लिया। वर्नेट के अस्पताल में वह क्षय रोग से मर गया।

जो सही पचमागी थे, उनमे से सिर्फ तीन या चार व्यक्तियो को ही मेरे उस पुराने बंदी-शिविर मे कम दिनो तक रहने देकर असम्मानित किया गया। वेल्जियन साम्राज्यवादियो का नेता लियो डेग्रेले कुछ दिनों के लिए अंतर्राष्ट्रीय सैन्य दलो के सैनिको के साथ बैरक नं. १७ में रखा गया था। उसे भय था कि क्रूर साम्यवादी उसे मार डालेगे। उन्होने उसका स्पर्श तक नहीं किया। वे उसके साथ वैसा बर्ताव करते थे, जैसे वह पारदर्शक हो। सधिपत्र पर हस्ताक्षर होने के पूर्व ही उसे मुक्त कर दिया गया था। शिविर के कमाडर ने स्वय आकर उसे यह शुभ समाचार दिया—"माश्योर डेग्रेले, आपकी मुक्ति का आदेश आ गया है।"

किंतु मेरे पुराने मित्रो को ले जाने के लिए कोई मोटर नहीं आयी। अगर उन्होने वह शिविर छोड़ा भी, तो स्ट्रेचर पर लद कर छोड़ा। मेस्त्रो उनमे से एकमात्र व्यक्ति है, जो निष्कासित कर के मोरक्को भेजे जाने के बाद, एक चमत्कार की तरह, वहाँ से मुक्त हो गया। वह अब मेक्सिको में है और वेनेदेतो क्रोस के ऊपर लिखना पुनः जारी कर रहा है। यह पुस्तक उसने वर्नेट मे लिखना आरम्भ किया था। किंतु वृद्ध पोडाक अपने नैराश्य और दमा को सँजोये अभी वहीं है। रूमानिया का, जूते की डिजाइन बनाने के लिए विख्यात क्लेइन और याकेल भी वहीं था, जब मर्डोक वहाँ पहुँचा। याकेल १९ वर्ष का एक लडका है, जिसकी नाक सदा बहती रहती थी और जो गर्दन में लाल स्कार्फ बाँधे रहता था। वह रूसी यहूदियो के दो संगठनो में रहा था और क्रैकाउ मे परचे बाँटने के लिए उसे दो बार जेल जाना पडा था। मर्डोक का अनुमान है कि नवम्बर मे जब बारह व्यक्तियो के एक दल ने भागने की कोशिश की थी

और जिसका अर्थ था, उसे सम्भवतः अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ता। जब वह हिचकिचा रहा था, बंदियो में से एक ने नम्र आवाज में कहा—"तुम एक बार फिर गिनना क्यों नहीं आरम्भ करते?" कमाडर और उसका सैनिक दस्ता वापस चला गया।

बंदियों की यह पहली विजय थी। शलगम फेंक दिये गये और बंदियों को इसका अधिकार दिया गया कि खाद्यान्न-अधिकारी के भाडार मे खाद्यान्नों की जॉच करने के लिए वे अपने प्रतिनिधि नियुक्त करे।

कुछ महीनों बाद, दो बैरकों के प्रतिनिधियों ने अपने राशनो मे कमी पायी और उसे लेने से इनकार कर दिया। परिणाम-स्वरूप काफी लम्बा और जबर्दस्त सघर्ष चला। उन दो बैरकों के अलावा शिविर के आधे बंदियो ने भूख-हड़ताल की। इस सारे समय बंदियों का अनुशासन उल्लेखनीय था। उन्होंने किसी प्रकार का उपद्रव नहीं किया—किसी उत्तेजना के वशीभूत नहीं हुए। रक्षकों ने जब उन पर आक्रमण किया, उन्होंने विरोध नहीं किया। स्वय को भूखे रखकर और किसी जंगली नगाडे की आवाज की तरह बार-बार अपने नारे दुहरा कर कि "हम भूखे हैं" और "हमारे अधिकारों का आदर करो"—वे अपना सघर्ष जारी रखे हुए थे। इसका अंत इस प्रकार हुआ कि कमाडर ने निकटस्थ गॉवों से लगभग आधी पल्टन के बराबर सैनिक एकत्र किये और इन सैनिकों ने विना किसी चेतावनी के शिविर पर हमला कर दिया। किसी प्रकार का विरोध न करनेवाले बंदियो को राइफल के कुंदो से मारा गया और वे सैनिक एक सौ छः आदमियो को घसीटते हुए ले गये। इन आदमियों को वे चुनकर नहीं ले गये थे—जिसे चाहा, पकड ले गये। इन एक सौ छः व्यक्तियो को स्थानीय कारागार मे ले जाया गया। वहॉ रात भर उन्हें पीटा गया और फिर जेल मे डाल दिया गया। इस प्रकार अपनी खोयी प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना कर, कमाडर ने बंदियो के प्रतिनिधियों से समझौते की बात आरम्भ की। इस वार्ता का अत यह हुआ कि उनकी सभी मॉगे स्वीकार कर ली गयीं। इच्छा-शक्ति की यह विजय बड़ी अद्भुत थी, क्योंकि ले वर्नेट का कमांडर, गार्डे मोबाइल के फौजी दस्ते का वही प्रधान था, जिसने प्रदर्शनों के समय ६ फरवरी, १९३४ को, पैलेस-डे-ला-कान्कोर्ड में एकत्र भीड़ को जिंदा जलाने के लिए, उसमें आग लगा देने का हुक्म अपने व्यक्तियों को दिया था।

मर्डोक जब रिहा किया गया, तब वर्नेट मे लगभग दो हजार बंदी थे। कुछ बेल्जियन, स्विस और डच अपने-अपने देश भेज दिये गये थे, एक हजार से

अविश्वसनीय क्रूरताएँ*

मैं एक स्वप्न देखा करता हूँ। नियमित समय पर बार-बार मैं यही स्वप्न देखता हूँ—घोर अंधकार है और किसी वन या घनी झाड़ी में मेरी हत्या की जा रही है। कुल दस गज की दूरी पर एक रास्ता है, जिस पर आना-जाना लगा ही रहता है। मै मदद के लिए चिल्लाता हूँ; किंतु मेरी आवाज कोई नहीं सुनता, भीड़ हॅसती और बातें करती चली जाती है।

मै जानता हूँ कि और भी बहुत-से व्यक्ति इस प्रकार के स्वप्न देखते हैं। हॉ, उनके व्यक्तित्व के अनुसार उसमें कुछ परिवर्तन रहते हैं। इसके सम्बन्ध मे मैंने विश्लेषकों से काफी झगड़ा किया है। मेरा विश्वास है कि मृत्यु और लौकिक हिंसा का सामना करते समय तथा अपने अनुभव की अनोखी भयानकता कहने में असमर्थ होने पर यह व्यक्ति के परम एकाकीपन का व्यक्तीकरण है। मेरा यह भी विश्वास है कि जर्मन क्रूरताओं के सम्बंध मे किये गये हमारे प्रचार की विफलता की यही जड़ है। क्योंकि आखिर सड़क पर हॅसते हुए गुजरनेवाले लोग आप ही हैं और हममे से कुछ ही ऐसे हैं, जिन्होंने या तो वन मे होने वाली घटनाओ को अपनी ऑखों से देखा है अथवा खुद उनका शिकार होते-होते बचे हैं। उन्हे हमारी स्मृतियॉ बार-बार सताती हैं और वे रेडियो पर चीखते रहते है, समाचारपत्रों, सार्वजनिक सभाओ, थियेटरों और सिनेमाओं मे आपके विषय में चिल्लाते रहते हैं। कभी-कदाच आपके कानो तक मिनट-भर के लिए अपनी आवाज पहुँचाने मे हम सफल हो जाते हैं। मै जानता हूँ, जितनी बार ऐसा होता है, उतनी बार आपके चेहरों पर एक मूक आश्चर्य का भाव व्यक्त हो उठता है, आपकी ऑखो मे एक धुँधली-सी चमक समा जाती है और मै स्वयं से कहता हूँ—"अब तुमने उन्हें पा लिया है, अब उन्हें पकडे रहो, पकडे रहो, जिससे वे जागते रहे।" किंतु यह स्थिति एक मिनिट तक रहती है। पिल्लो की तरह, जिनके शरीर के रोयें जब भीगे रहते हैं, आप अपने शरीर को हिलाते हैं, फिर शीघ्र ही वह प्रभाव समाप्त हो जाता है और आप आगे बढ़ जाते हैं—स्वप्न के घेरे से रक्षित, जो सब आवाजो को दबा देता है।

* प्रथम बार "द' न्यू टाइम्स मैगेजीन" जनवरी १९४४ में प्रकाशित।

और उनमे जिन तीन व्यक्तियो को गोली मार दी गयी थी, उनमे याकेल भी एक था। किंतु वह निश्चित रूप से नहीं कह सकता। "इतना सुदर यहूदी बालक और कितना साहस था उसके भीतर !"—मर्डोक ने उसका उल्लेख करते हुए कहा। किंतु ले वर्नेट मे और भी बहुत-से सुंदर यहूदी बालक थे और उनमे भी प्रचुर साहस था।

मर्डोक के जाने के बाद शिविर के सम्बन्ध मे जो मुझे अंतिम समाचार मिले, वे एक अंतर्राष्ट्रीय लोकहितैषी सगठन की गुप्त रिपोर्ट मे प्रकाशित हुए थे—

"सन १९४१ के सितम्बर-अक्तूबर में ले वर्नेट मे एक सक्रामक रोग फैला। प्रति दिन औसतन दो और तीन व्यक्ति मरते थे। इसकी सर्वाधिक जिम्मेदार प्राथमिक सावधानी—शौचालयो की देखभाल की—उपेक्षा थी। वहॉ रहने वालों को "भूख-भूख" चिल्लाकर मरने के लिए छोड़ दिया गया। सिर्फ अंतिम अवस्था मे ही उन्हे शिविर के अस्पताल मे भर्ती किया जाता और वहॉ बहुत बडी सख्या मे उनकी मृत्यु होती।"

यह सन् १९४२ का जून है और मुझे ताज्जुब है कि उनमे से अब तक कितने बचे होंगे। 'सी'-विभाग के कटीले तारो के घेरे से वे कब्रिस्तान मे दिन-प्रति-दिन और कतार-के-बाद-कतार मे बढते हुए लकड़ी के क्रासों को देख सकते हैं। धर्मयुद्ध करनेवालों की सामूहिक कब्रो के बाद से सम्भवतः यही विश्व के सभी जातियों की सर्वाधिक खोपडियों का सग्रह है। और वे भी धर्मयोद्धा ही थे, एक विनष्ट होते हुए महादेश के वे अभिमान थे—वीर-श्रेष्ठ थे—मनुष्य की प्रतिष्ठा सुरक्षित रखने के लिए होने वाले युद्ध के वे मार्गदर्शक थे। किंतु भविष्य के इतिहास-लेखक उनकी कहानी—अतर्राष्ट्रीय सैन्य दलो की वीरता और मेरे पुराने बदी-शिविर की कहानी—प्रकाश मे लायेंगे और उन पर लगे लेबिल को बदल कर नया लेबिल लगा देंगे और उन्हे उसी नाम से पुकारेंगे, जो वे वास्तव में थे—"पृथ्वी का लवण—एक उपयोगी और महत्वपूर्ण पदार्थ।"

विशिष्ट लक्षण यह है कि यथार्थता से उनका सम्बंध टूट जाता है और वे कल्पना के संसार में रहते हैं। सो, शायद यहाँ इसके विपरीत है, शायद यहाँ हम, चिल्लानेवालो पर, स्वस्थ और ठोस रूप में यथार्थ की प्रतिक्रिया हुई है—जब कि आप वह उन्मादी हैं, जो एक आवरित कल्पना-लोग में डगमगा रहा है। कारण यह है कि वास्तविकता का सामना करने के लिए आप में आतरिक बुद्धि का अभाव है। अगर बात ऐसी नहीं होती, तो यह युद्ध टल गया होता और जो आपकी दिवा स्वप्निल ऑखो के सामने मारे गये, वे अभी भी जीवित रहते।

मैने 'शायद' इसलिए कहा है कि उपर्युक्त बातें सिर्फ अर्द्ध सत्य हो सकती हैं। सभी काम मे चीखने वाले हुए हैं—मसीहे, उपदेशक, शिक्षक और सनकी, जो अपने समकालीनो की मूढ़ता को कोसते हैं, और परिस्थिति का ढॉचा भी बहुत-कुछ यही रहा है। सदैव घनी झाड़ियो से चीखनेवाले रहे हैं, और लोग सड़क पर गुजरते रहे हैं। उनके कान होते हैं; पर वे सुनते नहीं, उनकी ऑखे होती है, पर वे देखतीं नहीं। अतः निश्चय ही इसकी जडो को मात्र मूढ़ता से भी नीचे, और अधिक गहराई मे होना चाहिए।

शायद यह चीखनेवालो का अपराध है! कुछ अवसरो पर ऐसा भी होता है, इसमें सदेह नहीं, किंतु मैं विश्वास नहीं करता कि इसका मूल कारण यही है। एमोस, होजी, जेरेमियाह अच्छे प्रचारक थे, फिर भी वे अपने लोगों को प्रभावित और सावधान करने मे असफल रहे। कैसेडरा (ट्रोजन की एक भविष्य बताने वाली औरत) की आवाज के बारे में कहा जाता है कि वह दीवारो मे भी प्रवेश कर जाती थी, फिर भी ट्रोजन का युद्ध हुआ ही। और मेरा विश्वास है कि इस समय भी उचित अनुपात मे एम. ओ. आइ. और बी. बी. सी. अपने काम मे काफी निपुण है। लगभग तीन वर्षो तक सिर्फ पराजय की खबरें देखकर ही उन्हे अपने देशवासियों का धैर्य बनाये रखना था और उन्होंने इस कार्य मे सफलता भी पायी। किन्तु साथ-ही-साथ, जिस काल मे वे पैदा हुए थे, उसकी श्रेष्ठता और भयानकता तथा यह सब क्या हो रहा था, इस सम्बध में लोगों को किसी उपाय से प्रभावित करके पूर्ण जाग्रत करने में उनकी असफलता बड़ी शोचनीय रही। पुराने ढर्रे पर उनका कार्यक्रम चलता रहा। सिर्फ एक ही अंतर था कि उनके इस कार्यक्रम में मरने और मारे जाने की खबरे भी शामिल हो गयी थीं। यथार्थ में कल्पना नहीं करने की शक्ति एक ऐंग्लो-सेक्सन जातीय दंतकथा का रूप ले चुकी है। साधारणतया सकट के समय अपने महत्त्व के लिए इसकी प्रशसा की जाती है। किन्तु दतकथा यह नही बताती कि सकट-

हम, चीखने वाले, लगभग दस वर्षों से चीखते आ रहे हैं। हमने चीखना उसी रात प्रारम्भ किया, जब जर्मन पार्लियामेंट मे आग लगायी गयी। हमने कहा था—अगर इन लपटो को आप तत्काल शांत नहीं करते हैं, तो ये सारे ससार मे फैल जायेगी। आपने समझा, हम लोग पागल हैं। अभी हमें, यूरोप के उन सभी यहूदियो के विषय मे आपको बताने की सनक है, जो गर्म भाप से, विद्युत्-प्रवाह से और जिंदा गाड कर मारे जा रहे हैं। अब तक तीस लाख मर चुके हैं। इतिहास की सामूहिक हत्याओ मे यह सबसे बडी है और प्रति दिन, प्रति घटे यह व्यापार चल रहा है—आपकी घडी की टिक्-टिक् के समान ही नियमित रूप से! यह लिखते वक्त मेरे सामने मेज पर इसके फोटो रखे हैं और मेरी इस भावना तथा कड़वापन का यही कारण है। उन फोटों को पोलैंड से चोरी-चोरी बाहर लाने मे कई लोग मर गये। उनका विचार था, ये फोटो वहाँ से बाहर, प्रकाश मे आने योग्य हैं। परचों, पुस्तको, समाचारपत्रों, पत्रिकाओं और सभी उपायों द्वारा वास्तविक तथ्य प्रकाशित हो चुके हैं। किंतु एक दिन मैं यहा के पत्रकारों मे से एक प्रमुख अमरीकी पत्रकार से मिला। उसने मुझे बताया कि अभी हाल ही मे जब अमरीकी लोगों के विचार जानने का प्रयास किया गया, तो औसतन दस व्यक्तियो मे से नौ व्यक्तियों ने, यह पूछने पर कि क्या वे नाजियों की इन क्रूरताओं पर विश्वास करते हैं, जवाब दिया कि यह सब झूठे प्रचार हैं और वे इस के एक शब्द पर विश्वास नही करते। इस देश में, तीन वर्षों से मैं सैन्य दलों के सामने व्याख्यान देता हूँ और उनका रुख अभी भी वही है। वे बंदी-शिविरो के सम्बंध मे विश्वास नहीं करते, वे यूनान के क्षुधा-पीडित बच्चों के बारे में, फ्रास के शरीर-बन्धकों को गोली मारे जाने के बारे मे या पोलैंड के सामूहिक कब्रों के बारे मे विश्वास नहीं करते। उन्होने लिडिस, ट्रेब्लिंका अथवा बेलजेक के बारे मे कभी नहीं सुना। हम घंटे भर के लिए उन्हें विश्वास दिला देते हैं, किन्तु फिर वे शरीर झटक देते हैं, उनकी मानसिक आत्म-सुरक्षा काम करना आरम्भ कर देती है और एक प्रतिबिम्ब के समान ही, जो किसी आघात से कुछ काल के लिए धुँधला हो गया था, उनका अविश्वास एक सप्ताह मे ही लौट आता है।

मेरे लिए और मेरे जैसे अन्य व्यक्तियों के लिए स्पष्ट ही, यह एक उन्माद बनता जा रहा है। स्पष्ट ही, हम किसी दूषित प्रेतबाधा से यातना पा रहे हैं—जब कि दूसरे लोग स्वस्थ और स्वाभाविक अवस्था मे हैं। किंतु पागलों का

'जानना' और 'विश्वास करना' सिर्फ होंठो पर आकर रह जाते हैं। उदाहरणार्थ, मृत्यु सम्पूर्ण की श्रेणी से सम्बंधित है और इसमें हमारा विश्वास सिर्फ होंठो की चीज है। "मै जानता हूँ" कि ऑकड़ों के हिसाब से औसत आयु ६५ वर्ष की होने से, बुद्धि के अनुसार, मुझे अगले २७ वर्षो से अधिक जीने की उम्मीद नही करनी चाहिए। किंतु अगर मै निश्चित रूप से यह जानता रहूँ कि ३० नवम्बर, १९७० को ५ बजे सुबह मेरी मृत्यु हो जायेगी, तो यह जानकारी मेरे लिए घातक होगी। मैं बचे हुए दिन और घंटे बार-बार गिनूँगा, एक मिनट भी व्यर्थ जायेगा, तो इनके लिए मुझे स्वय से शिकायत होगी, दूसरे शब्दो मे, मैं एक उन्माद का शिकार हो जाऊँगा। औसत से अधिक जीने की आशाओ से इसे कुछ लेना-देना नहीं है। अगर तिथि उसके दस साल बाद की भी निर्धारित की जाये, तो भी उन्माद की प्रक्रिया वही रहेगी।

इस प्रकार हम खंडित चेतना की अवस्था मे रहते हैं। जीवन की दो सतहे हैं—दुःखद सतह और तुच्छ सतह। दोनो सतहो मे दो तरह के अनुभवजन्य ज्ञान की प्राप्ति होती है—इन दोनो मे कोई मेल नही है। उनके वातावरण और उनकी भाषा में उसी प्रकार अंतर है, जिस प्रकार गिरजाघर की लैटिन भाषा और व्यावसायिक जगत में बोली जाने वाली गॅवारू भाषा में।

सजगता की ये परिमितताएँ, प्रचार द्वारा ज्ञान की परिमितताओ के कारणो पर भी प्रकाश डालती हैं। लोग सिनेमाओं में जाते है। नाजियों द्वारा दी जानेवाली यातनाओ, लोगों के समूह-के-समूह को गोली मार देने, गुप्त षड्यंत्र और आत्मघात की फिल्मे वे देखते हैं। वे आहें भरते है, अपने सिर हिलाते हैं और कुछ तो फूट-फूट कर रोने भी लगते हैं। किंतु अस्तित्व के वास्तविक सतह पर भी ऐसी घटनाएँ घटती हैं, वे ऐसा नहीं मानते। यह कल्पना है, कला है, ऊँची चीजे हैं, गिरजाघर में बोली जाने वाली लैटिन के समान ही है। यथार्थता से उसका मेल नहीं बैठता। हम जैकिल और हाइड की तरह के समाज में रहते हैं, जो परिमाण मे उससे भी बढा-चढा है।

किंतु स्थिति हमेशा ही ऐसी नहीं रही। इतिहास में ऐसे काल भी आये हैं—ऐसे आंदोलन भी हुए है—एथेंस में, कलाकौशल तथा विद्या की जाग्रति के आरम्भ मे, रूसी क्रांति के पहले के वर्षो मे—समाज का प्रतिनिधित्व करने-वाली कुछ परतो ने तुलनात्मक दृष्टि से उच्च मानसिक सतह का संयोग पा लिया था, ऐसे समय भी आये हैं, जब लोग अपनी ऑखे मलते और जागते हुए प्रतीत हुए, जब उनकी सांसारिक सजगता विस्तृत होती प्रतीत हुई, जब

कालों के बीच क्या होता है और उसकी यही खूबी संकटों के पुनरागमन को रोकने मे असफलता की जिम्मेदार है।

सजगता की परिमितता ऐंग्लो-सेक्सनों का कोई विशेष अधिकार नहीं है, यद्यपि सम्भवतः यही एकमात्र ऐसी जाति है, जो इसे अपनी पूँजी मानती है, जब कि दूसरे इसे त्रुटि या अभाव के रूप में देखते हैं। यह स्वभाव का प्रश्न हो, ऐसी बात भी नहीं। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है—हमारे मानसिक ढॉचे से अभिन्न, और मेरा विश्वास है कि सामाजिक मनोविज्ञान अथवा राज-नैतिक सिद्धात में इस पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है।

हम बहुधा कहते हैं—"मै इस पर विश्वास करता हूॅ" अथवा "मैं यह नही जानता हूॅ" अथवा "मैं इस पर विश्वास नहीं करता हूॅ", "मैं यह जानता हूॅ"। यथार्थ मे यह अंतर 'जानने' और 'विश्वास करने' की तीव्रता की मात्राओं का अतर है। रोमन गुलामों के विद्रोह का नेतृत्व करनेवाला स्पार्टाकस नामक एक व्यक्ति था, यह मैं जानता हूॅ; किंतु भूतकालीन उसके अस्तित्व का मेरा विश्वास वर्तमान की तुलना मे—जैसे लेनिन के अस्तित्व-सम्बधी मेरे विश्वास की तुलना मे—बहुत दुर्बल है। मै चक्राकार नीहारिकाओं में विश्वास करता हूॅ, एक दूरवीक्षण यत्र से उन्हे देख सकता हूॅ और उनकी दूरी बता सकता हूॅ; पर मेरी मेज पर रखी दावात की तुलना में, मेरे लिए उनकी यथार्थता की मात्रा कम है। स्थान और काल की दूरी सजगता की तीव्रता घटा देती है। परिमाण भी यही करता है। सत्रह की सख्या ऐसी है, जिसे मैं निकट से किसी मित्र के समान ही जानता हूॅ, ५०० अरब की सख्या ऐसी है, जिसकी सिर्फ आवाज से ही मैं परिचित हूॅ। कोई कुत्ता मोटर से जब दब जाता है, तो हमारी भावनाओं का सारा सतुलन बिखर जाता है, पोलैंड मे ३० लाख यहूदियों के मारे जाने की खबर सुन सिर्फ जरा-सी बेचैनी-भर होती है। ऑकड़ों का महत्त्व नहीं है, महत्त्व है विवरण का। सम्पूर्ण प्रक्रिया ग्रहण करने मे हम असमर्थ हैं; यथार्थता के छोटे छोटे भाग पर ही अपना ध्यान केंद्रित कर सकते है।

यहॉ तक तो जानने और विश्वास करने की तीव्रता, वर्गों तथा मात्राओं की बात हुई। किंतु जब हम परिमित के प्रदेश से गुजर जाते हैं और जब हमारे सामने 'काल की नित्यता', 'आकाश की अपरिमितता' जैसे शब्द आते हैं—अर्थात् जब हम सम्पूर्ण के मडल के निकट पहुॅचते हैं, तब हमारी प्रतिक्रिया मात्राओं की बात न रहकर, स्वभाव के अतर से सम्बधित हो जाती है। सम्पूर्ण का सामना होने पर, बुद्धि जवाब दे जाती है और हमारा

मोर्चा लगे बख्तरबंदवाले योद्धा*

१

"द' न्यूयार्क टाइम्स मैगेजीन" पत्र के सम्पादक ने मुझे 'गणतंत्रीय प्रणाली' के लिए अंत तक लड़ते रहने का विश्वास मनुष्य कहाँ से पाता है, इस सम्बंध में अपने स्वय के अनुभव पर आधारित एक लेख लिखने के लिए कहा है। मै इस प्रश्न को यहाँ इस लिए उद्धृत कर रहा हूँ कि मेरे विचार से, निषेधात्मक रूप में, इस प्रश्न के उत्तर का कुछ अंश भी इसी मे है। बैडाजोज के जमाने से, जिन-जिन लोगो को मैंने मरते देखा है या लडाइयों के मैदानो मे, अस्पतालो में, जेलखानों मे और बंदी-शिविरों में मौत से मिलने के लिए जाते देखा है, उनमें से अधिकाश व्यक्तियों ने एक अवास्तविक 'गणतत्रीय प्रणाली' के लिए कोरे उत्साह के कारण अपने जीवन को नहीं खोया। मुझे ताज्जुब है कि इस युद्ध मे जिन्होंने सही माने मे युद्ध किया है, उनमे से बहुत कम व्यक्ति आपको ब्रिटिश ट्रेड यूनियन तथा जर्मन मजदूर मोर्चा का अंतर बता सकते हैं—ज्यादा जटिल वैधानिक प्रश्नो की बात तो जाने दीजिये।

इस युद्ध की महान् घटनाओ में से एक ही लीजिये—एक छोटे यूनानी सैन्य दल द्वारा मुसोलिनी की उन्मत्त पलटन को पराजित करने की घटना। इस यूनानी सैन्य दल के बारे मे इसके पहले किसी ने कभी सुना ही नहीं। यह एक चमत्कार ही था—और फिर भी यूनानियों ने स्वर्गीय मेटाक्स की—जो इतना, क्रूर, संकीर्ण विचारों वाला और बेवकूफ था कि प्लेटो-लिखित पुस्तक 'रिपब्लिक' पर भी उसने रोक लगा दी थी—फासिस्ट तानाशाही के निर्देशन में युद्ध किया। पुनः अभी हाल के चमत्कार को ही लीजिये—स्टालिनग्राड का बचाव। सोवियत राज्य के पुरुषों और महिलाओ के लिए हमारे मन मे नम्रता, कृतज्ञता और प्रशंसा की भावना है। जो उनके और हमारे बीच विभाजन की रेखा खीचने का प्रयास करते है, वे हिटलर का खेल खेल रहे हैं। किंतु जो यह दिखावा करते है कि 'अंकल जो' के तरीके गणतत्रीय

* प्रथम बार "द' न्यूयार्क टाइम्स मैगेजीन", जनवरी १९४३ मे प्रकाशित।

वे कहीं अधिक विस्तृत और पूर्ण अर्थ मे "समकालिक" थे और जब तुच्छ और लौकिक सतहें एकरूपता की स्थिति में पहुँचती प्रतीत हुई।

और भिन्नता तथा पृथकता के काल भी आये हैं परन्तु पहले कभी भी—रोम और बाइजेंटियम के चमत्कारपूर्ण विनाश के समय मे भी—खडित विचारधारा इतनी प्रत्यक्ष नहीं हुई और न सामूहिक रूप से यह एक ही रोग सब को लगा। मानव-मनोविज्ञान कभी भी कृत्रिमता की इस ऊँचाई पर नहीं पहुँचा था। व्यवहार जैसे-जैसे विस्तृत होता जाता है, हमारी सजगता प्रत्यक्ष अनुपात मे सिकुड़ती प्रतीत होती है, हमारे सामने सम्पूर्ण विश्व पहले इस प्रकार कभी खुला नहीं पड़ा था, जैसे अब है और हममें से प्रत्येक अपने व्यक्तिगत पिंजड़े में, बंदी की तरह टहलता रहता है। घड़ी की टिक-टिक चलती रहती है—समय गुजरता रहता है। चीखनेवाले भी चीख-चीख कर अपना मुँह लाल करने के सिवा और क्या कर सकते हैं?

मै एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ जो इस देश में घूमा करता था और प्रति सप्ताह औसतन दस सभाओं में बोलता था। वह लदन का एक प्रसिद्ध प्रकाशक है। प्रत्येक सभा के पहले वह अपने को एक कमरे के भीतर बंद कर लिया करता था, अपनी आँखे बद कर, पूरे बीस मिनटो तक वह विस्तार मे यह कल्पना करने की कोशिश करता था कि पोलैंड में जितने लोग मारे गये, उनमे एक वह भी था। एक दिन उसने यह अनुभव करने की चेष्टा की कि क्लोराइड गैस से दम घुटने पर कैसा लगता है। दूसरे दिन अपने दो सौ साथियो के साथ स्वयं अपनी कब्र खोदने तथा तीसरे दिन मशीनगन के सामने खड़े होने की उसने कल्पना की। अवश्य ही, अपने लक्ष्य मे यह कार्रवाई अस्थिर और चपल है। लेकिन इसके बाद वह मंच पर चला जाता और बोलता। पूरे साल-भर तक वह ऐसा करता रहा, फिर स्नायविक दुर्बलता का वह शिकार हो गया। अपने दर्शको पर उसका बड़ा प्रभाव था और सम्भवतः उसने कुछ भला भी किया। सम्भवतः दोनो सतहो की मीलो की दूरी को उसने लगभग एक इञ्च कर दिया।

मेरे विचार से, इस उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए। वर्तमान काल में सुबह का अखबार पढने के बाद प्रति दिन आँखें बद कर के दो मिनटों तक इस प्रकार का व्यायाम, शारीरिक व्यायाम और प्राणायाम से अधिक आवश्यक है। गिरजाघर जाने के बजाय इससे काम चल सकता है। क्योंकि जहाँ तक लोग सड़कों पर गुजरते रहेंगे और पीड़ित व्यक्ति झाडियों मे रहेंगे तथा उनके बीच स्वप्न की दीवार रहेगी, तब तक यह सभ्यता कृत्रिम ही बनी रहेगी।

नहीं, किन्तु प्राणोत्सर्ग के लिए बाध्य होनेवाले इस महाद्वीप का आज इच्छित स्वप्न है, उच्चस्तरीय संधियाँ, और इसका सबसे बड़ा नारा है "राष्ट्रीय साम्राज्य"।

जहाँ तक उन लोगो का प्रश्न है, जिन्हे फासिज्म का व्यक्तिगत अनुभव नहीं हुआ है—जैसे एंग्लो-सेक्सन देशो की सर्वसाधारण जनता—गणतंत्र शब्द का सही अर्थ उनके लिए बहुत कम महत्त्व रखता है। अपनी मूलभूत वैधानिक स्वतत्रताओं के प्रति–जो उन्हे प्राप्त है—वे उतने ही बेसुध हैं, जितना उस हवा की रचना के प्रति, जिसमे वे साँस लेते है।

और अगर आप इस पर विचार करें तो यह उदारमतवादी युग की शायद सर्वाधिक गौरवपूर्ण सफलता है। निश्चय ही, किसी सभ्य व्यक्ति के बहुत अच्छे सिले सूट के समान ही, सुव्यवस्थित गणतत्रीय राज्य का आदर्श भी है—किसी को यह दिखायी नहीं पडना चाहिए। क्योकि ब्रिटेन की सर्वसाधारण जनता की दृष्टि मे गेस्टापो तथा बंदी-शिविरो की लगभग वही यथार्थता है, जो लाचनेस के राक्षस की। कल्पना के इस ठोस अभाव के कारण क्रूरता-सम्बंधी प्रचार बिलकुल निर्बल है। मैंने स्वय इस ओर प्रयास किया है। जब कभी मैंने सैन्य-दलो को फासिस्ट वन्दी-शिविरो के बारे में कुछ कहा है, तब मेरे मन मे स्पष्ट रूप से यह भावना रही है कि जब तक दर्शको पर मेरा प्रभाव है, वे मेरी बात पर विश्वास करते हैं, किन्तु मेरे वहाँ से जाते ही वे उसे पिछली रात मे देखे किसी दुःस्वप्न के समान ही मान बैठेगे और प्रसन्नता-पूर्वक गाने लगेंगे—"उस बड़े भयानक भेड़िये से कौन डरता है?" इस प्रकार इस देश में ऐसे लोगो का बाहुल्य है, जिन्हे अभी तक तनिक कल्पना भी नहीं है कि फासिज्म का क्या अर्थ होता है। दूसरी ओर वे इससे भलीभाँति परिचित हैं कि जर्मन आक्रमण और जर्मन हवाई सेना का क्या अर्थ होता है। १९१४ के युद्ध की बात उन्हे भूली नहीं है और यहाँ उनके विचार उसी के साथ-साथ चलते हैं। अतः जो 'जर्मनों' और 'नाजियों' मे भेद बताने का प्रयास करते हैं, वे वस्तुतः एक हारी हुई लड़ाई लड़ रहे हैं। शीघ्र ही, उन्हें 'न्यू स्टेट्समैन' और 'नेशन' के स्तम्भो में सैनिक सम्मान प्रदान किया जानेवाला है और जैसे-जैसे निकट की विजय स्पष्ट होती जा रही है, वैसे-वैसे युद्ध की रूपरेखा स्वयं स्पष्ट होती जा रही है—जैसा कि टोरियों ने हमेशा कहा—यह राष्ट्रीय जीवन का युद्ध है—ऐसा युद्ध जिसमे सुरक्षा का आधार १९-वीं सदी के कुछ अनुदारीय आदर्श हैं। इस युद्ध की रूपरेखा वैसी

तरीके हैं, वे या तो बहुत ज्यादा चालाक बनने की कोशिश करते हैं या वे अबोध मूर्ख हैं।

२

गुमराह करने से मिलनेवाले तुच्छ आनद की प्राप्ति के लिए मै यह सब नहीं कह रहा हूँ। मेरे कहने का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि प्रारम्भ में जैसा दीखता था, उससे कहीं ज्यादा उलझा हुआ रूप यह युद्ध पकड़ता जा रहा है। हमे सही लोगों पर अपना ध्यान केद्रित करने की चेष्ट करनी चाहिए —जादुई सैनिको और प्रचार-पोस्टरों के योद्धाओं पर नहीं। सही लोगों को हम दो मुख्य श्रेणियो मे विभक्त कर सकते हैं—एक तो वे, जिन्होने नाजी-फासिस्ट तरीको को स्वय अनुभव किया है और दूसरे वे, जिन्होंने अनुभव नहीं किया है।

प्रथम श्रेणी मे यूरोपीय महाद्वीप के लोग हैं। वे जानते हैं कि उन्हें किस संकट का सामना करना है। वे इसके सम्बध मे उतने ही निकट से जानते हैं, जितना दुःखी व्यक्ति अपने दर्द के सम्बध मे जानता है। किंतु क्या वे इसका प्रतिकार भी जानते हैं? दर्द का अनुभव करने से ही क्या आपको डाक्टर का परिज्ञान भी प्राप्त हो जाता है? अंधेरे महाद्वीप से अभी हाल मे जो लोग भाग कर आये हैं, उनसे जितना ज्यादा आप बात करिये, उतना ही आपका सदेह बढ़ता जाता है।

चेकोस्लोविया-निवासियो, पोलैंड-वासियो, फ्रासीसियो, बेल्जियनो, डचों आदि के लिए, यह युद्ध शाब्दिक अर्थ मे जीवित रहने की लड़ाई है। वे अव्यावहारिक शब्द 'फासिज्म' से घृणा नही करते, बल्कि उन जर्मनों से घृणा करते हैं, जिन्होंने उनके घर नष्ट कर दिये और उनके मित्रों को मार डाला। वे अव्यावहारिक शब्द 'गणतंत्र' के लिए नही लड़ते है, बल्कि राष्ट्रीय स्वातत्र्य के ठोस ध्येय के लिए लड़ते हैं। अगर आप उनसे यूरोप के सयुक्त राज्यो के बारे मे बातें करें, तो वे आपकी ओर कनखियो से देखते हैं। हिटलर द्वारा हम पर लाये गये अभिशापो मे एक मुख्य अभिशाप यह है कि गलत ढग से यूरोप को एकरूप करने की कोशिश करके उसने राष्ट्र और देशभक्ति के नाम पर लड़ने-भिड़ने की भावना को ऐसा उभारा कि यूरोपीय विकास की घडी कम-से-कम पचास साल पीछे चली गयी। आप चाहे इसे पसद करे अथवा

ही हमें युद्ध मे ले आये। क्योकि धर्मयोद्धा, चाहे वे हजार सही होते, लोगों का विश्वास प्राप्त करने के लिए पराजित ही किये जाते—जहॉ कि सात्वना देनेवालों के पीछे, अतीत की उनकी सभी बड़ी भूलों के साथ, निश्चलता की ठोस शक्तियॉ थीं।

परिणामस्वरूप, शुरू से ही इस युद्ध का, सिर्फ कपटवादिता ही नहीं, आदर्शवादिता के रूप में भी, सुरक्षा के आधार पर मूल्याकन किया गया। हम कठोर, आक्रमक 'नयी व्यवस्था' के विरुद्ध १९-वी सदी की परिभाषा के अनुसार अनुदारीय मूल्यो की 'सुरक्षा' के लिए लड रहे थे और लड़ रहे हैं। और अभी हाल मे जब कि मित्र राष्ट्रों ने फौजी क्षेत्र मे आक्रमक रूप अपनाया भी है, तो उसकी आदर्शवादिता अभी भी अनुदार और सुरक्षात्मक है। यहॉ तक कि यह बात पहले की तुलना मे अधिक उच्चारित की जाती है। अमरीकी चुनाव और अन्य घटनाऍ यह अधिक स्पष्ट कर देती हैं कि अनुदारीय भाग का ही पलडा अधिकाधिक भारी होता जा रहा है—विजय जितनी करीब होती जा रही है, लगभग उसी परिमाण मे यह भी हो रहा है और लोग इस सम्बध में गहराई से सोचते प्रतीत नहीं होते। क्रिप्स के पीछे हटने के बजाय आठवी सैन्य पक्ति के आगे बढ़ने मे लोग अधिक रुचि ले रहे हैं।

इस प्रकार, अगर कुछ अप्रत्याशित नहीं घटता है, तो आने वाली विजय एक अनुदारीय विजय होगी और अंततः परिणाम होगा अनुदारीय शाति। यह यूरोप के अल्पसख्यको की समस्या का स्थायी समाधान नहीं देगी। पूॅजीवादी प्रणाली के अंतर्वर्ती रोग का यह कोई निदान नहीं प्रदान करेगी। मानव जाति के उत्थान मे यह कोई निर्णयात्मक कदम नहीं स्थापित करेगी। हॉ, महाद्वीप के लोगो के लिए यह बहुत बड़ी किन्तु अस्थायी विश्रान्ति अवश्य लायेगी। उन लाखो लोगो के लिए मुक्ति लायेगी, जिनका जीवन अदृष्ट से ग्रसित प्रतीत होता है और कम-से-कम स्वतत्रता, सुशीलता और सुरक्षा लायेगी। सक्षेप में, हिटलर के पहले की प्राचीन व्यवस्था का यह नवीन, सम्भवतः कुछ हद तक, उन्नत रूप होगा—२०-वी सदी के पूर्वार्ध का १९-वीं सदी का अनुलेख, जिसे इतिहास ने इतनी घृणित पद्धति मे लिखा है। और मैं आशा करता हूॅ तथा मेरा विश्वास है कि काल के इस भ्रमपूर्ण पेबन्द मे अगर अच्छी दस्तकारी दिखायी गयी, तो यह यूरोप को कम से-कम आगामी घातक डुबकी से स्वय को बचाने के लिए एक अवसर और सम्भवतः कुछ दशाब्दियो का समय तो जीवित रहने के लिए दे ही सकता है।

नहीं है, जैसा मैंने तथा मेरे वामपंथी मित्रों ने कहा था कि यूरोप में स्पेनिश ढाँचे पर यह एक क्रातिकारी गृह-युद्ध है।

ऐसा इसलिए नहीं है कि टोरी वामपंथियों से अधिक चालक हैं अथवा मि. चर्चिल के पास मि. एटली से अधिक दिमाग है, वरन् ऐसा इसलिए है कि सभी वर्गों के सर्वसाधारण लोगो मे अधिकाश अभी भी २०-वीं सदी के बजाय १९-वीं सदी के अनुरूप अधिक सोचते हैं। युद्धों के बारे मे उनकी धारणा अंतर्राष्ट्रीय सैन्य दल की अपेक्षा "चार्ज आव द' लाइट ब्रिगेड" से अधिक मेल खाती है। पिछले मतदान से ज्ञात हो गया कि मि. चर्चिल के प्रसिद्ध भाषण—"जो-कुछ हमारे पास है, हम उसे अपने अधिकार में ही रखेंगे"—के बाद ९१ प्रतिशत ब्रिटिश जनता ने मि. चर्चिल की नीति का ही समर्थन किया। हमे इस मामले मे स्पष्ट होना चाहिए और जहाँ हम अपने शस्त्रास्त्रो की विजय पर आनद मना रहे हैं, वहीं हमे अपने लक्ष्यो की पराजय को भी पहचानना चाहिए।

३

अब तक मैंने गैर-राजनीतिक बहुसख्यकों के बारे मे कहा है। लेकिन हमारे सम्बंध मे—सचेत अल्पसख्यको के सम्बंध में—जिन्होने एकरूपता और भाई-चारे पर आधारित समाजवादी यूरोप का स्वप्न देखा था और उसके लिए प्रयास भी किया था—क्या कहा जा सकता है? यह अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए कि हम अब कुछ बेवकूफों की तरह नजर आने लगे हैं और व्यक्तिगत रूप से मै अपने मित्रो का कराहना और बिलखना सुन-सुन कर परेशान होता जा रहा हूँ। इसके बजाय हमे तथ्यो का सामना करना चाहिए और देखना चाहिए कि हमारी स्थिति क्या है।

सभी महान् अंतर्राष्ट्रीय आदोलन असफल रहे हैं। दूसरा अतर्राष्ट्रीय आदोलन अपने उद्देश्य मे असफल रहा, जब सन् १९१४ में यह युद्ध रोक नहीं सका। तीसरे अतर्राष्ट्रीय आदोलन की असफलता उस वक्त प्रमाणित हो गयी, जब सन् १९३३ में यह हिटलर के शक्ति-अधिरोहण को नहीं रोक सका और रूस के विदेशी कार्यालय की एक शाखा बनकर रह गया। इस प्रकार नाजी-आतक के कारण हुआ अनुदारीय और प्रगतिशील शक्तियों का सुरक्षात्मक मेल, शुरू से ही अनुदारीय नेतृत्व मे रहा। धर्मयोद्धाओ ने नहीं, बल्कि हमें सात्वना देनेवाले

सामाजिक मार्गदर्शक; किंतु आज के अस्तव्यस्त रणक्षेत्र के लिए बहुत कम उपयोगी।

किंतु इस चित्र का एक अधिक आशाजनक पहलू भी है। पिछले पंद्रह वर्षों से मोर्चा लगा बख्तरबंद पहने वे योद्धा, जिनकी ढालों पर स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा लिखा है, सदा हारनेवाले पक्ष की ओर लड़ते आये हैं। शंघाई, एडिस अबाबा, मैड्रिड, वियेना, प्रेग—पराभवों की यह लम्बी शृंखला जारी रही—जब तक कि निरंतर हार के वातावरण में रहने की हमारी आदत न बन गयी—एक प्रकार की स्थायी दैवी व्यवस्था। अधिक मात्रा में ग्रहण करने पर पराजय एक भयंकर औषध है—यह एक व्यसन का रूप ले लेती है।

अब पहली बार ऐसा प्रतीत हो रहा है कि हम जीतनेवाले पक्ष की ओर रहेंगे। यद्यपि यह विजय उससे बहुत भिन्न होगी, जिसका हमने स्वप्न देखा था, फिर भी असाधारण परिवर्तन ला सकती है—हारने की आदत से हमारी मुक्ति। और एक बार अपने बख्तरबंद को आधुनिक बनाकर जीतने की आदत पड़ गयी, तो कौन जानता है, हम कहाँ जाकर रुकेंगे?

इसका अर्थ है, हम अब समझने लगे हैं कि यह युद्ध अंतिम प्रलय नहीं है, प्रकाश और अंधकार की शक्तियों के बीच यह अंतिम सग्राम नहीं है, बल्कि सम्भवतः राजनैतिक अथवा सामाजिक विप्लवों की परिपाटी का आरम्भ-मात्र है, जो हमारे पहले के सोचे हुए की तुलना मे इतिहास के कहीं अधिक काल तक फैला है—तब तक के लिए, जब तक नया विश्व जन्म नहीं ले लेता। उस वक्त तक हमारा काम होगा, सॉस लेने की जितनी जगह हमारे पास आ रही है, उसका सर्वोत्तम ढग से उपयोग करना—और प्रसगवश, इस १९-वीं सदी के अनुलेख के लिए, हमारे स्वय के जीवित रहने के लिए; उस प्रत्येक प्रातः की प्रशसा करना, जिस प्रातः जागने पर, हमारी खिड़की के नीचे गेस्टापो-सतरी न दिखायी दे। फ्रेन्च के विनाश के बाद भी जो जीवित रहे, उनमें से किसने दो साल पहले इसकी कल्पना की थी? कम-से-कम मैंने तो नहीं की थी।

४

मैं जानता हूँ कि जिसे आप "वामपंथी बुद्धिजीवी वर्ग" कहते हं, उसके सदस्य के लिए यह बहुत विनीत मत है और मेरे मित्र मुझे कोसेंगे और मुझ पर पत्थर भी फेंकेंगे। अधिक-से-अधिक ऐसा हो, तभी अच्छा है; क्योंकि उन्हे भी यह कम अथवा अधिक चैतन्य के साथ अवश्य अनुभव करना चाहिए कि हम लोगों ने स्वय को एक राजनैतिक शून्य मे पहुँचा दिया है—हम लोगों की स्थिति एक ऐसे सैन्य दल की तरह हो गयी है, जो अपनी रसद के साधनों से दूर है।

इस प्रगति-सग्राम की हमारी कल्पना कुछ और ही थी—वह यह कि समाज के भिन्न-भिन्न वर्ग स्वच्छ व सुव्यवस्थित मोर्चे पर लड़ रहे हैं—और हम सामाजिक आदोलनों के एक जटिल-तरल युद्ध में फँस गये हं, अस्थिर इकाइयॉ अपने सामाजिक सगठनों से अलग हो रही हैं, मजदूर-वर्ग के बहुत-से विभाग फासिस्टों का साथ दे रहे हैं, युवा टोरी-पीढी ट्रेड यूनियनों के वामपथियों, नौकरशाही तथा व्यवस्थापकों पर प्रभाव डाल कर स्वयं को महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक स्थानों पर जमा रही है। और हम वीरान भूमि मे खड़े हैं—जग लगे बख्तर पहने चकित योद्धाओं के समान! मार्क्स एजेल्स की उक्तियों की एक छोटी-सी पुस्तक ही हमारा एकमात्र पथप्रदर्शक है—पिछली सदी का सबसे सच्चा और गम्भीर

मोर्चा बनाने की राह देख रहा था, तब उस देश में रहने वाले लोगों की धारणा थी कि कोई चमत्कार होने पर ही हम इस अनर्थ से बचेंगे। जैसे कोई रोगी बड़ा आपरेशन होने के पहले भगवान को याद करता है, उसी प्रकार लोग प्रार्थना कर रहे थे—"भगवन्! इस सकट से बच गये, तो नये सिरे से जीवन बितायेंगे और वह जीवन कितना मनोहर होगा!"

सचमुच चमत्कार हुआ। शल्यक्रिया सफल हुई—रोगी अस्पताल से बाहर आया, लेकिन बाहर आने पर उसने क्या देखा? उसका मकान पहले की तरह गंदी गलियो मे है, उसका 'लेटरबाक्स' देनदारी के पर्चो (बिलों) से भरा पड़ा है, उसकी पत्नी पहले-जैसे कर्कश स्वर मे ही अपनी ऑखे गोल-गोल घुमा कर चीख रही है और उसकी बदसूरत सतान की नाक से दिन भर पानी बह रहा है। इस स्थिति में यदि दूसरे दिन से ही वह कुढने और कसमे खाने लगे, तो क्या वह अपने भाग्य के प्रति कृतघ्न होगा?

उत्तर अफ्रीका में की गयी भयंकर शल्यक्रिया के सफल हो जाने पर, मित्र राष्ट्रों के परिवारों मे, बिलों का इकठा होना, वह कर्कश स्वर और वे घूमने वाली ऑखे दीखने लगीं। समस्त संसार में कल राज्य करने के लिए निकले हुए राष्ट्रों का 'सद्भावना और सहयोग' के लिए अनुरोध करना निरर्थक और दिखावटी साबित हुआ। किसी भी सरकार को अपनी आर्थिक और सामाजिक शक्ति मे, जिस पर वह आधारित होती है—क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का कम अवसर मिलता है। विगत पचास वर्षो से यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि कोई समर्थ अंतर्राष्ट्रीय संगठन ही संसार की इस उलझन को दूर करने का प्रशस्त मार्ग खोज सकता है।

वर्तमान शताब्दी के आरभ में, विशेषकर दो महायुद्धो के समय, ऐसी आशा थी कि इस तरह का संघटन निर्मित होगा और वह राष्ट्रों के बीच होनेवाली स्पर्धा को रोकेगा। इंटरनेशनल लीग आव नेशन्स एवं दूसरे और तीसरे समाजवादी-आन्दोलन-जैसी संस्थाओं पर प्रगतिशील लोग, तथा चर्च अथवा आपसी भ्रातृभाव पर पुराणपथी लोग आस लगाये बैठे थे।

हमारे समय की यह विशेषता है कि विश्व-सस्था-जैसी कोटि के सारे ढॉचे विनष्ट हो गये हैं। इसी का यह प्रत्यक्ष परिणाम है कि हम अर्द्धसत्य को पूर्ण सत्य समझने लगे हैं। जब तक हम ज्ञान की कडवी गोली चबाने, निगलने और पचाने से दूर भागेंगे, तब तक हम कहॉ खड़े हैं, किस ओर बह रहे हैं, यह नही जान पायेंगे।

निराशावादियों का बन्धुभाव[१]

प्रस्तुत महायुद्ध मे हम अर्द्धसत्य के नाम पर पूर्ण असत्य से लड़ रहे हैं। विद्यमान परिस्थिति का वर्णन जिन विभिन्न स्वरूपो मे किया जाता है, उसमे यह वर्णन काफी सौम्य है। यदि इसे हम स्वीकार कर ले, तो वर्तमान काल की उलझन बहुत कुछ कम हो जायेगी, साथ ही भविष्य की निराशा भी काफी कम हो जायेगी।

सम्पूर्ण असत्य क्या है? नाजियों की नवीन समाज-रचना; क्योंकि उस समाज-रचना से मानव-जाति की विशिष्टता नष्ट होती है, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' को न्याय की घोषना मानने से 'नागरिक नियम' जगल का कानून बन जाता है। 'सारा महत्व वश मे निहित है' इस मंत्र से मानव समाज केवल प्राणियो में सीमित हो जाता है। मनुष्य को पशु मानने वाले इस तत्वज्ञान से किसी प्रकार का समझौता असम्भव है। इसे विना किसी शर्त के हार मान लेनी चाहिए।

दूसरी ओर, हम अर्द्धसत्य के वातावरण में रहते हैं। हम वंशाभिमान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करते हैं, फिर भी एंग्लो-सेक्सन देशों में वर्ण-वैषम्य नष्ट नहीं हुआ। हम लोकशाही के लिए सघर्ष करते हैं और तब भी हमारा सबसे शक्तिशाली मित्र तानाशाह होता है, जिसके राज्य मे चार स्वतंत्रताओं मे से कम-से-कम दो का पता ही नहीं रहता। परन्तु वर्तमान वातावरण का प्रभाव ऐसा सर्वव्यापी है कि उक्त बातें सत्य होने पर भी उनके कहने से एक उत्तेजना फैल जाती है।

कदाचित् कोई कहेगा—"इतनी गहराई में क्यों जाते हो? यह रणागण है—प्रार्थना-मन्दिर नहीं, जहाँ लोगो से उनके पाप-कृत्य स्वीकार कराये जायँ।" इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि विजय का क्षण ज्यों-ज्यों समीप आ रहा है, अतलान्तिक महासागर के दोनों ओर के लोग त्यों-त्यो अस्वस्थ हो रहे हैं। अस्वस्थता की यह वृत्ति सर्वत्र फैली हुई है।

डन्कर्क के बाद जब अमेरिका तटस्थ था और रूस पूर्व में हिटलर के नया

१ "द' न्यूयार्क टाइम्स मैगेजीन" में नवम्बर, १९४३ में प्रथम बार प्रकाशित।

इसका बड़ा आश्चर्य था और अब तक वह कम नहीं हुआ है।

समाजवाद ने ऐसे कितने ही अवसर खोये। यह उस कडी का एक भाग है। इससे पूर्व 'वीमर प्रजातंत्र' अस्तित्व मे आया, अमरीकी व्यापार मे मंदी आयी, फ्रास और स्पेन में लोकप्रिय मोर्चे की विजय हुई। दो महायुद्धो के मध्यवर्ती काल में मानव-जाति में नयी प्रणाली के लिए कैसी उत्कंठा जगी थी! लेकिन उसे पूर्ण करने मे उतनी ही बड़ी असफलता मिली। इस अपयश से फासिज्म ने लाभ उठाया। बार-बार समाजवादी आदोलन ने वह काम किया, जिसे फ्रासीसी 'भ्रष्ट' की संज्ञा देते हैं। इतिहास एक चंचल सुन्दरी है। उसका प्रियतम यदि उसे वश में करने का अवसर खो देता है, तो उसे कभी न पूरी की जानेवाली क्षति का सामना करना पड़ता है। कुछ दिनों बाद प्रणयाराधन का दिखावा-मात्र रह जाता है और अन्त मे यदि वह इतिहास-बाला अचानक उसके गले से लग जाय, तो वह बूढा प्रियतम बुरी तरह घबरा जाता है। ब्रिटेन के मार्क्सवादी प्रधानमन्त्री मि. एटली की ही कल्पना कीजिये।

ऐसा लगता है, सजीव सृष्टि की तरह राजनीतिक आन्दोलन के भी कुछ नियम होने चाहिए। ये आन्दोलन बढ़ते हैं और बढ़ते-बढते परिपक्व अवस्था पर पहुँचते ही यदि इन्होने सत्ता प्राप्त न की, तो सूख जाते हैं। इस सदी में विश्व-आन्दोलनो की यही दशा हुई। 'लीग आव नेशन्स' क्षय से मर गया। अधिकृत धार्मिक संस्थाएँ राजनीतिक लकवा की शिकार हुई। द्वितीय समाजवादी आन्दोलन की धमनियाँ कठोर पड़ गयी और तृतीय समाजवादी आन्दोलन सड़ गया।

इस युग में मजदूरो की शेष शक्ति का प्रतीक है, 'ट्रेड यूनियन'। उन सघों का बडा महत्त्व है। उनका प्रत्यक्ष कार्य भी बड़ा शक्तिपूर्ण है। उनके मूल्य को कम ऑकना मेरा उद्देश्य नहीं, परन्तु वे सस्थाएँ आर्थिक सुरक्षा का काम कर सकती हैं—रचनात्मक राजनीतिक शक्ति का नहीं।

हमारे समय मे "अखिल विश्ववाद" की असफलता कोई क्षणिक घटना नहीं है। पिछली शताब्दी मे उदाग्मतवादी और समाजवादी आन्दोलन की जो कार्य पद्धति थी, उसकी दुर्बलता इससे सिद्ध होती है। "किसी भी आन्दोलन मे चढ़ाव-उतार रहेगे ही"—इस प्रकार इस असफलता का समर्थन करने का अर्थ है, आत्मवंचना। हम किसी पहाड़ी रेल में यात्रा नहीं कर रहे हैं, हम उस सॅकरी गली से गुजर रहे हैं, जिसका दूसरा सिरा बन्द है। वास्तविक नवीन समाज-रचना से बीस वर्ष पूर्व हम जितने दूर थे, आज उससे अधिक दूर हैं।

मुझ-जैसे गृहविहीन वामपथी आज निर्वासित बन गये हैं। स्तालिन के अनुयायी इन्हे 'ट्राट्स्कीवादी' कहते हैं, ट्राट्स्कीवादी 'साम्राज्यवादी' कहकर पुकारते हैं और साम्राज्यवादी, 'खूनी साम्यवादी' का नाम देते हैं। आज हम गृहविहीन वामपंथियो के तत्त्वज्ञान का दिवाला निकल गया है और हमारी दृष्टि निराशावादी बन गयी है। कम्यूनिस्टों की कामिन्टर्न सस्था का शव जब विकृत स्थिति मे सड़ने लगा, तो उसे सरकारी तौर पर दफनाया गया। मि. लिविस का राष्ट्रपति रूजवेल्ट के साथ शतरज का उलझा हुआ खेल अमरीकी मजदूर आदोलन का एक साधारण स्मारक-मात्र था। रूस मे पहले की भाँति परम्परा के चक्र घूमने लगे—वहाँ 'पितृभूमि' की जय-जयकार होने लगी। सनातन चर्च और कैडेट स्कूल के अच्छे दिन आये। इंग्लैण्ड के मजदूर-दल ने अपने चेहरे से समाजवाद का जर्जरित आवरण भी हटा दिया और नाजियों के अत्याचारों के लिए समस्त जर्मन जनता को—यहाँ तक कि उन एक करोड़ तीस लाख मजदूरों को भी, जिन्होंने पिछले चुनाव मे नाजियों के विरुद्ध मत दिया था—सामूहिक रूप में उत्तरदायी माना।

इंग्लैण्ड मे समाजवाद आने की यदि कभी संभावना थी भी, तो वह डकर्क से तोब्रुक के पतन के बीच के काल में थी। वहाँ की सरकार की युद्ध-नीति के विरुद्ध जनता का असंतोष उस वक्त पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। दस-बारह उपचुनावों मे सरकारी दल की पराजय भी हुई थी। सरकार को देश की सभी व्यक्तिगत सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण करने की सत्ता मिली हुई थी। उस समय केवल प्रशासकीय दबाव से 'राजकीय समाजवाद' की स्थापना हो गयी होती और उसके लिए राज्यक्राति या गृह-युद्ध की नौबत नहीं आती।

फ्रास मे बड़े-बड़े व्यापारियों के सामने यह समस्या थी कि 'हिटलर अथवा लोकप्रिय मोर्चा' मे किसे स्वीकार किया जाये। उन्होंने हिटलर के पक्ष में फैसला किया। लेकिन इग्लैण्ड मे स्थिति विपरीत थी। वहाँ का शासक-वर्ग नाजियो की अधीनता स्वीकार करने के बजाय साम्यवादी इग्लैण्ड में रहने को तैयार था। कुछ ही लोग इसके अपवाद थे और दिन ब-दिन वे भी कम हो रहे थे। इंग्लैण्ड और फ्रास के शासकों की मनोवृत्तियों मे पाये जानेवाले इस अन्तर का ऐतिहासिक महत्त्व है। यह इंग्लैण्ड की कठिन परीक्षा थी कि उसमें जीवित रहने की क्षमता है अथवा नहीं। परन्तु वहाँ के मजदूर-वर्ग में इस अवसर से लाभ उठाने की उतनी राजनीतिक परिपक्वता न थी। डंकर्क से सिंगापुर तक के सकट के बावजूद पूँजीवाद सुरक्षित रहा, बुद्धिमान टोरियों को

निश्चित है कि हक्सले ने जिस 'वीर नवयुग' का हमे डर दिखाया था, वैसा वह नहीं होगा। हैज़े का टीका लगवाने से जिस प्रकार हैजा होने का भय दूर हो जाता है, उसी प्रकार हिटलर ने घोर तानाशाही युग के जन्म का भय नष्ट कर दिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह उसका एक महान् कार्य है। मै यह नहीं कहता कि इस मध्यकाल की बची हुई दशाब्दियो में संसार के दूसरे भाग मे हिटलर-जैसे प्रयत्न न किये जायेगे, परन्तु वे छिटपुट होगे—मरणोन्मुख युग के अन्तकाल की वेदना की भाँति।

नवीन युग में विश्व की क्या आकांक्षा होगी, इसे जानने के लिए हमें इतिहास के पन्ने उलटने होगे। इससे अतीत की सामाजिक जागृति के सीढियो के समान विभिन्न स्तर दिखायी देंगे। धर्म-युद्धो का युग बीता और मानव की चेतना पर धर्म-निरपेक्ष राजनीति का प्रभुत्व हुआ। पूँजीवादी राजनीति समाप्त हुई और आर्थिक शक्ति को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। इसी प्रकार आर्थिक जीवन का संघर्ष भी शीघ्र ही मिटेगा और नये नीति-विचारो के नवयुग का उदय होगा। बड़े-बड़े सघर्ष अपने स्तर पर नहीं, उससे उच्च स्तर पर समाप्त होते हैं। 'सेकेंड और थर्ड इंटरनेशनल' की प्रगति रुक गयी, क्योंकि ये संस्थाएँ केवल आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवाद से लड़ती रहीं—नैतिक स्तर पर वे नहीं चल सकीं। आज उन नैतिक मूल्यों का, आध्यात्मिक वातावरण का, हमारे मन मे आकर्षण है।

उच्च ऐतिहासिक स्तर से देखने पर पुराने वादविवाद क्षुद्र प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है, उनमें कोई अर्थ नहीं था। इसके विपरीत निम्न स्तर से बाद के काल के वास्तविक तत्त्वो के बारे में बताना दुष्कर है। ऐसे प्रयत्न केवल रहस्यपूर्ण कला-अनुराग तक ले जाते हैं, बस! हम इतना ही कह सकते हैं कि इस नये आन्दोलन में बुद्धिवाद और अध्यात्मवाद का अव्यवस्थित सन्तुलन पुनः सँभल जायेगा और आडेन के शब्दों मे—"क्षीण या नष्ट इच्छा-शक्ति जागृत और संगठित होगी तथा धरती पर बिखर जायेगी।" लेकिन अभी हम मध्य-काल में ही रह रहे हैं।

जो लोग स्वभावतः आशावादी हैं, वे परिस्थिति का सामना कर सकते हैं और अनुमानित भविष्य भी बता सकते हैं। लेकिन अन्त में उनके माथे निराशा ही आ बैठती है। जो स्वभाव से निराशावादी हैं, वे अर्द्ध-सत्य की धुन मे पड़े रहते हैं। आगामी १०-२० साल कष्टपूर्ण रहेंगे। ऐतिहासिक लहर मे जो एक खोखलापन होता है, उसी मे हम रहेंगे। तो क्या इसका यह अर्थ है कि हम हाथ-पर-हाथ धरे भाग्य के विश्वास पर योग्य समय की प्रतीक्षा मे बैठे रहे?

आवागमन के साधन जिस वेग से दौड़ते हैं, उसी वेग से हमारी भावना और विचार दौड़ने चाहिए। लेकिन इससे भी हम बहुत दूर हैं।

हमारी समस्त युद्धोत्तर-योजनाएँ एक सत्ता-केन्द्र से दूसरी ओर जाने के लिए बनाये गये अस्थायी पुल के समान होती हैं। आने वाले दस-बीस बरस किसी तरह गुज़र जायें, इस उद्देश्य से किये गये ये प्रयत्न अर्द्ध-प्रामाणिक है तथा अर्द्ध-आस्था के प्रतीक हैं। दीर्घकालीन योजना बनाने के बजाय हम अस्थायी, क्षणिक अर्द्ध-सत्य के मध्य-काल और गोधूलिकालीन सक्रमणावस्था की ऐसी-वैसी योजना बनाने मे व्यस्त हैं। और, इसमे जो एक बड़ा खतरा है, वह यह कि कच्चे पुल एकदम ढह जायेंगे और हमारे अग्रगणी नेता पुनः विनाश की ओर अधे की तरह चलने लगेंगे।

मैं मानता हूँ कि यह समूचा चित्र निराशावादी है। लेकिन मेरा विश्वास है कि यह वास्तविकता पर आधारित है। इसके आधार पर मैं भविष्य के लिए जो लिख रहा हूँ, वह मेरा अपना व्यक्तिगत मत है, शायद किसी को यह एक सनक ही लगे। लेकिन मै जानता हूँ, बहुत-से दूसरे लोगों के भीतर भी यही भावनाएँ अस्पष्ट रूप मे काम कर रही हैं। मै उन्हीं से यह कह रहा हूँ।

किसी सस्कृति की परम्परागत विचार शृखला जब टूटती है, तो थोड़े समय के लिए अंधाधुध मच जाता है। ऐसे अराजकता के काल अल्पायु ही होते हैं। आज का मध्य-काल भी जल्द ही समाप्त होगा और पूरे ससार मे नयी प्रवृत्ति और नयी शक्ति का उदय होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। ईसाई धर्म के आरम्भिक काल मे या विद्या के पुनरुज्जीवन-काल मे ऐसी ही वृत्ति और शक्ति जागृत हुई थी। अब भी वे प्रकट होगी और हमारे इस ऐतिहासिक युग का अन्त करेगी, जो युग गेलीलियो, न्यूटन और कोलम्बस से शुरू हुआ है। यह मानव-जाति की प्रौढावस्था का काल, वैज्ञानिक सिद्धात और अकबद्ध नाप-तौल का काल, मूल्यों के उपयोग और उत्साह पर बुद्धि के प्रभुत्व का काल है।

इस युग ने जैसे महान् यश प्राप्त किया है, उसी प्रकार उनके अतकाल की वेदना भी भयंकर है, लेकिन वह दीर्घकाल तक नहीं टिकेगी। ज्यो-ज्यों उस वेदना की आकृतियाँ बढ़ती जाती है और उनका क्षेत्र विस्तृत होता है, त्यो-त्यों अन्तकाल समीप आता दिखायी देता है। इसके लिए एक या दो महायुद्ध हो सकते हैं, दस-बारह नहीं। अब यह प्रश्न कुछ दशाब्दियों का है, शताब्दियों का नहीं।

इस काल के पश्चात् जो नया युग आयेगा, वह कैसा होगा? एक बात

सदियों में हमने नैतिक नियंत्रण की ओर अधिक उपेक्षा दिखायी, जिसने घोर तानाशाही के एंजिन को पागलों की तरह दौड़ा दिया। सीधी भाषा में इसका अर्थ है कि राजनैतिक अधिकारी (कमिसार) अथवा प्रतिक्रियावादी में से किसी एक को मुझे चुनना हो, तो मैं वैह्चिक प्रतिक्रियावादी का चुनाव करूँगा। वह मुझे उपद्रवी मानेगा और कल्पना-शक्ति के अभाव में धक्के मारेगा। लेकिन कल्पनाशील कमिसार यह मालूम होने पर कि मैं विरोधी मत रखता हूँ, नम्रतापूर्वक मुझे गोली मार देगा। अन्य ऐतिहासिक स्थितियों में आगे चलकर प्रतिक्रियावादी, प्रगति का पुनः प्रमुख शत्रु हो जा सकता है, परन्तु आने वाले दस-बीस वर्षों में उसकी सनातन निष्ठा दिखावटी होने पर भी वह संघर्ष टालने में उपयोगी होगा।

१९१७ में कल्पनालोक हाथ में आया प्रतीत हुआ था। आज उसकी सम्भावना अन्तरिम काल तक के लिए स्थगित है—तब तक हमें हरियाली का निर्माण करना चाहिए।

मेरा विश्वास इसके विपरीत है। जो लोग निराशावादी (मेरा मतलब उनसे है, जो थोड़े समय के लिए निराशावादी होते हैं) बने हैं, वे अपना कार्यशील भ्रातृभावपूर्ण संगठन बनायें, आज इसी की आवश्यकता है। लोग ससार के सम्मुख खड़ी समस्या के तात्कालिक मौलिक समाधान की बात नहीं सोचेंगे, क्योंकि उन्हे मालूम है कि लहर के खोखलेपन में रहकर इन समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता। समाज पर शल्य-क्रिया करने के लिए वे किसी सर्जन की तरह अपनी छुरी तेज नहीं करेंगे। कारण उन्हे मालूम है कि उनके औजार दूषित हैं। वे अपनी ऑख खुली रखकर अपलक जागतिक आन्दोलन के प्रथम चिह्नों के प्रकट होने के समय की प्रतीक्षा करेगे, और जब वे प्रकट होगे, तब वे उसके जन्म मे हाथ बटायेंगे। यदि उनके जीवनकाल में उस आन्दोलन का जन्म न हुआ, तो भी वे निराश न होंगे। वे ऐसी अपेक्षा न रखेंगे कि वर्ग-विशेष से ही यह आन्दोलन उठेगा, लेकिन निश्चय ही, दरिद्र और पीड़ित वर्गो मे ही इसका उदय होगा। तब तक मध्यकालरूपी रेगिस्तान मे हरियाली का निर्माण करना ही उनका लक्ष्य होगा।

हरियाली छोटी या बड़ी हो सकती है। या तो सिलोने की महान् पुस्तक "द' सीड बिनीथ द' स्नो" के अनुसार केवल कुछ मित्रों का वह मंडल होगा, अथवा राष्ट्रव्यापी संगठन होगा। इटली, स्पेन, नार्वे, आदि युद्ध-क्षेत्र के किनारे पर बसे राष्ट्र इसमे सम्मिलित होंगे। यह सम्भव है कि आगे महान् राष्ट्रो की टक्कर के समय यह हरियाली जीवित बची रहे। सामाजिक तथा आर्थिक बोझ से दब जाने पर भी युद्धप्रिय राष्ट्रों में सहिष्णुता और प्राचीन काल की मानवता का निर्माण करने मे ये सस्थाएँ समर्थ होंगी। गत तीन सौ वर्षों के अन्दर स्विट्जरलैण्ड इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। महान् राष्ट्रों मे भी ऐसी अन्तर्गत सस्थाओं की स्थापना कर के तप्त वातावरण को शान्त करने का काम अशक्य नहीं। तथाकथित तमोयुग मे भी, रोमन साम्राज्य का अन्त और पुनरुज्जीवन के उदय के मध्यकाल मे, ऐसी हरियाली ने सभ्यता कायम रखी थी। उसी की बदौलत धार्मिक मठों और विश्वविद्यालयो को सेना नष्ट नहीं कर सकी।

संसार के लिए इस प्रकार की हरियाली का निर्माण करने की सामर्थ्य इग्लैण्ड मे सर्वाधिक है। उसकी परम्परा और समाज-व्यवस्था दोनों ही इसके योग्य हैं। ये मध्यकाल, इतिहास की ढलान ही हैं। हमारी यात्रा के इस स्थान पर, जहाँ रेलवे-एंजिन की गति की अपेक्षा उसके ब्रेक का अधिक महत्त्व है, अब गति बढाने का नहीं, वरन् उसे नियन्त्रित करने का प्रश्न है। पिछली

"मैं एक तुच्छ पाखंडी हूँ, आप मेरे मुँह पर थूकिए।" ऐसी तख्ती गले में बाँध कर विएना के रास्ते में एक आदमी का जुलूस निकाला गया था। फिर वह अमरीका की भाग्य-भूमि पर आ पहुँचा, पर यहाँ उसे क्या अनुभव हुआ? उसे एक होटल से निकाल बाहर किया गया। उस होटल में केवल अमरीकियो का ही प्रवेश था। उसे इस विषमता की कोई कल्पना भी नहीं थी। लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार में अमरीका की स्वतंत्रता भी सीमित है, देख, निराश होकर, उस आदमी ने आत्म-हत्या कर ली।

यदि मै कहूँ कि लोकतत्र और फासिज्म में बहुत थोडा अन्तर है, तो आप इसका विरोध करेंगे, और समाचारपत्र-स्वातंत्र्य, जनता द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि, आदि वैधानिक सुरक्षाओ का उल्लेख करेंगे। निश्चय ही, यह सत्य है। "सब चीज सही है"—यह सिद्ध करने के लिए जो सदा इस तर्क का सहारा लेते हैं, उनकी अपेक्षा, जिसने तानाशाही राज्यव्यवस्था मे दिन काटे हैं, वह लोकतान्त्रिक सस्थाओ की महत्ता अधिक जानता है। लेकिन कानून के शब्द और उनके अमल के उत्साह का अन्तर वह पहचान सकता है। किसी व्यक्ति को ऐसी निरर्थक वार्त्ता करने मे शर्म आयेगी। हिटलर की भी एक ससद थी, जो कि सिद्धान्ततः कभी भी उसे पदच्युत कर सकती थी। हंगरी मे हार्थी के शासन-काल मे मजदूर-दल वैधानिक करार दिया गया था और काफी दिनों तक उसे अपना दैनिक पत्र निकालने की अनुमति थी। विश्व के सर्वाधिक लोक-तंत्रीय विधान—१९३६ के सोवियत विधान—मे भी विरोधी-पक्ष पर प्रति-बन्ध है। स्पष्ट ही, वहाँ एक ही पक्ष का अस्तित्व है।

दूसरे शब्दो मे, कोई वैधानिक सुरक्षाओ पर निर्भर नहीं रह सकता और आत्मसन्तोष के लिए उनका सहारा नहीं ले सकता। हमारी जीवन-पद्धति से फासिस्टों का रहन-सहन बिलकुल भिन्न है। फासिज्म को सदा हम एक ठोस रूप मे सोचते हैं, परन्तु एक गैस के साथ उसकी तुलना करना अधिक उपयुक्त है। गैस किसी भी आकार के पात्र मे रखी जा सकती है और एक बार आप को उसकी थोड़ी-सी दुर्गन्ध मे भी रहने की आदत हो गयी, तो आपका सारा जीवन विषमय बन जाने पर भी आपको खटकेगा नहीं। भय इस बात का नहीं है कि किसी दिन सवेरे उठने पर समस्त ससार फासिस्ट बना दिखायी देगा। ऐसा होता, तो उसे टालना आसान था। खतरे की बात तो यह है कि पिछली रात जब हम सोने गये, तभी ससार हमारी बेखबरी में फासिस्ट बनता जा रहा था।

राजा मर गया...

१

"राजा मर गया, राजपद अमर रहे—" फ्रासीसी सभासद चिल्लाया करते थे, जब चेचक ने राजा को बुरी तरह रुग्ण कर रखा था। आगामी कुछ वर्षो मे इसमे इस परिवर्तन की सम्भावना है—"हिटलर मर गया, फासिज्म का नाश हो"—यह हमे भलीभॉति अपने दिमाग मे बैठा लेना चाहिए, नहीं तो हमें खेद-सहित विस्मित होना पडेगा और हमारी अवस्था उस आदमी-जैसी होगी, जो सिंह के मुँह मे अपना सिर रख कर सोया है। फासिज्म का पराभव केवल रण-क्षेत्र में नहीं हो सकता, यह पराभव जनता की विचार-भूमि और भावना-भूमि पर होना चाहिए, क्योकि फासिज्म एक पुरातन मनोवृत्ति का ही नया नाम है। जहॉ जहॉ 'काला आदमी' और 'सुअर'-जैसी गालियॉ दी जाती है, जहॉ-जहॉ नागरिको के सुखी जीवन को और राजनीतिक ध्येय को तुच्छ माना जाता है, जहॉ-जहॉ 'वेतन-वृद्धि' कहते ही 'साम्यवाद का लाल सकट' कह कर कानूनी तौर पर की जाने वाली हडताल मे भी हडताल करने वालो पर गोलियॉ चलायी जाती हैं, वहीं फासिज्म है, आप की ऑखों के सामने ही। उसे रगीन फिल्म (टेक्निकलर) में देखने के लिए सिनेमागृह की ओर जाने की जरूरत नहीं।

स्वतंत्रता मात्रा के आधार पर कम-अधिक होती है। एकान्त कमरे मे बन्द किया गया कैदी उस कैदी की अपेक्षा कम स्वतत्र होता है, जिसे व्यायाम करने की छूट दी गयी हो। नजरबन्द-शिविर जेलखाने की तुलना मे स्वर्ग है—नन्दनवन है। नाजी जर्मनी की तुलना मे फासिस्ट इटली स्वतंत्र देश था, परन्तु फ्रास की तुलना मे परतत्र। परन्तु फ्रास मे कितनी स्वतत्रता थी? वहॉं के लोकतत्र ने स्त्रियों को मताधिकार से भी वचित कर रखा था। वहॉ की स्त्रियों को पति की उदार अनुमति के बिना बैंक मे खाता खोलने का भी अधिकार नहीं था। अमरीकी लोगों को यह परिस्थिति बिलकुल जंगली लगती है और ससार मे हम सर्वाधिक स्वतत्र देश मे रहते हैं, उनकी यह भावना दृढ होती जाती है।

पर डाल देता है। केवल पोलैण्ड-निवासी ही बुरे विद्यार्थी थे, ऐसी बात नहीं। ध्वस्त हुए यूरोप के अधिकाश भागों में देशाभिमान और बदला लेने की भावना बढ रही थी। पराजित और विमुक्त दोनो देशो मे प्रकट या अप्रकट रूप मे गुरिल्ला और प्रतिकारी संगठनो मे परस्पर लड़ाई चल रही थी।

कुछ भी हो, जिन्होने यातनाएँ सही और जो अछूते बच गये, उनमे अन्तर तो है ही। यूरोप में लाखो लोगो को अकाल, आतंक और अपमान की यातनाएँ भुगतनी पडी। उनमे से कुछ ही लोगों को क्यों न हो, नयी जानकारी हुई। उन्होने एक-दो नयी बाते सीखी। इस दिवालिये महादेश की सम्पत्ति तथा दृढ़ आशा के रूप में केवल वे ही लोग बच गये थे। उन्हे किसी विशेष दल या गुट से सम्बन्धित नहीं समझना चाहिये। यद्यपि वाम-पक्षीय गुटों मे उनकी संख्या दक्षिणपक्षी गुटों से अधिक है—तथापि अभी भी समान उद्देश्यवाले व्यक्तियो से वे अधिक नहीं हैं और उन पर कुछ समय के लिए पुराने दलों या पूर्व-पश्चिम के नये सम्बन्धो की छाप पडने की सम्भावना है। अभी भी उनके अल्पसख्यक होने से कुछ नहीं बिगडता। इतिहास मे जो भी प्रगति हुई है, वह हमेशा जाग्रत अल्पसख्यको ने ही की है। अपने ज्ञान की कलम से सुप्त समाज को जाग्रत कर उसे यह सिखाने मे जब वे सफल हो जाते हैं कि उसका कल्याण किसमे है, तभी समाज की प्रगति होती है। ये अल्पसख्य न होते, तो फ्रास की क्राति के समय न बेस्टाइल पर हमला होता, और न अमरीका कभी संगठित होता। इतिहास से पाठ सीखने वाले अथवा उनका सही अर्थ समझने वाले ही अच्छे शिष्य होते हैं।

ऐसा अल्पसख्यक समाज निश्चय ही हर जगह होता है, अमरीका के समान ही नार्वे, फ्रास मे भी; किन्तु जिन लोगों ने यातनाएँ सही हैं और अनुभव प्राप्त किये हैं, उनसे यातनाएँ न सहनेवालो का अन्तर यहीं लक्षित होता है। यातनाएँ न भुगतने वालो मे बुद्धिवादी वर्ग छोटा और पृथक् होता है। वे आगामी घटनाओं की चर्चा करते हैं—अपने ध्येय के आधार पर, अनुभव से नहीं। वे गला फाडकर चीखेंगे, पर सर्वसाधारण की ओर से उन्हे उत्तर नहीं मिलेगा; क्योकि उन-जैसे अनुभव सर्वसाधारण के नहीं होते। फलस्वरूप सर्वसाधारण की धारणा उनकी धारणा से मेल नहीं खाती। सर्वसाधारण ध्येय-वादी मनुष्य की कल्पनाशक्ति के अभाव मे यह समझ नहीं पाता कि आखिर वे किस विषय मे इतने उत्तेजित हो रहे हैं।

सर्वसाधारण का समर्थन न मिलने पर उन भविष्यवादी बुद्धिवादियों पर

मैं चाहता हूँ कि आप इन्हे पेशेवर भविष्य-वक्ता की बढ़ाई-चढाई बाते न मान ले। दोनो महायुद्धों के समय यूरोप में जो ऐसे भविष्य-वक्ता हुए, उन्होने अग्रिम सूचना दी थी—इसलिए नही कि वे निराशावादी अथवा आनन्द फैलाने वाले थे अथवा "मैने कहा था न?" कहकर आनन्दानुभूति प्राप्त करने वाले थे। अब उनमे से बहुत कम जीवित होंगे। उन्होने आप को सावधान रहने का सकेत दिया, इसका अर्थ यह नहीं कि वे स्वप्न मे विचरने वाले थे, परन्तु उन्हें यथार्थता का ज्ञान था, और वे स्वय कष्टों के भुक्तभोगी थे। समाजवादियों ने आपको हिटलर के विरुद्ध सचेत किया था, क्योंकि वे डकाऊ और ओरेनियन वर्ग से परिचित थे। फ्रेंच लोगों ने अपनी सुरक्षा की माँग की थी, क्योकि वे जानते थे कि आक्रमण का क्या अर्थ होता है। तीन बड़ों (या चार या पॉच) मे सत्ता के लोभ मे राजनीतिक गठबंधन होने लगे, तभी छोटे-छोटे देशों ने इस राजनीतिक दॉव-पेच के विरुद्ध चेतावनी दी, क्योंकि वे जानते थे कि इसकी कीमत उन्ही को चुकानी पडेगी। जातिवाद के विरुद्ध यहूदियों ने आपको सचेत किया था, क्योंकि उन्हे यह मालूम था, आज जो नाम उन्हे दिया जा रहा है, उसकी समाप्ति पत्थर से मार-मार कर उनके प्राण लेने और वध करने मे होगी—चाहे वह कलकत्ता मे हो, वार्सा मे हो या डेट्राइट मे हो। और आज, जिन लोगो ने यह देखा है कि फासिज्म किस प्रकार बढता है और जो उसके प्रारम्भिक लक्षणो से परिचित है, वे चेचक को मुहॉसा समझने की आपकी भूल की ओर सकेत कर रहे हें। केवल कष्टो का भोगना ही बुद्धि को जन्म नहीं देता। इसलिए जब हम अपने और आपके अनुभवों के बीच का अन्तर बताते हैं, तब ऐसा मत मान बैठिये कि हम अहंकारी है, या बुजुर्ग होने का दावा कर रहे हे। प्रत्येक शहीद साधु नहीं होता और बहुधा वह मूर्ख की तरह व्यवहार करता है। यहूदियो के बाद पोलैण्ड-निवासियो ने बुरी यातनाएँ सहीं। शत्रु ने निर्दयतापूर्वक उनका वध किया और मित्रों ने उनके सात विश्वासघात किया। लेकिन आज वे ही अपनी स्थिति किस प्रकार शोचनीय बना रहे हैं, इस पर गौर कीजिये। लगता है, अब सीखने की योग्यता ही उनमे नहीं है। लेकिन यह कहना अधिक उचित होगा कि इतिहास एक अयोग्य अध्यापक हे। वह पहले तो शिष्य को सजा देता है और फिर सजा का कारण खोजने की जिम्मेदारी भी उसी शिष्य

झगड़ो को सुनकर आप यह मत कहिये कि ये लोग पहले-जैसे ही मूर्ख है या यातनाएँ सहने पर भी उनमें कोई अंतर नही आया। निश्चय ही, उनमे परिवर्तन हुआ है, जो उचित समय पर प्रकट होगा। लेकिन इस राजनीतिक खीचातानी मे उन्हे रास्ता मिलना चाहिए। पहले भी उन्हे रास्ता नहीं मिला और यदि अब भी न मिलेगा, तो उनके पास कम-से-कम कुछ समय के लिए पागल बनने का बहाना तो है ही।

लेकिन आपके पास ऐसा कोई बहाना नहीं। आप बडे राष्ट्रो की पडोस की पकड़ में नहीं और वे आप को खोने की कीमत पर आपके भविष्य का फैसला नहीं करते। आगामी कुछ सदियो तक व्हेनेजुएला की तरह के आक्रमण की सम्भावना भी नहीं है। इसी प्रकार आप के बीच राष्ट्रीय क्रान्तिकारी दल के नाम आन्दोलन आरम्भ करा कर उसे आर्थिक सहायता देने के लिए कनाडा की सरकार भी आगे नहीं आयेगी। आपका राष्ट्र ससार में सर्वाधिक सम्पन्न है, आपने एक ही पीढी मे दो बार यूरोप को पराजय से बचाया है। पहली बार के बाद आप स्वयं के और फ्रासीसी कब्रिस्तानो में अपने आदमियो के बलिदान के नैतिक महत्त्व को छीन लेते हैं। 'इस बार भी क्या आप वैसा ही करने जा रहे हैं?' यूरोप के लोग अपने-आप से यह प्रश्न पूछ रहे हैं।

३

स्वातंत्र्य न्यूनाधिक परिमाण मे होता है। इसी से जब वह धीरे-धीरे चुपचाप घटता जाता है, तो अनुभवी लोगों को इस स्वातंत्र्य-हानि का ज्ञान ही नहीं होता। यह बात पश्चिमी संस्कृति पर भी लागू होती है। इतिहास में रोम के विनाश-जैसे जो महा अनर्थ होते है, वे एक ही क्षण के प्रचण्ड उत्पात से नहीं होते। परन्तु बर्फ पर धीरे-धीरे फिसलने की तरह इसकी प्रक्रिया सदियो अथवा दशाब्दियों तक चलती है।

सचमुच मानव-स्वभाव का एक विलक्षण नियम है कि उसे महान् अनर्थ, क्षुद्र और साधारण-सी घटना प्रतीत होती है। क्षय कितना बड़ा रोग है, लेकिन उसके आरम्भिक लक्षण बड़ी खॉसी-जैसे भयानक नहीं होते। मानसिक विकृति से मनुष्य कितना क्षुब्ध होता है, लेकिन उनके प्रथम लक्षण स्नायु-दौर्बल्य की तुलना में बडे मामूली होते हैं। युद्ध में जब विश्रान्ति का समय आता है, तो आकाश और खेत कितने स्वप्निल, प्रशान्त और सुरक्षित लगते हैं, कोई भी

इसका विपरीत परिणाम होता है। वे और अधिक दूर रहने लगते हैं। उनके स्वभाव में कडवापन आ जाता है और परिणामतः वे साधारण मनुष्य के विचारो से दूर हो जाते है। अठारहवी सदी मे अगर फ्रास के किसान यातनाओ और भुखमरी के शिकार नहीं हुए होते, तो डेन्टन और सेन्ट जस्ट को अपनी सारी जिन्दगी 'न्यू रिपब्लिक' अथवा 'पार्टिजन रिव्यू' के समान ही किसी पत्र के सम्पादन मे बितानी पडती। स्पष्ट ही, यूरोप की परिस्थिति और वातावरण भिन्न हैं। वहाँ के लोग कम-से-कम, अनुभवहीनता और राक्षसी अज्ञान से मुक्त हो चुके हैं, जो औसत अमरीकी सैनिक या दूरस्थ अधिकारी की विशेषता है। फ्रास या बेल्जियम के देहातो मे अमरीकी टैंक जाने पर वहाँ लोग उसके आस-पास कैसे जमा होते हैं और चाकलेट के टुकडे के लिए हाथ पसारते है अथवा टैंक पर फूल बरसाते हैं, ये चित्र आपने देखे हैं? इससे मालूम होता है कि वे लोग कितने सरल हैं—बच्चो के समान ही। वे हँसते हैं, तो उनकी ऑखो मे आपको सरलता की झलक नजर आयेगी। कोई युवती ड्राइवर का चुम्बन लेती है, तो उसमें सरलता लक्षित होती है, उन्होने जीवन के अनुभव प्राप्त किये है।

इन किसानों मे जो व्यक्ति जागरूक होते हैं, उन्हीं पर हमारी आशा लगी रहती है। ये अल्पसख्यक बुद्धिजीवी वर्ग से आये हुए या समाज से दूर हटे हुए नहीं होते। ये तो प्रतिकारात्मक आन्दोलन से आये हुए भावनाशील और कार्यशील वीर हैं। उस हिसाब से इनकी सख्या बहुत बडी होती है। समाज से इनके सम्बन्ध सहानुभूतिपूर्ण होते हैं। कालान्तर मे ही सही, इसकी पूरी सम्भावना रहती है कि समाज इनकी बात मान लेगा, क्योंकि समाज इनके द्वारा केवल धर्मोन्मादित ही नहीं है, बल्कि वह भावना से अभिभूत कर दिया गया है। इसीलिए चित्रो मे इनके चेहरे प्रौढ़ दीखते हैं।

राजनीतिक दृष्टि से भले ही तत्काल उनकी व्याख्या न हो सके, फिर भी उनके कष्ट शेष रहेंगे, और उनके भीतर-ही-भीतर प्रवाहित होनेवाली धारा योग्य समय पर परिस्थिति की परत फोडकर बाहर आयेगी। वे भूले करेंगे, पर ये पहले-जैसी न होंगी। सभव है, ये भूले उन्होने न की हो, उन पर लादी गयी हो। अपनी सत्ता बढाने के लिए बडे-बडे राष्ट्रों मे जो चाले गूढ रूप मे चली जाती हैं, उनसे ही राष्ट्रो में फूट पैदा होती है। पोलैण्ड-वासियों ने अगर इस धरा पर उपलब्ध सारी बुद्धिमत्ता प्राप्त कर ली होती, तो भी उनके सिर पर वही दुर्दशा आयी होती। इसी तरह यूनानियों या फ्रेंच लोगों के दलगत

दंतकथा की रचना

"अविश्वसनीय घटनाएँ नये अंधविश्वासों के पालने है"।—एमिएल

१

न्यूटन ने 'प्रिसीपिया' नामक एक ही ग्रंथ लिखा हो, ऐसी बात नहीं। उसने नरकों का वर्णन करनेवाली एक पुस्तक भी लिखी है। हम आज भी उन बातो पर विश्वास करते है, जिनकी सगति न तो हमारी देखी हुई सत्य घटनाओ से बैठती है, न समझ मे आनेवाली किसी बात से। हमारे मस्तिष्क मे ऐसी मान्यताओ का उष्ण-प्रवाह और विवेक का हिम-प्रवाह दोनो पास-पास बहते हैं, परन्तु उनका नियम ही ऐसा है कि एक का दूसरे पर कोई प्रभाव नहीं पडता। उष्ण-प्रवाह इससे सिकुडता नहीं और हिम-प्रवाह पिघलता नहीं। मानव-मन कम-से-कम दो विभागों मे विभक्त होता है—'रोगयुक्त' तथा 'साधारण'। इन दोनो मे यही अंतर है कि पहला अविवेकी तत्त्वो से पृथक्ता का गुण लिए हुए है और दूसरा सामूहिक रूप से अविवेकी तत्त्वो को स्वीकार करता है। समाज द्वारा मान्य खण्डित मस्तिष्क के विशिष्ट उदाहरणो मे ये लोग आते हैं—वह खगोल-शास्त्री, जो अपने यत्रो पर विश्वास रखता है और साथ ही ईसाई धर्म-ग्रथ के वर्णनो पर भी, फौजी पादरी, वह कम्यूनिस्ट, जो करोडपति मजदूर की सम्भावना को मानता है, वह मनोविश्लेपक, जो विवाह कर लेता है और वह कर्मवादी, जो अपने विरोधियों को गालियॉ देता है। प्राचीन काल के मनुष्य को, यह पता होने पर भी कि उसका भगवान एक लकडी के टुकड़े पर नक्काशी की हुई एक मूर्त्ति-भर है, विश्वास था कि यही भगवान पानी बरसाता है। यह सत्य है कि दिन-प्रतिदिन हमारी श्रद्धा और मान्यताऍ सुसस्कृत बनती जा रही हैं, तथापि हमारे मन का दुविधायुक्त मूल स्वरूप स्थायी बना हुआ है।

यह मानने का पर्याप्त कारण है कि इस द्विविध मनोवृत्ति का सम्बन्ध विशिष्ट नाडी-प्रक्रिया से है। हाल के शोधो से यह ज्ञात होता है कि हमारे मस्तिष्क मे भावना और विवेक के स्थान अलग-अलग हैं। पशुओ पर किये गये प्रयोगो से तथा पिछले युद्ध मे मस्तिष्क के घावों का अध्ययन करने से यह सिद्ध हुआ

सैनिक यह बता सकता है। रोगी जिन विचारों और स्वप्नों को महत्त्वहीन और साधारण समझता है, ये ही उसके मानसिक संघर्ष का कारण बन जाते हैं, इसे कोई भी मानसशास्त्री कह सकता है। इतना ही क्यों, हम अपनी डायरी को एक साल बाद पढ़ें, तो मालूम होगा कि जिन घटनाओं को हमने साधारण समझकर लिखा है, उनका ही हमारे जीवन पर अधिक प्रभाव पड़ा है। यह जान कर आपको विस्मय होगा कि कई आत्मवृत्तान्तों में ऐसा ही होता है।

यह बात बड़ी चमत्कारिक लगती है, परन्तु इसके कारण स्पष्ट हैं। हमारे जीवन पर दु:खदायक घटना के जो बादल मँडराते हैं, वे क्षुद्र जलबिन्दु के समान हैं, यों समझना मानव-मन की प्रवृत्ति है और इसी प्रवृत्ति के बल पर मनुष्य अपने मन का सन्तुलन बनाये रखता है। यह प्रवृत्ति न रहने पर बचपन में ही हम पागल हो जायेंगे। यह एक आवश्यक साधन है, परन्तु इसमें कुछ दोष भी हैं। इस युक्ति से आपत्काल में तो हमारी बुद्धि ठीक रहती है, परन्तु जब सब ठीक चलता है, तब हम सन्तुष्ट रहते हैं और निष्क्रिय बन जाते हैं। किसी चीज को कम बताने की अँग्रेजों की आदत इसीसे उत्पन्न हुई है। विक्टोरिया-काल में जब इंगलैण्ड सत्ता और सज्जनता का केन्द्र बना, तभी वहाँ इस प्रकार की आत्म-सन्तुष्टि के बीज बोये गये।

अनुभवप्राप्त व्यक्तियों को अनुभवहीन व्यक्तियों की तुलना में यह बहुत बड़ा लाभ है कि यातनायें छन्ने के छिद्रों को बढ़ा देती हैं। सभी नैतिक शिक्षाओं का यही सार है कि महान् संकट को तुच्छ समझने की वृत्ति स्वेच्छया त्याग दी जाये, किन्तु इन शिक्षाओं पर अमल करना बड़ा कठिन कार्य है। इसीलिए शान्ति-स्थापन की अपेक्षा युद्ध आरम्भ करना अधिक सरल है।

वैज्ञानिक सत्य के निकट नहीं है। वह विवेक को बिल्कुल गौण मानता है, उसका समाजशास्त्र अरक्षित जाति-सिद्धान्त पर आधारित है, उसका राजनीतिक अर्थशास्त्र अपूर्ण है और उसका समाज स्थिर है।

२

वामपथी दल के इस मूल दोष की व्याख्या उसके नेताओं के व्यक्तिगत दोष के आधार पर नहीं की जा सकती। इसकी जडे अधिक गहराई तक गयी हैं।

१८-वी सदी के अन्त तक क्रान्तिकारी आन्दोलनों का आधार या तो धर्म होता था अथवा कम-से-कम धर्म के साथ उनका सुदृढ गठबधन होता था। इससे सुखी जीवन की बौद्धिक इच्छा तृप्त होती थी, और साथ ही ब्रह्मसाक्षात्कार की लालसा भी शान्त हो जाती थी। दूसरे शब्दों मे, वे आन्दोलन भावनाओ से भरे होते थे, फ्रास की क्रान्ति ने उनमें एक आमूल परिवर्तन किया।

यूरोप मे जो धर्म-सुधार का आन्दोलन हुआ, उसने पादरियों और पोप के अनुयायियों की भ्रष्टता पर आक्रमण किया, भगवान पर नहीं। उस आन्दोलन का स्वरूप ऐहिक सुधार से सम्बन्धित था और इसीलिये उसने भगवान पर आक्षेप नहीं किया, परन्तु फ्रेंच क्रान्ति का आक्रमण केवल पादरियों और पोप के अनुयायिओ पर नहीं था, बल्कि भगवान पर भी था। फिर भी भगवान की जगह बुद्धि-देवी की स्थापना का प्रयत्न असफल गया। भाग्यवश अन्य तत्त्वो को मान्यता मिली। 'स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व' केवल कोरी घोषणाएँ न थीं। ये मानो साक्षात् देवियॉ थीं। वैसे ही वह तिरगा निशान था। "मानवीय अधिकारों के लिये चर्च का उपयोग" करने की भावना जोरों से पनपने लगी। अमरीकी स्वातंत्र्य के घोषणा-पत्र मे कहा गया है कि "सभी मनुष्य समान मानकर बनाये गये हैं, हम इस सिद्धान्त को स्वयंसिद्ध मानते हैं"। 'स्वय-सिद्ध' का अर्थ बुद्धि की सीमा से परे स्वयंस्फूर्त है।

इस नये देवता का भावपूर्ण आह्वान अल्पकालीन ही ठहरा। एक शताब्दी मे ही वह क्षीण हो गया, जब कि इसके विपरीत ईसाई धर्म की काल्पनिक कथाएँ लगभग दो हजार वर्षों तक टिकीं। इसके कारण स्पष्ट हैं। ईसाई धर्म की दन्तकथा और धर्म-विधि के पीछे अविरल प्राचीन युग से चली आ रही परम्परा खड़ी थी। उसकी जडे मनुष्य के अन्तर्मन की गहराई तक पहुँच चुकी थीं। लेकिन १७८९ मे अमरीकी घोषणा-पत्र मे जो सिद्धान्त घोषित किए गये

है कि एक ही परिस्थिति में मन में परस्परविरोधी दो वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। विवेकशून्य मान्यताओ की जड़े भावना में जमी रहती हैं और इसीसे ये मान्यताएँ सत्य लगती हैं और इसका परिवर्तन आशायुक्त अथवा भययुक्त चिन्तन में होता है। बन्दर, बालक तथा जगली मनुष्यों के विचार इसी दिशा मे चलते हैं और हमारे मन में भी २४ घटो मे २३ घटे ऐसे ही विचार आते हैं। किसी भी परिस्थिति पर निर्विकार भाव से विचार करने की आदत नयी है। यह इतनी कमजोर है कि भावना की हल्की-सी फूँक मे टूट जाती है और विवेकपूर्ण विचार के स्थान पर भावना स्थान पा लेती है।

शरीरविज्ञान और मनोविज्ञान की गत ५० वर्षों की प्रगति से यह सिद्धान्त स्थिर होता है कि मनुष्य का मन साधारण परिस्थिति मे विवेक के अनुसार न चल कर भावना के अनुसार चलता है। मनुष्य के मन की प्राथमिक अवस्था तर्कशास्त्र के बाहर की चीज है। परम्परागत, सचित एवं प्रचलित मान्यताओ को ही वह अपनाता है। आज भी मानव-मन प्राय. इसी अवस्था मे है, फ्रायड-जैसे मनोवैज्ञानिक यही कहते हैं, आगडेन तथा रिचर्ड्स भी यही कहते हैं। आधुनिक शब्द-व्युत्पत्ति-शास्त्र भी इन्हीं परिणामों पर पहुँचा है। विज्ञान कम-से-कम ऐसी स्थिति पर पहुँच गया है कि साधारण रूप से मस्तिष्क के कार्य करते समय उसका अविवेक लक्ष्य कर सके। इन प्रगतियो का राजनीति पर कोई अधिक प्रभाव नहीं दिखाई देता। दूसरे, तीसरे और चौथे समाजवादी आन्दोलन (इण्टरनेशनल) असफल क्यो हुए? अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद का प्रयास क्यो नहीं सफल हुआ? इसका अन्तिम कारण यही है कि उन्होंने मानव-मस्तिष्क के अविवेकी तत्त्व की उपेक्षा की। "मानव-मन बड़ा विवेकपूर्ण है, आवश्यकता है केवल तर्कसगत विचारों, सायकालीन वर्गों, परचो तथा पुस्तकों के द्वारा उसे विश्वास दिलाने की कि उसका हित किसमे है"—समाजवादी और वामपथी प्रचारकों का यही विश्वास था। उन्होंने मानव के अन्तर्मन-मस्तिष्क के आधे भाग, उसकी स्वप्न-भूमि और-भावनाओं की ओर ध्यान दिया ही नहीं, जो मानव शरीर का ९० प्रतिशत भाग है। अतः वामपथी फासिज्म के तत्व का विश्लेषण करने मे असफल रहे। वे उसका और उसके विरोधी कामो का विवरण भी न दे सके। इसी से आज गहरी खाई के किनारे खडे होकर भी वामपथी अपने मन को धोखा दे कर खोखली आशा के राज्य मे विचरते हैं।

दूसरी ओर, फासिज्म, अविवेक और कल्पना का तीव्र विरोधी होने पर भी

इसका परिणाम जो होना था वही हुआ। फ्रास में बैस्टाइल पर किये गये आक्रमण के बाद डेढ़ सौ वर्षों तक एक के बाद एक कई आन्दोलन उठे, पर सब समाप्त हो गये। जकोविनिज्म, फ्यूरेरिज्म, उपयोगितावाद, प्रथम और द्वितीय समाजवादी आन्दोलन (इन्टरनेशनल), विल्सोनिज्म, ट्रेड यूनियन, अराजकतावाद, फेबिनिज्म, द' लीग आफ नेशन्स, वीमर गणतंत्र, तृतीय समाजवादी आन्दोलन (इन्टरनेशनल) ये सब आन्दोलन नव विचार की भूमि मे उगे हुए एक ही वृक्ष के अंकुर थे। लेकिन दस-बीस वर्षो में ही वे सूख गये।

ये आन्दोलन निर्वंश रहे; परन्तु प्रत्यक्ष मे इनका जो प्रचण्ड प्रभाव पड़ा, इतिहास में वह अपने ढंग का अकेला है। कुछ व्यक्ति यह कहकर कि इस आन्दोलन से कोई प्रत्यक्ष लाभ न हुआ, नाक-भौ सिकोड़ते हैं, और मुँह बनाते हैं। लेकिन वे मार्क्स-लिखित 'कैपिटल' का कुछ भाग पढ़े, जिससे विगत शताब्दी के आरम्भ मे इंगलैण्ड की मिलों में काम करने वाले मजदूर बच्चो की क्या दशा थी, स्पिटहेड मे विद्रोह कैसे हुआ, आदि हृदय-द्रावक घटनाएँ उन्हें जानने को मिलेगी। विगत १५० वर्ष मे इन भ्रष्ट आन्दोलनो से सर्वसाधारण का जो प्रत्यक्ष सुधार हुआ, उतना सुधार ईसाई धर्म १५०० वर्षो में भी नहीं कर पाया।

लेकिन यह सब भौतिक सत्यता पर लागू है। लोगो के मन मे इस सत्यता का रूप कुछ दूसरा ही था। मूल उद्देश्य की दृष्टि से सुधार का प्रत्येक आन्दोलन असफल हुआ है। इन आन्दोलनों को जो सीमित सफलता मिली, वही उन्होने अपना साध्य नहीं माना था। प्रत्येक आन्दोलन के प्रवर्तक ने बडे उत्साह से यह वचन दिया था कि वह स्वर्ण-युग आरम्भ करेगा। लेकिन मर्त्य-लोक में स्वर्ग लाने की उनकी कल्पना धूलधूसरित हो गयी। उन्हे जो भी थोडा-बहुत यश मिला, वह उनके आदर्श का केवल लघुरूप था। इसका स्वरूप ठीक वैसा ही था, जैसा कि किसी लखपति का दिवाला निकलने पर जब उसकी मृत्यु हो जाती है, तब उसके कारबारी कुछ सम्पत्ति बचा लेते हैं। यो वामपथी दल का प्रत्येक कदम समाज-सुधार की दृष्टि से भौतिक क्षेत्र मे स्थिर गति से प्रगति-पथ पर बढ़ रहा था, परन्तु सामाजिक मनोवृत्ति पर यदि इसका कोई सम्मिलित प्रभाव पड़ा, तो वह यह कि इससे भ्रम और निराशा की भावना बढ़ने लगी।

भौतिक जगत् में उच्च यथार्थता से लोगों का विश्वास हट गया, और उसका

थे, वे जाग्रत बुद्धि की उपज थे। उन्होने कुछ समय के लिए ससार में प्रचलित विचारों का खोखलापन ढक दिया, किन्तु सम्पूर्ण के लिये मनुष्य की जो उत्कठा है, उसे वे पूरी नहीं कर सके। जड़ पदार्थों में वे मनुष्य के गुण-आरोपण मे असमर्थ थे। मनुष्य की आध्यात्मिक क्षुधा तृप्त न हो सकी। ससार की अपूर्णता और असफलता तथा इससे मानव-मन को प्राप्त होने वाली भयग्रस्तता की भावना नष्ट करने के लिए ये तत्त्व अनुकूल वातावरण का निर्माण न कर सके। उनका स्वरूप पूर्णतया ऐहिक था। "भगवान सदैव बादलों मे तथा गोधूलि-वेला मे निवास करते हैं"—इस धारणा को फ्रेंच, वामपथियो का रहस्य कहते हैं और इसका जन्म चेतना के युग मे हुआ था।

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य में, १८४८ के बाद नये ध्येयवाद का श्रद्धा-शील स्वरूप नष्ट हो गया। फ्रेंच क्रान्ति के जन्मदाता—प्राउटन, फोरियर, सेंट सिमन—देवदूत न माने जाकर पागल करार दिये गये। अस्त होने वाले ईसाई धर्म का स्थान लेने वाला तथा लोगों की भावना मे अदम्य आकर्षण उत्पन्न करने-वाला कोई आन्दोलन सामने नहीं आया।

आधुनिक समाजवाद के सस्थापक यह मानते थे कि इस प्रकार के अनुरोध की आवश्यकता ही नहीं। उनके मत मे धर्म लोगो के लिए अफीम-जैसा है और उसके स्थान पर लोगो को 'विवेक का भोजन' देना चाहिये। सभी विज्ञानों की तेजी से प्रगति हो रही थी और डार्विन का सिद्धात भी द्रुतगति से विकसित हो रहा था। इससे सर्वसाधारण को विश्वास होने लगा था कि बुद्धिवादियो के निर्णय अचूक होते हैं। लोगों को विश्वास हो गया कि इसी प्रकार पारदर्शक अणु-परमाणु से निर्मित एक स्वच्छ, सतेज और स्फटिकमय सृष्टि होगी, और उसमे साझ का धुधला प्रकाश और रात्रि का अन्धकार न रहेगा—उसमे दंतकथा की गुजाइश न होगी।

इस वातावरण मे मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद का जन्म हुआ। उस समय विवेक और भावना मे, सवार और घोड़े का सम्बन्ध माना जाता था। विवेक को सवार माना जाता था, और जिसे उस वक्त "अन्धकारपूर्ण प्रवृत्तियाँ" तथा "हमारे अन्तर का पशु" कहा जाता था, उसे घोडा। आज हम अधिक सकोची हो गये हैं और सोचते है कि इस तुलना के लिए धार्मिक क्षेत्र ही अधिक उपयुक्त है। लेकिन इस बीच वामपथियों में सवार, अर्थात् बुद्धि से तर्क करने की परम्परा हो गयी थी, जब कि दूसरे, घोड़े को—भावना को—भगा रहे थे।

३

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर विश्व में सचित असफलता की भावना का उद्रेक हुआ। समस्त यूरोप में किसी सम्पूर्ण और असदिग्ध शक्ति में विश्वास की वह लहर बही, जिसकी पहले उपेक्षा की गयी थी। दबी हुई भावनायें उभर पड़ीं। विचार-शक्ति ने बदला लिया। विभिन्न परिस्थिति में विभिन्न रूपों मे यह विद्युतीय ऑधी दौड़ गयी। जिन राष्ट्रों को युद्ध में यश मिला था, वहॉ इसकी गति अवश्य कुछ मन्द हो गयी; परन्तु कुछ राष्ट्रों में भोग-विलास की दिशा में उस ऑधी ने अपना मार्ग पा लिया। पुनर्विश्वास की इस लहर के ऐतिहासिक दृष्टि से दो परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं। एक है फासिज्म और दूसरा रूसी कपोल-कल्पना।

यहॉ मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि मैंने रूसी कपोल-कल्पना वहॉ के विकास को लक्ष्य कर के नहीं कहा है, परन्तु रूस के उस विकास का यूरोप के वामपथियो पर जो मानसिक प्रभाव पड़ा, उसी से मेरा अभिप्राय है। मै यह सिद्ध करने की चेष्टा करूँगा कि अन्य काल्पनिक मान्यताओ की तरह रूसी कपोल-कल्पना ने भी मानव-मन की गूढ़ और गहरी आकांक्षायें तृप्त की। किन्तु इसकी ऐतिहासिक यथार्थता का, जो इसका उद्देश्य था, इससे कोई सम्बन्ध नहीं। नजारेथ के ईसा और उनके अनुयायियो के विषय मे ऐतिहासिक दृष्टि से कितने ही सशोधन हुए; परन्तु ईसाई धर्मविषयक दंतकथा पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा—वह अक्षुण्ण ही रही।

४

फासिज्म और रूसी कपोल-कल्पनाएँ दोनो, केवल मानव बुद्धि पर ही व्याप्त नहीं, वरन् बुद्धि के साथ ही भावना को तृप्त करके, पूर्ण मानव-जीवन का विचार करने मे ये कपोल-कल्पनाएँ समर्थ हैं। फासिस्ट कपोल-कल्पना बिलकुल स्पष्ट है, उस पर कोई आवरण नहीं। फासिस्ट नेता खुले रूप मे जनता के गले मे अफीम की गोलियॉ ठूसते हैं। रक्त और मिट्टी के मूल रूप, ड्रैगन की हत्या करने वाले महामानव, वलहल्ला महल (दंतकथाओ मे वर्णित) की वेदियो और यहूदियो की शैतानी शक्तियो का राष्ट्रीय सेवाओ मे व्यवस्थित रूप से उपयोग किया जाता है। मनुष्य की सुप्त भावना के तार छेड़ने में ही हिटलर की आधी

स्थान लेने के लिए कुछ भी नहीं बचा था। प्रगति वह छिछली कल्पना है, जिसकी जड़े भविष्य मे हैं, अतीत मे नहीं। वामपथी पक्ष का भावना की दृष्टि से धीरे-धीरे उन्मूलन हो गया। उसका जीवन-रस सूख गया। ब्रिटिश मजदूर-दल और जर्मन समाजवादी प्रजातत्रीय-दल जब अधिकार मे आये, तब ये निःसत्त्व बन गये थे। समाज के अन्तर्मन से उनका कोई सम्बन्ध न था। उनका नीतिशास्त्र कोरी विवेक-पूर्ण धारणाओ पर आधारित था। फ्रान्स की क्रान्ति का यदि कोई अवशेष रह भी गया था, तो वह था वाल्टेयर की तरह कड़ी भाषा मे वाद-विवाद करना।

साम्यवादी लेखको की एक काग्रेस मे, जिस नवीन और वीर विश्व का निर्माण हो रहा था, उसके बारे में घंटो जोरदार चर्चा हुई, फिर आंद्रे मालराक्स ने अधीर हो पूछा—"लेकिन इस विश्व मे ट्रामगाड़ी के नीचे दब जाने वाले मनुष्य का क्या होगा?" सब उसकी ओर एक टक देखने लगे। वह भी मौन देखता रहा और इस प्रश्न पर फिर उसने ज़ोर नहीं दिया, परन्तु हम सब के अन्दर वह आवाज है, जो इस प्रश्न पर जोर देना चाहती है। पर आत्मा की अमरता पर से हमारा विश्वास अब हट गया है, जिस पर हमारा प्रेम या घृणा अधिक निकट की होती है। श्रद्धा पर लगी इस चोट से हमे जो घाव लगा है, वह अब तक भरा नहीं।

रणक्षेत्र मे मारा जाना या वैज्ञानिक सशोधन करते हुए मृत्यु पाना, ये ऐसी हानियाँ है, जो कुछ अंशों मे भर जाती हैं, लेकिन ट्राम के नीचे दब कर मरने वाले मनुष्य का क्या होगा? नदी मे डूब कर मरने वाले बालक का क्या होगा? पहले के लोगो के पास इन प्रश्नों के उत्तर थे। ऊपरी तौर पर हमे जो दुर्घटना मालूम होती है, वह विश्व-रचना मे एक नियमबद्ध रचना है, पहले के लोग ऐसा मानते थे। उनकी दृष्टि मे भाग्य अंधा नहीं था। पहले ऐसा विश्वास था कि भूकम्प, ज्वालामुखी, जल-प्रलय रोगादि ईश्वरीय योजना के भाग हैं और ईश्वर ही हमारी देख-रेख करता हे। नरमॉस-भक्षक, एस्किमो, हिन्दू, ईसाई सब के पास उक्त गूढ प्रश्न का उत्तर है। यह प्रश्न सबसे महत्त्व का प्रश्न है, इसे दबाने-छिपाने का कोई कितना ही प्रयास करे, किन्तु हमारे कार्यों का नियत्रण करनेवाला यही है। साम्यवादी लेखकों की काग्रेस मे दीर्घकालीन स्तब्धता के बाद मालराक्स को एक ही उत्तर मिला—

"पूर्ण समाजवादी यातायात-प्रणाली मे दुर्घटनाएँ नहीं होगी।"

वामपंथियो के शब्दो मे ठीक वैसा ही हुआ, जैसी भविष्यवाणी की गयी थी। किसान-मजदूरो की सरकार, मजदूरो की तानाशाही, अपहरण करने वालों का अपहरण आदि ने सूखी स्याही को रक्त मे बदल दिया। वामपंथियों की कपोल-कल्पना, जैसा हमने देखा, भूतकाल से नहीं, वरन् भविष्य की काल्पनिक अवस्था से उत्पन्न थी। वह भविष्य अब कल्पना-लोक से सत्यलोक मे उतर आया था। रक्तहीन कल्पना-लोक एक सजीव देश में बदल गया था, जिसमे जीवित लोग रहते थे और जब यह परिवर्तन हुआ, तो उसका भौगोलिक क्षेत्र बडा होने के कारण कल्पनाशक्ति को भी वड़ा क्षेत्र मिल गया था। कल्पना मनमाने रग भर सकती थी। प्रगति, न्याय और समाजवाद अब कोरे स्वप्न नहीं रहे थे। अब पहले के अनाथ और तितर-बितर आन्दोलन को एक झडा और मातृभूमि प्राप्त हो गयी थी। साथ मे अपने पिता की दाढी वाली बाह्य आकृति भी, जिसकी ऑखे मिचमिची थीं और जो किसी मंगोलियन की तरह प्रतीत होता था। स्वातन्त्र्य-सग्राम में शूरवीरों का वह महान् संघर्ष था। इसलिए एक सदी से भूखे और राज्यलक्ष्मी से दूर रखे गये यूरोपीय वामपथियो की सभी अतृप्त भावनाएँ सतुष्ट हो गयीं।

इस प्रकार रूसी कपोल-कल्पना का जन्म अथवा पुनर्जन्म हुआ, क्योंकि रूस एक आदर्श पुनर्जीवन के लिए—जो कि इतना पुराना है, जितनी स्वय मानवता—एकमात्र नया अवसर था। अतीत के 'स्वर्णयुग', 'आशा की भूमि', 'स्वर्ण-राज्य' आदि प्रतीकों के समान ही, इसने क्षतिपूर्ति का आश्वासन दे, निराश जीवन और मृत्यु की खाई भरने की कोशिश की। हम लोगो में से जो व्यक्ति आदोलन के समय थे, उन्हे मालूम है कि रूसी कपोल-कल्पना ने यह कार्य कैसे पूरा किया है—लेकिन रूसियों के लिए नहीं, बल्कि रूस के बाहर जो रूस के पुजारी है, उनके लिए।

इस आदर्श का एक मुख्य अंग है, आकाक्षा की पूर्ति होने से पहले भीषण उत्पात। इसीलिए कट्टर साम्यवादी शान्ति के मार्ग से समाजवाद की ओर अग्रसर होने की सुधारवादी कल्पना को नहीं मानते है। नवीनता के आगमन के लिए क्रान्ति आवश्यक है।

पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा बोल्शेविज्म की चिनगारी को सैनिक आक्रमण से बुझाने की बे-मन से की गयी कोशिश ने साम्यवाद के भक्तो का उत्साह बढाया और रूस के चेहरे पर शहीदो का तेज चमकने लगा। फिर रूस यूरोप मे सर्वश्रेष्ठ सैनिक राष्ट्र बन गया, और उसने पोलैड तथा बाल्टिक रियासतों के आधे हिस्से पर कब्जा कर लिया।

प्रतिभा काम आती थी, और शेष आधी प्रतिभा अर्थशास्त्र, शिल्पशास्त्र, युद्ध-शास्त्र, प्रचारशास्त्र आदि मे आधुनिक विचार उडेलने में खर्च होती थी। पुराने विश्वास को नये रूप मे पुनः जीवित करना ही फासिज्म का रहस्य है। नाजियों का महल गगनचुम्बी था और मानो धरती के गर्म पानी के झरने से उस मकान मे पानी के नल लाये गये थे।

इसके विपरीत, समाजवादी आन्दोलन के लिए आवश्यक जल की पूर्ति मकान की छत वाली टकी से होनेवाली है और वह टकी कभी तो बरसात के पानी से भरेगी, ऐसी आशा है। रूसी क्रान्ति ऐसी ही बरसात लायी—इतना ही नहीं, इसने उष्ण प्रदेश मे जोरो की वर्षा शुरू कर दी। इससे तब तक सूखे पडे पानी के नल एकदम उछलते-कलकल करते पानी से भर गये।

प्रथम कुछ वर्ष रूस की सत्य स्थिति और रूसी कपोल-कल्पना एकरूप से थे। उस पराक्रमी युग में अपने-आप ही दंतकथाएँ फैली। इस धुएँ के पीछे सचमुच ही आग धधक रही थी।

कितनी प्रचड अग्नि थी वह! जनता ने सत्ता हस्तगत कर ली थी और पृथ्वी के छठे भाग पर अपना अधिकार बना रखा था। व्यक्तिगत अधिकार, लाभ की लालसा, यौन-अवरोध, सामाजिक रूढियॉ, सबका एक साथ ही उन्मूलन कर दिया गया था। राजा और रक, स्वामी और सेवक, अधिकारी और नागरिक-जैसा कोई भेदभाव नहीं रह गया था। पत्नी पर पति का, बच्चे पर मॉ-बाप का, शिष्य पर शिक्षक का कोई अधिकार शेष नहीं रहा। उन अश्रुत आदेशो के पीछे ठीक उसी तरह की गर्जना थी, जैसी दस निर्देशों का जन्म देने वाली सिनाई की आवाज मे निहित थी। जिन-जिन ने सुना, उन्हें लगा कि मन का पुराना कठोर आवरण टूट रहा है—नास्तिकवाद, निराशा, सामान्य बुद्धिहीनता का कठोर आवरण। अपने अंतर मे उन्होंने एक ऐसी भावनात्मक लहर अनुभव की, जिसके सम्बन्ध मे वे स्वय को समर्थ नही समझते थे। एक ऐसी भावना जगी, जो उनके मन की गहराई मे बिल्कुल दब गयी थी, जिससे वे उसका अस्तित्व ही भूल गये थे।

वामपंथी नेता लगातार कई वर्षों से, दशाब्दियों से, सदियों से आने वाली क्रान्ति की बात कर रहे थे। लेकिन जब वह क्रान्ति आयी, तो वे उस देहाती पादरी-जैसे स्तम्भित हो गये, जो किसी रिक्त गिरजाघर में अपना साप्ताहिक प्रवचन सुनाने के बाद अपने सहायक से सुने कि बेतार के तार पर स्वर्ग के राज्य की घोषणा हो चुकी है।

को मुक्त कर देंगे, ऐसी भावनाएँ लोगों मे पैदा की गयीं। यूरोप के क्रान्तिकारियो का आज का त्याग, यानी आगामी कल के लाभ का बीजारोपण है। भविष्यवेत्ताओ की भाषा में ऐसे आश्वासन लोगों को दिये जाने लगे। रूस ने यूरोप के मजदूरों के कार्य से अपने को अलग कर लिया, स्वयं रूस में 'मक्का' के यात्रियो के सिवाय अन्य लोगों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया। इन घटनाओ से रूस यथार्थता के क्षेत्र से दूर जाने लगा और दंतकथा के काल्पनिक सूत्रो को पनपने में सहायता मिलने लगी।

६

यूरोप के वामपंथी दल के साथ रूस ने जो बर्ताव किया, उसके दुःखद परिणाम इतिहास के पृष्ठो मे लिखे हैं। समस्त यूरोप मे साम्यवादी दलो ने अनिच्छा से फासिज्म की धाइयों की भूमिका की। नेताओं या अनुयायियो में से, जिनमे इस नीति का विरोध करने का ज्ञान और साहस था, उन्हे दल से निकाल बाहर किया गया, मार डाला गया अथवा पुलिस के सुपुर्द कर दिया गया। रूसी तानाशाही का स्वरूप कैसा था, यह तो कामिण्टर्न-संस्था के विधान से ही स्पष्ट है। एशिया की प्रायः अशिक्षित समझे जानेवाली जनता से रूस ने जिस प्रकार का व्यवहार किया, उसी प्रकार उसने यूरोप के मजदूर और बुद्धिजीवी वर्ग से भी बर्ताव किया। पश्चिमी लोगों की परिस्थिति और मनःस्थिति की ओर उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। ट्राट्स्की से बॉर्केना तक के अनेक आलोचकों ने इस बात को स्पष्ट किया है। लेकिन उनका विश्लेषण केवल राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित था। रूस से बाहर के लगभग सभी साम्यवादियो और उनके सहयोगियो ने इस परिस्थिति के सामने सिर क्यो झुका दिया, इसकी मनोवैज्ञानिक मीमासा किसी ने नहीं की।

रूस मे दल का शुद्धीकरण सतत जारी था। कल के लोकप्रिय नेता आज बहिष्कृत किये जाते थे। दल की नीति पर अनुयायियो के विचारो का प्रभाव नहीं पडता था। शत्रु के साथ उलट-पलट कर मैत्रीपूर्ण सन्धियाँ करने से हजारो मनुष्यो की हानि होती थी। शब्दो के मूल अर्थ को उस प्रकार तोड़ा-मरोडा जाता था कि ठीक विपरीत अर्थ निकल सके। कल तक जो सत्य था, आज सावेश इनकार किया गया। सारे वातावरण मे निन्दा की लहर व्याप्त हो गयी। यह सब करोड़ो पश्चिमवासियों ने स्वेच्छा से अनुशासनबद्ध रहकर,

"रूस पीछे हटे" यह नारा राजनीतिक रूप में आरम्भ हुआ और शीघ्र ही इसने धार्मिक रूप ले लिया। इसी प्रकार प्रतिक्रियावादी समाचार-पत्रों की निन्दा ने विस्तृत आलोचना और वादविवाद का रूप ले लिया। सरकारी तौर पर इसकी सफाई दी गयी कि रूस की आलोचना चाहे जितनी मैत्रीपूर्ण और सोद्देश्य रही हो, पर वह प्रतिक्रिया के रग मे रँगी थी। किन्तु यह लोगो के रुख की युक्तिपूर्ण व्याख्या-मात्र थी, क्योंकि एकान्त मे भी, जहाँ 'डेली मेल' (एक समाचार पत्र) का रिपोर्टर नहीं रहता था, कोई आलोचना रूस के पुजारियो द्वारा निन्दनीय और अपराध समझी जाती थी। रूस की सुरक्षा की लहर यथार्थ से दूर हो गयी थी और उसने विदेशियो के संदेहपूर्ण हस्तक्षेपो के विरुद्ध एक धर्म की मानसिक सुरक्षा का रूप ले लिया था। प्रगति ने अपना खोया क्षेत्र पा लिया; सोवियत रूस लोगो के लिए 'नयी अफीम' बन गया।

५

रूसी क्रान्ति के तुरन्त बाद समूचे यूरोप में क्रान्ति की लहर-सी दौड गयी। परन्तु जर्मनी, इटली, हगेरी, बाल्कन देशो मे उसे पराभव का सामना करना पडा। इस शताब्दी के प्रथम चरण से ही यूरोप मे शीघ्र क्रान्ति होने की आशा छोड देनी पडी। तब तक रूस क्रान्ति के भाले की नोक बना हुआ था। अब क्रान्ति का यह आन्दोलन रूस का साया बन गया। चीन से स्पेन तक क्रान्तिकारियो की लगातार पराजय होती गयी। आत्महत्या करने वाले का भाग्य ही उनके पल्ले पड़ा।

सारे संसार के मजदूरो का हित देखने के बजाय रूस का हित सँभाला जाने लगा। 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल' सस्था तो रूस के विदेशी कार्यालय की एक शाखा बन कर रह गयी। यूरोप के विभिन्न राष्ट्रो मे साम्यवादी दल की नीति मे आकस्मिक परिवर्तन हुए और इसका यही कारण था कि रूस की नीति बदल रही थी।

इन परिस्थितियों को 'एक राष्ट्र के लिए समाजवाद' की घोषणा का रूप दिया गया। रूस, अर्थात् मजदूर-वर्ग का अपना घर। उसकी रक्षा के लिए यदि यूरोप के क्रातिकारी आन्दोलन का बलिदान भी देना पडे, तो क्या हर्ज है। रूस का किला मजबूत और सुरक्षित होते ही उसके योद्धा सारे संसार

चर्चा का प्रारम्भ ही वास्तविक स्थिति को छोड़ कर होता है, और जो तर्क पेश किये जाते हैं, उन पर उनकी योग्यता के आधार पर नहीं, वरन् रूसी विचार-धारा से उनका मेल होने पर ही चर्चा की जा सकती है। और यदि वे मेल नहीं खाते, तो उस रूप मे उन्हे पेश किया जाये, जिससे रूसी विचारधारा से उनका मेल बैठ जाये। किसी छोटे बालक के हाथ में कोई चीज पड़ जाने पर वह जैसे उसे एक ही दृष्टि से देखता है—"मै इसे खा सकूँगा या नहीं", उपर्युक्त दृष्टिकोण भी ठीक वैसा ही है। मान लीजिए "ट्राट्स्की ने लाल सेना का निर्माण किया" यह बात आपने कही, तो इसमें ऐतिहासिक सत्य होने पर भी इसे त्याज्य माना जायेगा और उसके लिए आपको 'उचित' दड भी सहना होगा। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह प्रभावशाली तत्त्व बाहरी वाद-विवाद में स्पष्ट हो। सुरक्षा की यात्रिकता बहुधा तेल दिये यंत्रो के समान सहज रूप मे काम करती है। अगर किसी सकट की आशंका हो, तो यह स्वय प्रश्नों और तर्को का सहारा लेती है। इस प्रकार बहुधा ऐसा होता है कि विरोधी गर्म हो उठता है; परन्तु रूस का समर्थक किसी धर्मोपदेशक या पागल के समान अपना दिमाग स्थिर रखता है और मुस्कराता रहता है, ऐसा दिखाता है कि वह दूसरों से श्रेष्ठ है।

विरोधी की राह मे और भी कई कठिनाइयॉ हैं। प्रतिक्रियावादी उसके मन का समर्थन करते हैं; उनके मुख पर की विजय की मुस्कान मानो कहती है—"मैंने तुम्हें शुरू से कहा था।" इस समर्थन और अवाछित मित्रों से वह घबडा जाता है। अपने सभी गलत तर्को के साथ प्रतिक्रियावादी सदा सही प्रमाणित किये गये, और अपने मन मे वह उस समर्थन के साथ है, जो सही कारणों को लेकर भी गलत करार दिया गया है। पर उसी वक्त अशुद्ध समर्थन से वह उत्तेजित हो उठता है, क्योंकि अपने अतीत की भूलों पर किसी और को दृढतापूर्वक चिपके देखकर मनुष्य जितना अधीर हो उठता है, उतना किसी और चीज से नहीं। कुछ मामलो मे यह उत्तेजना घृणा का रूप ले लेती है—ट्राट्स्की के उस प्रेमी के समान जो विश्वासघात का शिकार हुआ है, जो सबसे अपनी प्रेमिका के विश्वासघातिनी होने की बात कहता है और फिर भी इसके प्रत्येक नवीन प्रमाण पर क्रुद्ध हो उठता है। व्यभिचारपूर्ण अशाति का और भ्रम के अभाव का एक समान ही असतुलित प्रभाव होता है।

अन्त मे दूसरे छोर की ओर झूल जाने की आशका है। लावाल और डोरियट के उदाहरण इसी के प्रति सचेत करते हैं। दोनों एक समय फ्रेंच

गेस्टापो सैनिको का भय न रहने पर भी, क्योकर स्वीकार किया होगा !

इस प्रकार अधिकारो का बिना शर्त शोचनीय समर्पण सदा बुद्धि से परे की बात है। यही कहा जा सकता है कि यह एक मानसिक विकृति है। परन्तु नियमतः ईसाई या रूसी कपोल-कल्पना पर पूरी श्रद्धा से विश्वास रखनेवाला व्यक्ति किसी नास्तिक या ट्राट्स्की के अनुयायी से अधिक सुखी और सन्तुलित रहता है। मनुष्य के मन मे जो प्राचीन विश्वास की जडे गडी हैं, सदेह से जब उनकी टक्कर हो जाती है, तो मानसिक विकार उत्पन्न होता है। इस संशय को दूर रखने के लिए सुरक्षा की एक दीवार खडी की जाती है। "नास्तिक और पाखण्डी लोगो से सम्बन्ध मत रखो। ट्राट्स्की का साहित्य मत पढो"—ऐसे बन्धन लगाये जाते हैं। इससे असहिष्णुता की वृत्ति फैलती है और फिर भले आदमी भी ऐसे-ऐसे अत्याचार करते हैं कि आश्चर्य होता है।

भीतरी सुरक्षाऍ अचेतन हैं। अपनी पसन्द के जो श्रद्धास्थान होते हैं, मन उनके आसपास एक प्रकार के जादू का वातावरण बनाता है। वे सुरक्षाऍ इन्हीं से सम्बन्धित होती है। इन वातावरणों मे जो तर्क प्रवेश करते हैं, उनका विवेकपूर्ण विचार नहीं किया जाता। एक विशिष्ट प्रकार के भ्रामक बुद्धिवाद से उन विचारो की मूर्खताऍ और विरोधी बाते सहज ही अपनायी जाती हैं। मनुष्य की मनोवृत्ति जितनी अधिक सुसस्कृत होती है, उसका भ्रामक बुद्धिवाद उतना ही अधिक सूक्ष्म होता है। "यह सिद्धान्त तार्किक दृष्टि से सही होगा, परन्तु व्यवहार की दृष्टि से गलत है"—ऐसे ही मोटे सिद्धान्त सामने रखकर साम्यवाद के विश्वासी विचार करते हैं।

रूसी कपोल-कल्पना और सत्यस्थिति में ज्यो-ज्यो अंतर बढता गया, त्यो-त्यों तर्कपूर्ण विचारों की विसगति बढ़ती गयी। यहॉ तक कि रिबेनट्राप को क्रान्तिकारी की उपाधि देने पर भी वह रूसी विचारधारा से सुसगत लगने लगा। लखपति को मजदूर और मेज को बत्तक का तालाब कहने-जैसी बात थी यह। 'डेली वर्कर' के गत दस वर्षो के अग्रलेख पढने पर किसी की भी बुद्धि चकरा जायेगी।

७

इस परिस्थिति मे, रूसी कपोल-कल्पना मे फॅसे हुए आदमी से व्यक्तिगत रूप मे या प्रकट रूप मे किसी प्रकार की भी चर्चा करना प्राय. निरर्थक होगा।

समर्थक की सुरक्षाओं को, उसकी चेतना में इन अविवेकी तत्त्वो को लाकर, तोड़ने का प्रयास बिल्कुल व्यर्थ है। सभी दृढ़, पर दबे विश्वासो के साथ इस कार्य के विरुद्ध अचेतन दबाव, जो अपने आधार तत्त्वों के लिए ही आशंका उत्पन्न करता है—असाधारण है। 'वर्ग सघर्ष से परिवर्तन' के रूप मे 'बुर्जुआ मनोविज्ञान' की साम्यवादी अस्वीकृति मे यह दबाव स्वयं विवेकपूर्ण हो जाता है। रूस में मनोविश्लेषण पर सरकारी प्रतिबंध है। कम्यूनिस्ट मनोविज्ञान 'वर्गचेतनता' की कल्पित धारणा पर आधारित है। इसका कार्य माना जाता है—उत्पादन की प्रक्रिया में व्यक्ति की स्थिति को प्रतिबिम्बित करना, जिसे किसी मनोविश्लेषक ने कभी किसी जीवित प्राणी पर नहीं आजमाया। इस प्रकार एक स्वतःसिद्ध विश्वास का बचाव, उसके विश्लेषण के साधनों की उसी प्रकार स्वतःसिद्ध अस्वीकृति से किया जाता है—एक ऐसी प्रक्रिया, जो मानस-रोग-शास्त्री और गिरिजाघर के इतिहास-लेखक—दोनों के लिये परिचित है।

गिरजाघर के सम्बन्ध मे विरक्ति की यह प्रक्रिया दो तत्त्वों पर निर्भर है। सत्य और कपोल-कल्पना के बीच हमेशा बढ़ने वाली दूरी से उत्पन्न क्रमिक रगड़ और यथार्थता के साथ और उत्तम एकरूपता मे समान भावनाप्रधान शक्ति के नवीन धर्म का प्रादुर्भाव।

साम्यवादी दल के सदस्य थे। आदर्शवादियो के लम्बे जुलूस के पीछे की चिकनी ढलान पर नीचे फिसल जाने के डर ने, उन्हे गद्दार बना दिया। किसी ढलान के बीच मे लटके रहना बडा कठिन कार्य है और इसमे किसी का साथ भी नहीं मिलता।

८

रूसी कपोल कल्पना के चारो तरफ जो जादुई जाल है, उसका प्रभाव केवल साम्यवादी दल के सदस्यो पर ही होता हो, सो बात नहीं; परन्तु समाजवादी, उदारमतवादी, प्रगतिशील, बुद्धिवादी, सुसंस्कृत पादरी इन सब पर भी थोड़ा-बहुत होता ही है। दो महायुद्धों के बीच के बीस बरसों मे वामपथी दल को सतत पराभव सहना पड़ा, विश्वासघात का शिकार होना पडा। एक के बाद एक राष्ट्र बेकारी, मुद्रास्फीति तथा फासिज्म के तूफान मे बहने लगे। तब रूस ही एक ऐसा राष्ट्र था, जो उनके लिए जी भर सकता था। निराशा के समुद्र मे वही एक आशा-द्वीप था। शान्त और भ्रान्त लोगों की आशा रूस पर ही टिकी थी। रूस से सहानुभूति रखने वालों का रुख ऊपरी तौर पर आलोचनापूर्ण था, लेकिन भीतर से वे सब रूसी कपोल-कल्पना से प्रभावित थे। वे मुँह से रूस के प्रति चाहे जो कुछ कह देते, परन्तु उसके प्रति उनकी श्रद्धा या आशा मे रचमात्र भी कमी नहीं आयी थी। उनके मन मे यह एक अटल और अचल विश्वास था—"कुछ भी हो, एकमात्र रूस मे ही सचाई है, वही अन्तिम है, भविष्य का निर्देशक है।" "सट्टाबाजार के भयभीत दलाल" और बुद्धिमान व्यापारी, दोनो यह मानते है कि "व्यापारिक मन्दी मे भी कुछ भलाई है"—मृत्यु-शय्या पर पड़े हुये किसी नास्तिक की अन्तिम धर्म-विधि के समान।

अस्पष्ट तथा रूखा होने के बावजूद भी यह विश्वास रूढ़िवादियो के सिद्धान्त के समान अज्ञात अवस्था मे तथा ईर्ष्यात्मक ढग से रक्षित है। स्टालिन की नीति का 'न्यू स्टेट्समैन' और 'नेशन' ने जो अर्थ प्रस्तुत किया है, वह किसी सरकारी क्षमा-प्रार्थी की जैसे सारी सरलता प्रकट करता है, यद्यपि उसमे अधिक सुन्दर तार्किक वक्रता भी है—अव्यावहारिक कैथोलिक के समक्ष उदार विचार वाले ईश्वरवादी की प्रत्यक्ष श्रेष्ठता से सहानुभूति दिखाने वाला प्रसन्न होता है, किन्तु उसके विश्वास की जडे उतनी ही विवेकहीन हैं, जितनी दूसरों की।

व्यवस्था मे आदर किया जाता है—उदाहरण के लिए—स्टालिन-हिटलर समझौता।

६—सिद्धान्त का अचल होना। रूस की तानाशाही में की गयी भूले और अपराध रूसी सरकार को कभी-कभी मान्य करना ही पड़ता है। तब इसे क्षणिक लक्षण कह कर बात को सँभाला जाता है कि उत्पादन के साधनो का राष्ट्रीयकरण और लाभ के प्रयत्नों के उन्मूलन के अचल सिद्धान्त के कारण रूसी सरकार की लगातार प्रगति हो रही है, और चूँकि यह समाजवादी राष्ट्र है, इसी लिये यह ससार के वामपथियों की विशिष्ट अभिरुचि का विषय है।

रूस के प्रचारक उक्त छः तर्कों मे से किसी-न-किसी तर्क द्वारा रूस के प्रत्येक कार्य का समर्थन करते हैं। अब हमें विस्तार से इनका परीक्षण करना है।

२

युद्ध-कालीन मनोविज्ञान की विशेषताओं के कारण पहला कथन मूल तर्क की दृष्टि से निर्बल होने पर भी भावना की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली पाया गया। राजनीतिक दृष्टि से अज्ञानी लोगों पर ही इसका प्रभाव पड़ा हो, सो बात नहीं। रूसी लाल सेना की प्रचण्ड विजय से यूरोप की जनता मे अदम्य उत्साह उभर गया और रूस के आलोचको के मुँह बन्द हो गये।

रूसी सैनिकों की योग्यता और उनके रण-कौशल को साधारण कोटि का मानना भूल है। रूस द्वारा जर्मन सेना की भारी पराजय एक ऐतिहासिक घटना है, कोई चमत्कार नही। रूस की जनसख्या जर्मनी से दुगुनी है। रूस की औद्योगिक समृद्धि जर्मनी के टक्कर की है। रूस का विस्तृत भूभाग और विलक्षण ठण्डी हवा किसी भी आक्रमण को रोकने मे रूस की सहायक है। यह उसकी विशेषता है और ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य या अमरीका युद्ध मे भाग न लेते, तो जर्मनी रूस को पराजित कर देता।

रूसी सैनिको की सहनशीलता और भाग्यवादिता प्रसिद्ध है। १८१५ मे उन्होने नेपोलियन को हराया। १९१४ मे रूस की औद्योगिक क्षमता जर्मनी की औद्योगिक क्षमता के पॉचवे हिस्से से भी कम थी, ब्रुसिलाव की विख्यात लडाई मे रूस की पहली सेना के पास सिर्फ हाथ मे बन्दूक और पॉव मे जूते थे, दूसरी टुकडी ने जब हमला किया, तो उसके पास केवल जूते ही थे और तीसरी

रूसी कपोल-कल्पना और यथार्थता

१

पिछले निबंध में रूसी कपोल-कल्पना की मनोवैज्ञानिक मीमासा की गयी है। प्रस्तुत निबंध मे वहाँ की सत्यस्थिति का विवेचन करना है। इस निबंध का हेतु इस बात की खोज करना है कि वहाँ की समाजवादी रचना वास्तव मे समाजवादी है भी या नहीं। ऐसी खोज को विघ्न के बादलो से गुजरना है। ध्रुव-यात्रा, नक्षत्रों की ओर उडान और मास्को मे भूमिगत कार्यो के प्रचार के ऐसे नगाड़े बजते हैं कि सुननेवाला और कुछ सुन ही नहीं पाता। लेकिन उसका समाजवाद से क्या सम्बन्ध? फिर भी उसका समाजवाद से सम्बन्ध बताया जाता है। इन दिनों प्रचार के जो नगाड़े बजे, उनका साराश इस प्रकार दिया जा सकता है।

१—रूसी जनता ने, विशेषकर स्तालिनग्राड के योद्धाओ ने, जर्मनी को पराजित किया। क्योकि रूसी जानते थे कि वे किसलिए लड़ रहे है, रूस की विजय स्टालिन की सर्वोत्कृष्ट राज्य-व्यवस्था का प्रमाण ही थी, जो अपने आलोचको को झूठा सिद्ध करती है।

यदि गंभीरतापूर्वक विचार करने से इस प्रकार का तर्क अत्यधिक बनावटी लगता है, तो भीतरी सुरक्षायें काम मे लायी जाती है, जैसे :—

२—सत्य घटना को अस्वीकार करना या उसे छुपा देना, जो कालातर मे सत्य मान ली जाती है। उदाहरणार्थ १९३२-३३ का अकाल।

३—सत्य का गुप्त और प्रकट स्वरूप। रूस की जो घोषणा पश्चिमी लोगों को पागलपन लगती, उसके समर्थन में यह कहा जाता कि यह केवल रूसी लोगो के लिए है। और यह कारण दिया जाता कि रूसी जनता पिछड़ी हुई है, उदाहरणार्थ, जिनोविच ब्रिटिश गुप्तचर विभाग का दूत था।

४—तत्त्वज्ञान और व्यवहार का अन्तर। रूसी राज्य-व्यवस्था की प्रत्येक प्रतिगामी योजना का "सामयिक योजना" कह कर समर्थन किया जाता है। उदाहरणार्थ—हड़तालियों के लिए मृत्यु का दण्ड।

५—साध्य से साधन के गुण-दोष निश्चित होते हैं। पूँजीवादी राष्ट्रों द्वारा जिन साधनों का उपयोग करने पर तिरस्कार किया जाता है, उन्ही का रूसी राज्य-

निर्णय के पूर्व ही कोई धारणा बना लेना। सभी ऐतिहासिक साक्ष्यो से पता चलता है कि नैतिक शक्ति कई कारणों पर अवलम्बित है, जिसमे युद्ध का ध्येय द्वितीय श्रेणी का कारण है। युद्ध चाहे सभ्य समाज का रहा हो, चाहे असभ्यों का अथवा क्रान्तिकारियो का, लोग समान उत्साह से लड़े हैं, और लडते-लड़ते मरे हैं। कभी-कभी तो युद्ध के कारणो का व्यक्तिगत हित से कोई सम्बन्ध ही नही होता, उल्टा विरोध ही होता है। युद्ध का हेतु माध्यमिक सम्बन्धों की शृंखला पर निर्भर है। यह सम्बन्ध भावप्रवण परिस्थिति से उत्पन्न होते हैं। एक ऐसी गुंथी शृंखला, जिससे लोग बहुधा अपनी गुलामी कायम रखने के लिए ही लड़ेंगे। भावना के बल और युद्ध के ध्येयवाद मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोड़ना तार्किक दृष्टि से सदैव त्रुटिपूर्ण है।

अत्यन्त बलवती भावनाओं मे से एक भावना है विदेशियो के प्रति महान् घृणा। प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन देशाभिमान के काल तक इसके रूप दीख पड़ते हैं। वार्सा के समाजवादी मजदूर १९२० मे रूस की क्रान्तिकारी सेना के विरुद्ध उठ खड़े हुए और फिलिस्तीन के अरबों ने यहूदियों के प्रवेश के विरुद्ध शस्त्र उठाये। इससे उन्हें अत्यधिक आर्थिक लाभ भी हुआ।

वर्तमान महायुद्ध मे जहाँ-जहाँ राष्ट्रवाद और सामाजिक ध्येयवाद का सघर्ष हुआ, वहाँ राष्ट्रवाद ही विजयी हुआ। यूनान के फासिस्ट, हमला करनेवाले इटालियन फासिस्टो से लड़े। लोकशाही राष्ट्र इंग्लैण्ड ने फासिस्ट स्पेन को काबू में किया। जापानी सामंतशाही ने रूसी बोल्शेविज्म मे आदर्शात्मक एक-रूपता देखी। इसका यही अर्थ है कि राष्ट्र का राजनीतिक तत्त्वज्ञान शून्य रहने पर भी युद्ध-पिपासु राष्ट्रो का विभाजन आज की तरह ही हुआ होगा। उदात्त तत्त्वज्ञान के खोखले नगाड़े चाहे जितने बजा करे, पर सत्य यह है कि युद्ध राष्ट्रों के बीच है, जो केवल राष्ट्रीय हित के लिए अथवा शत्रु से सुरक्षा के लिए या नये राज्य जीतने के लिए चल रहा है और उसमे देशाभिमान तथा राष्ट्र के प्रति भावनात्मक उत्साह ओत-प्रोत है।

वामपंथी दल की दृष्टि से यह महायुद्ध बलशाली फासिस्ट सरकार के विरुद्ध था। इसलिए लड़ने योग्य था, परन्तु मित्र राष्ट्र और राजनीतिक दृष्टि से उदासीन बहुसख्यक जनता ने इस युद्ध के तात्त्विक कारणों की परवाह नहीं की। उन्होने परवाह की केवल अपने राष्ट्र को बचाने की और पिछली सदी के परम्परागत मूल्यो की सुरक्षा की।

"यह विवेचन पूँजीवादी राष्ट्रों पर लागू होता है, रूस पर नहीं"—कम्यूनिस्टों

टुकड़ी के पास न बन्दूक थे, न जूते। अपने मृत सैनिकों के जूतों और बन्दूकों का उपयोग उन्होंने किया। फिर भी वे चार साल तक लडते रहे; पहले जार के लिए, फिर करेन्सकी के लिए और अन्त मे बाल्शेविको के लिए। रूस मे भी जर्मनी की तरह ही सेना और साधन की समाप्ति पर ही क्रान्ति का उदय हुआ।

रूसी सरकार का प्रचार यह प्रकट करता है कि १९४४ मे रूसी सेना ने जो विजय प्राप्त की, वह स्तालिन के तत्त्वज्ञान और समाज-रचना की श्रेष्ठता के कारण की। यदि यह सत्य है, तो हमे यह भी मानना पडेगा कि १८१५ मे रूस ने नेपोलियन पर जो विजय प्राप्त की थी, वह जार राज्यव्यवस्था की श्रेष्ठता के कारण थी और फ्रेन्च की राज्य-क्रान्ति के तत्त्वज्ञान की अपेक्षा रूस की दास-वृत्ति श्रेष्ठ है। यही बात प्रत्येक देश पर लागू हो सकती है, जिसने इस युद्ध मे भाग लिया है। अपने झडे के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले जापानी सैनिको की राष्ट्र-निष्ठा की समता कोई सेना नहीं कर सकती। सालामाव की रक्षा वे तब तक करते रहे, जब तक उनमे से एक भी सैनिक जीवित रहा। अधिकतर योद्धा स्तालिनग्राड के वीरो की तरह किसान-मजदूर ही थे, लेकिन यह कौन मानेगा कि जापान के मिकोडा का शासन धरती पर सबसे उत्कृष्ट था? इससे कोई इनकार नहीं करता कि जर्मन सेना भी बडी वीरता से लड़ी, लेकिन यह कौन कहेगा कि नाजीवाद अच्छा है और गेस्टापो की क्रूरता की आलोचना करने वाले उसके निंदक हैं? चीनी जनता लगभग दस साल तक लगातार, एकाकी, अपने से बढ़े-चढे आक्रमणकारी जापान से लड़ रही थी, लेकिन क्या इसीसे पश्चिमी मजदूर-वर्ग को चीनी समाज-प्रणाली का अनुसरण करना चाहिए?

इस विचारधारा के तर्क-दोष स्पष्ट हैं, फिर भी रूस की कपोल-कल्पना की लोगो की भावना पर ऐसा जबरदस्त प्रभाव पडा है कि समझदार लोग भी ऑख मूंद कर कहते हैं—"रूसी लडने की कला के जानकार हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि वे किसलिए लड रहे हैं।" लेकिन गुमराह जर्मन और जापानी सैनिक यह न मालूम होने पर भी वे किस लिए लड़ रहे हैं, डटकर लडते हैं। अगर जर्मन सैनिकों की नैतिक अवस्था से नाजीवाद का औचित्य सिद्ध नहीं होता, तब रूसी सैनिको की नैतिक अवस्था से स्तालिनवाद का औचित्य भी सिद्ध नही होता। हॉ, यदि हम पहले से ही मान ले कि "स्तालिनवाद ही अच्छा और नाजीवाद बुरा है" तो बात दूसरी है। लेकिन इसका अर्थ होगा,

अन्तर्गत आता है, किन्तु अधिकाशतः यह अनजाने रहता है, जो अज्ञानता पर आधारित है।

रूसी कपोल-कल्पना के समर्थक ही रूसी यथार्थता को न जाने, यह आश्चर्यजनक है। उदाहरणार्थ, प्रत्येक दस व्यक्तियों मे से नौ व्यक्ति यह सुनकर स्तम्भित रह जाते हैं कि रूस मे 'मजदूरो को हडताल' करने का अधिकार रद्द कर दिया गया है। और जो कोई हड़ताल करेगा अथवा हडताल के लिए उकसायेगा, उसके लिए मृत्युदण्ड निश्चित किया गया है। वहॉ के मतदाताओं के सम्मुख सरकार द्वारा चुने हुये उम्मीदवारो की एक ही सूची रखी जाती है और उसके लिए केवल 'हॉ' या 'ना' करने का अधिकार मतदाता को है। रूसी वास्तविकता के बारे मे इतने अज्ञान का यही कारण है कि वहॉ के सही समाचार मिलने ही दुष्कर हो गये हैं। और दूसरा कारण है, रूस पर टिकी आशा के भग्न होने का सुप्त भय। लोग रूस को जितना ही अधिक महत्त्व देते हैं, वास्तविक तथ्य जानकर वे उतना ही अप्रसन्न प्रतीत होते हैं। ऑख मूँदकर विश्वास रखने के लिए सत्य की क्या आवश्यकता? हर कोई बाइबिल पढ़ता है, लेकिन उसमे उल्लेखनीय बातो की सत्यासत्यता कौन परखता है?

वामपथी दल अनजाने ही धोखा खा जाने के लिए तत्पर हो गया, तभी रूस का प्रचार सफलता पा सका, जो इतिहास में अद्वितीय है। यह सफलता मुख्यतः दो ढगो पर आधारित थी—(अ) तथ्य को दबा देने का अप्रत्यक्ष ढग (ब) प्रचार का प्रत्यक्ष ढग। हम इन दोनों पर पृथक-पृथक विचार करेगे।

तथ्यों का छिपाव

रूस में विदेशी समाचारपत्रो पर प्रतिबन्ध था और आज भी है। जर्मनी मे नाजीवाद जो कभी नहीं कर सका, वही—समाचारपत्रो पर नियत्रण—रूस मे आज भी जारी है। मास्को मे और रूस के प्रत्येक शहर में सवेरे दो समाचार-पत्र निकलते हैं। एक सरकार का मुख्य पत्र, और दूसरा दल का मुख्य पत्र। समूचे देश मे हर रोज सभी सरकारी पत्रो में एक ही सम्पादकीय लेख प्रकाशित होता है। मास्को के 'इस्वेस्तिया' पत्र का यह अग्रलेख तार या आकाश-वाणी से अन्य पत्रों को भेजा जाता है—वैसे ही मास्को के 'प्रवदा' पत्र का अग्रलेख समूचे देश के दलीय-पत्रो मे प्रकाशित होता है। इसी प्रकार से, स्वदेश और विदेश के समाचार सरकार की 'तास एजेन्सी' द्वार प्रसारित

का तर्क इसी मान्यता पर आधारित है। लेकिन इस भेद का आधार क्या है? रूसी सैनिक विश्व-कल्याण की घोषणा भले ही करते हों, किन्तु इस घोषणा के मूल में भावना-शक्ति न होकर अपने राष्ट्र से राक्षसी परचक्र दूर करने की इच्छा ही थी। बाद मे रूस के सरकारी प्रचार मे से यह ध्येयवाद निकल गया और क्रान्तिपूर्व के परम्परागत प्रतीक स्वीकृत किये गये। विश्व-एकता का गीत लुप्त हो गया और उसके स्थान पर राष्ट्रगीत गाये जाने लगे। सेना मे क्रान्तिनिष्ठ शपथ की जगह नयी राष्ट्रीय शपथ दिलायी जाने लगी। सेना मे सारी समानता रद्द कर दी गयी। क्रान्तिकाल का अनुशासन गायब हो गया और उसके स्थान पर तानाशाही शासन प्रारम्भ हुआ। फ्रेंच राज्यक्रान्ति के नेताओं से युद्ध करने वाले पुराने जार सेनापतियो को 'राष्ट्रीय आदर्श' की उपाधि से पुनः विभूषित किया गया। पुराने गिर्जाघरों का भी पुनर्जन्म हुआ। ईश्वर के आशीर्वाद की खैरात-सी बँटने लगी। इन उतार चढ़ावो के सम्बन्ध मे हम बाद में विस्तार से विचार करेंगे।

इस प्रकार प्रथम तर्क का यह निर्णय हुआ कि किसी भी राष्ट्र की सैनिक शक्ति के आधार पर यह निश्चय नहीं होता कि उस राष्ट्र का शासन उत्तम है या निकृष्ट। यह शक्ति मुख्यतः परम्परागत भावना से निर्मित होती है और रूस ने भी इस परम्परा का पोषक ध्येय ही अपनाया। अन्य कट्टर राष्ट्रो से इसे अलग प्रमाणित करने वाले जो नारे थे, रूस ने उन्हे हटा दिया और इससे अगर इस तर्क को कुछ प्रमाणित करना है, तो यह इतना ही कि जो रूसी सैनिक सदा 'भगवान्, देश और सरकार' के नाम पर बड़ी योग्यता से लड़े, आज भी वे 'भगवान्, देश और सरकार' के नाम पर उसी योग्यता से लड़ रहे हैं।

यह विवेचन रूस के समाजवादी राष्ट्र होने की सम्भावना का बहिष्कार नहीं करता, किन्तु इसे अधिक मान्य तर्कों द्वारा सिद्ध करता है। रूस ने अकेले जिस प्रकार युद्ध का सामना किया, उसके आधार पर हम इतना ही कह सकते हैं कि यदि वह समाजवादी राष्ट्र है, तो उसने अपना स्वरूप, अपने सैनिको से, नागरिको से और बाह्य जगत से बड़ी सावधानी से छिपाकर रखा।

३

रूसी यथार्थता के तथ्यो को जानबूझ कर अथवा अनजाने भी अस्वीकार किया जा सकता है। अगर यह जानबूझ कर है, तो यह दूसरे शीर्षक के

पृष्ठभूमि बने। १९३२-३३ के इस अनर्थ को आज रूसी लोग भी न्यूनाधिक रूप में मानते हैं। लेकिन उस समय भीषण परिस्थिति पर तनिक भी प्रकाश डालने की छूट समाचारपत्रों को न थी। रोज सुबह जब मैं खारकोव का समाचार-पत्र 'कम्यूनिस्ट' पढता, तो उसमें इन्हीं समाचारों का बाहुल्य मिलता कि सरकारी पचवर्षीय योजना को अपेक्षा से अधिक सफलता कैसे मिली। उसी प्रकार कारखानों मे उत्पादन-वृद्धि, मजदूरों को इनाम और नये तथा बड़े उद्योग-धंधों से सम्बन्धित समाचारों की भरमार होती थी। उनमें जो चित्र छपते थे, वे सदैव हाथ में प्रतीक-चिह्न लेकर मुक्त हास्य करने वाले युवको के होते या उजबेकिस्तान के किसी हॅसते हुये वृद्ध के, जो वर्णमाला को पढ़ने की कोशिश करता हुआ दिखाया जाता था। स्थानीय अकाल या रोग-प्रसार तथा खेती के संहार के सम्बन्ध मे एक शब्द भी नहीं छपता था। वहॉ के समाचार-पत्र में एक बार भी नहीं छपा कि खारकोव में बिजली बन्द है। इससे पाठक को लगता कि वह किसी कल्पनामय रम्य स्वप्नसृष्टि मे विचर रहा है। उसे लगता कि जिनसे हमारे दैनिक जीवन का तिलमात्र सम्बन्ध नहीं, ऐसी किसी अनोखी दुनिया की बात ये पत्र प्रकाशित कर रहे हैं। जो स्थिति समाचारपत्र की थी, वही आकाशवाणी की।

इस सब का परिणाम यह हुआ कि मास्को के सर्वसाधारण लोगो को इस बात की कल्पना भी नहीं थी कि खारकोव मे क्या हो रहा है और जहॉ जाने के लिए रेल से बारह दिन यात्रा करनी पडे—ताशकेन्ट, आर्चएंजल, या व्लाडी-व्होस्टक स्थानो के बारे मे भी वे ऐसे ही अनभिज्ञ थे। रेल की यात्रा खासकर सरकारी अधिकारियो के लिए सुरक्षित रहती, और वे इधर-उधर की बाते नहीं करते थे। उस विशाल देश पर स्तब्धता का काला आवरण पड़ा हुआ था। इने गिने समर्थकों के सिवा किसी के लिए भी परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान होना असम्भव था।

दुनिया से रूस का सम्बन्ध तोड़नेवाली स्तब्धता की एक और खाई थी। विदेशी सम्वाददाता और प्रतिनिधिमण्डलो को मास्को में ही एकत्र किया जाता और रूस की उस राजधानी में अनाज और ईंधन से लेकर औद्योगिक उत्पादन, दॉत के ब्रश, लिपस्टिक और शौक की सभी सामग्री भरपूर मिलती। देश के बाकी हिस्सो को इन चीजो की कल्पना भी नहीं रहती। मास्को का जीवन रूस के जीवन का प्रतीक कदापि नहीं माना जा सकता था, पर जब मास्को के सर्वसाधारण को ही अपने देश के अन्य प्रदेश में होने वाली हलचल

किये जाते हैं। स्थानीय समाचार भी आते हैं, पर वे भी सरकारी अधिकारी द्वारा प्राप्त।

रूस-जैसे विशाल राष्ट्र मे समाचार-संस्था का ऐसा केन्द्रीयकरण और नियत्रण हो जाने से वहॉ की आम जनता को विदेशी घटनाओं का ज्ञान तो होता ही नहीं—परन्तु अपने पडोस की घटना भी मालूम नहीं रहती। इस व्यवस्था का एक उदाहरण देखिए।

यूक्रेन की राजधानी है खारकोव। मै वहॉ १९३२-३३ के जाड़े मे रहा था। उस समय जाड़े का भयकर कोप था। उस समय सामूहिक खेती का प्रथम प्रयोग आरम्भ हुआ था, इसलिये किसानों ने अपने मवेशी मार डाले थे और अपनी पैदावार या तो जला दी थी या छिपा दी थी। उस समय वे भूख या ज्वर से मरने लगे थे। अनुमान है कि केवल यूक्रेन प्रान्त मे ही बीस लाख लोग काल-कवलित हुए थे। खेतो से होकर यात्रा करना कष्टकारक था। किसान, जिनके हाथ-पॉव सूज गये थे, भीख मॉगने के लिए स्टेशन पर पक्तिबद्ध खडे थे। स्त्रियॉ अपने भद्दे बालकों को खिडकी तक ऊँचा उठाकर भीख मॉग रही थीं, उन बालको के काफी बड़े सिर थर-थर काप रहे थे, उनके हाथ-पैर सूखकर लकड़ी बन गये थे और उनके पेट फूल गये थे।

रोटी का एक टुकडा देने पर उसके बदले मे कढे हुए रूमाल, राष्ट्रीय पोशाक और बिस्तरे पर बिछाने की चादरे मिल सकती थीं। एक जोड़ा जूता अथवा मोजा देकर ही कोई भी विदेशी, दल से सम्बन्धित युवतियो के अलावा, किसी भी युवती के साथ रात गुजार सकता था। खारकोव मे स्थित होटल के मेरे कमरे की खिडकी से मुझे दिन भर अंतिम सस्कार के लिए ले जाये जाने वाले मृतकों की पक्ति दिखायी देती थी। शहर मे बिजली बद हो गयी थी, इस-लिए कहीं उजाला न था। ट्राम दिन मे केवल एक घंटा चलती थी और वह भी केवल मजदूरो को कारखाने तक ले जाने और वहॉ से ले आने के लिए। ईंधन या पेट्रोल का भी अभाव था और ठण्ड तो ऐसी थी कि वहॉ के लोगों के लिए भी असह्य थी। तापमान शून्य से ३० अश नीचे था। जीवन अचल-स्थिर-सा प्रतीत होता था और सारे कारबार के बन्द होने की नौबत आ गयी थी।

इन परिस्थितियो ने पुराने बाल्शेविक सैनिको को स्तालिन के विरुद्ध खड़े होने के लिए बाध्य किया। वे आधे मन से छुप-छुप कर षड्यंत्र रचने लगे। बाद मे स्तालिन ने जो 'शुद्धीकरण' आरम्भ किया, तो ये लोग उसकी प्रमुख

ऐसा बॉध बॉधा जाता है कि उसके शोरगुल और कुहासे मे किसी रूसी के दैनिक का सही रूप बिल्कुल छिप जाता है।

इससे कौन इनकार करेगा कि रूस में औद्योगिक क्रान्ति हुई। वैसी क्रान्ति १८ वीं और १९ वीं सदी में इगलैण्ड, जर्मन और अमरीका तथा जापान में भी हुई। अन्तर इतना ही है कि रूस मे पहले मजदूर-क्रान्ति हुई और बाद मे औद्योगिक क्रान्ति हुई। इसलिए रूस ऐसा प्रचार कर सकता है कि 'रेल या कारखाने' 'समाजवादी राज्यव्यवस्था' के सुफल हैं। स्वयं लेनिन ने भी पहले यह कहा है कि 'समाजवाद का अर्थ है सोवियत रूस और विद्युतीकरण।' लेनिन के कहने का तात्पर्य यह था कि जिस देश मे औद्योगिक उत्कर्ष हुआ है और देहात की पिछडी जनता की अपेक्षा शहर के कारखानो का मजदूर-वर्ग अधिक आगे है—ऐसे आधुनिक राष्ट्र मे ही समाजवाद स्थापित होना सम्भव है। दूसरे शब्दों मे औद्योगीकरण मानो समाजवाद की पहली शर्त है।

स्तालिनशाही प्रचार मे इस सत्य का ऐसा विकृत रूप दिया गया है कि कारखाने खड़े करने को ही समाजवाद समझा जाने लगा। नीपर-बॉध, तुर्किस्तान-साइबेरिया-रेलवे, श्वेत समुद्र की नहर या भूमिगत मास्को आदि सुधार यानी "समाजवाद का सार! साध्य!!" कहे जाते हैं। और सारी दुनिया मे किसी ने न देखी हो, ऐसी अद्भुत बातों का उनमे आभास कराया जाता है। लेकिन इंगलैण्ड-अमरीका मे ऐसी कितनी ही बाते हुई हैं। रूस की बहुसख्यक जनता का यही विश्वास है कि "सारे संसार मे भूगर्भ रेल सिर्फ मास्को में ही है।"

इस प्रचार-समीकरण "समाजवाद, अर्थात् औद्योगीकरण" की माया ऐसी थी कि इसे सिर्फ रूसियो ने ही नहीं, बल्कि दूरस्थ और पुराने औद्योगिक देशों मे उनके शुभेच्छुओ ने भी स्वीकार कर लिया। सोवियत कपोल-कल्पना के वशीभूत व्यक्तियो को नीपर-बॉध और भूमिगत कार्य, रूस की अत्यधिक ऊँचाई तक की उडान और ध्रुव-यात्राएँ, रूस का वायुयान चालन और बम-वर्षकों का सचालन अपनी प्रेयसी के सिर के बालो के गुच्छे के समान ही प्रिय था। समाजवादी महिला नीपर् लुडमिला पालिशेको के—जिसने समाजवादी निशानेबाजी से १३७ जर्मनों को गोली मारी थी और समाजवादी यथार्थता के साथ इस प्रक्रिया का विवरण बुर्जुआ समाचारपत्रो को दिया था—भ्रमण मे इस सम्प्रदाय की वृद्धि और महत्ता उन्माद की अवस्था मे पहुँच गयी।

प्रचार की दूसरी युक्ति, अर्थात् साधारण बात को व्यापक स्वरूप देना अधिक

का ज्ञान नहीं, तो फिर विदेश से आये अतिथियों को इसकी कुछ जानकारी न हो, तो क्या आश्चर्य। सरकारी अधिकारी द्वारा आयोजित रूप मे उनका रहना होता था। वह अधिकारी ही उनका मार्ग-दर्शक, समाचार-दाता, ड्राइवर और दोस्त, सब कुछ होता था। उनके सम्बन्ध केवल सरकारी अधिकारियो से ही होते थे। रूस का नागरिक यदि विदेशी अतिथि से कोई सम्बन्ध रखे, तो उस पर गुप्तचर होने का या देशद्रोही होने का आरोप लगाये जाने का भय रहता था।

पहले तो वास्तविक तथ्यो की जानकारी प्राप्त करना ही कठिन था, किन्तु यदि किसी कुशल विदेशी सम्वाददाता ने वह जानकारी हासिल कर भी ली, तो उसे रूस से बाहर भेजना बडा कठिन था। रूसी सेन्सर द्वारा अस्वीकृत कोई समाचार बाहर भेजने का अर्थ था एक खतरा मोल लेना। ऐसे व्यक्ति को देश-निकाले की सजा दी जाती थी, तब भला ऐसा दण्ड कौन सम्वाददाता या पत्र-सचालक प्रसग-विशेष के बिना ग्रहण करेगा? सम्वाददाता सत्य से समझौता कर के अपना कार्य करते, वे असत्य समाचार नहीं भेजते थे। केवल सरकारी समाचारों मे ही कुछ जोडकर अपने विचार साकेतिक रूप मे लिपिबद्ध कर के वे उसे भेज देते थे, जिन पर किसी की नजर नही पड़ती थी। उसे अभ्यस्त और जानकार पाठक समझ लेते थे। यह सारा प्रयत्न था रूस की वास्तविक स्थिति का चित्र उपस्थित करने के लिये, जो वास्तव मे अर्द्धसत्य और क्रमबद्ध निष्कासन पर आधारित था। मै तटस्थ और प्रगतिशील पत्रों की बात कर रहा हूँ। अगर प्रतिक्रियावादी प्रेस के कम्युनिस्ट आतकित आन्दोलन का वामपथियों पर कोई प्रभाव था, तो सोवियत सघ के प्रति उनकी वफादारी बढाने के लिए ही। यही वह आधार था, जिस पर रूस के प्रत्यक्ष प्रचार की इमारत खड़ी हो सकी।

प्रत्यक्ष प्रचार

विदेश मे प्रचार करने के लिए रूस परस्पर-पोषक दो युक्तियो का उपयोग करता है। पहली युक्ति है मानवी मूल्यो को एक तरफ रखकर ऑकडो की इमारत खडी करना, और दूसरी युक्ति है किसी साधारण घटना को महत्त्व देकर सारे वातावरण मे उसे व्याप्त कर देना।

ऑकड़ो के इस चमत्कार से अमरीकियों के मन जीते जाते रहे हैं। उत्पादन, शिक्षा, भवन-निर्माण, आवागमन, वेतनवृद्धि आदि के सम्बन्ध में ऑकडो का

४

गुप्त और सामान्य सत्य

पूरी एक पीढ़ी तक रूस को बाकी दुनिया से अलग रखा गया। रूस और दुनिया के बीच मानो एक 'नयी चीनी दीवार' खड़ी की गयी। उस दीवार की परछॉई दोनो ओर पड़ती थी। पूॅजीवादी विश्व की परिस्थिति का रूसी जनता को ज्ञान न था और रूस की परिस्थिति के विषय मे पूॅजीवादी विश्व की जनता पूर्ण अनभिज्ञ थी। रूसी जनता के लिए इतनी ही सन्तोष की बात थी कि उसे मालूम था कि पूॅजीवादी देशों मे जनता का जीवन उनसे भी कष्टमय है। "यदि हम नरक मे हैं तो विदेश के लोग रौरव नरक मे होगे"—रूस के लोगों की यह धारणा थी। रूस से बाहर के देशों मे मोटे-ताजे लक्ष्मी-पुत्र हर घंटे नये वस्त्र पहनते हैं, मध्यमवर्ग मुस्कराता है और अन्न के के लिए मुहताज मजदूर-वर्ग गुप्त षड्यंत्र रचता है, ये चित्र रूस ने अपने सिनेमा, आकाशवाणी, समाचारपत्र और साहित्य द्वारा प्रस्तुत किये। अपनी जनता को उसने ऐसा आभास दिलाया कि पुराने काल की परियों की रूसी कहानी मे वर्णित सभी यातनाओं का भण्डार यह पूॅजीवादी विश्व है।

१९३३ मे मैने मास्को में एक चित्र देखा। उसमें यह दिखाया गया था कि एक धार्मिक मठ मे एक जर्मन वैज्ञानिक को वहॉ के पुजारी कोडे लगाते हैं और नाजी के "तूफानी सैनिक" उनकी मदद कर रहे है। इस चित्र के साथ रूसी शिक्षाधिकारी की ऐसी प्रस्तावना जुडी थी कि यह चित्र खासकर रूसी जनता के लिये बनाया गया है। विदेशों मे दिखलाने के लिये रूस ने उत्कृष्ट चित्र तैयार किये थे, यह चित्र उनसे अलग किस्म का था।
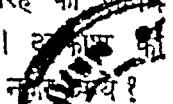
ऐसा ही एक और दृश्य मेरी ऑखों के सामने स्पष्ट है। यूक्रेन का एक विख्यात लेखक मुझसे सलाह लेने आया। वह लन्दन की पार्श्वभूमि पर एक कहानी लिख रहा था। उसमे उसने यह बताया था कि एक रविवार के सवेरे एक मजदूर रास्ते से जा रहा है और एक पुलिस-कास्टेबुल उसे धक्के मारकर दूर कर देता है। उसने मुझसे पूछा—"इस समय पुलिस-कास्टेबुल कैसी भाषा का प्रयोग करेगा? मजदूर को कौन-सी गालिया देगा?"

मैने उससे पूछा—"लेकिन प्रश्न है—कास्टेबुल उस मजदूरों को ढकेलेगा ही क्यो?"

प्रत्यक्ष है। सुन्दर कारखाने, सुन्दर बालगृह, व्यवस्थित मजदूर-मण्डल और आरोग्य-केन्द्र विदेशी यात्रियों, पत्रकारों और फोटोग्राफरों को दिखाये जाते थे। शायद एक प्रतिशत जनता को इस सुधार से लाभ मिलता रहा होगा, जब कि शेष ९९ प्रतिशत लोगों को इसका ज्ञान तक नहीं रहता था। महायुद्ध से पूर्व किसी भी यात्री को प्रवास का अनुमतिपत्र मिलने पर संसार के किसी भी सुधारवादी देश के अन्तर्भाग तक बे-रोक टोक भ्रमण करने की छूट थी—फासिस्ट इटली और नाजी जर्मनी में भी। परन्तु रूस में केवल सरकार-मान्य स्थानों को ही विदेशी मनुष्य देख सकता था।

"प्रवासियों को गुमराह करने के लिए ही यह दिखावट की जाती है"—कोई ऐसा आरोप लगाये, तो रूसी अधिकारी क्रुद्ध हो उठते हैं, पर इस आरोप का खण्डन करने का सीधा और सरल मार्ग यह था कि उनके देश में भ्रमण पर जो रोक है, उसे रद्द करके रूस को दुनिया से पुकार-पुकार कर कहना चाहिए था, "आओ और प्रत्यक्ष देखो", परन्तु रूस को प्रत्येक मनुष्य गुप्तचर या विध्वंसक लगता था, और इसलिए ऐसा होना असम्भव था।

रूस के शुभेच्छुओं ने इसे उचित मान लिया, पर रूस की यह मूर्खता और भी स्पष्ट हो जाती है, जब हमें स्मरण आता है कि सन् १९३३-३६ में जब जर्मनी गुप्त रूप से अपना पुनः शस्त्रीकरण कर रहा था, तब उसके विदेशी गुप्तचरों से आशंकित होने का अधिक उपयुक्त कारण था, किन्तु जर्मनों को मालूम था और साथ ही रूसियों को भी कि सैन्य रहस्य और राजनीतिक जुल्म के कार्य विदेशी पर्यटकों की दृष्टि से छिपाकर रखने में साधारण पुलिस कार्य-वाही ही काफी समर्थ होती है—खासकर तानाशाही राष्ट्र में।

रूस जिस रहस्य को इतनी दक्षता से सँभाल रहा था, वह सैनिक रहस्य नहीं था, वरन् वहाँ के सर्वसाधारण के रहन-सहन को दुनिया की दृष्टि से छिपाकर रखना था। आँकड़ों की आतिशबाजी के पीछे रूस की विशाल भूमि पर फैला हुआ घोर अन्धकार था। प्रचार के बाजों की आवाज में जनता का मुँह बन्द किया जाता था। साइबेरिया या मध्य एशिया आदि स्थानों में रूस से हद पार कराये गये या जबरदस्ती मजदूरी के लिए लाये गये असंख्य लोग किस तरह दैनिक जीवन बिताते हैं—और तो और—मास्को के उपनगरों—काजान और सरातोव, अशखाबाड और तोमस्क—के निवासी किस तरह का जीवन बिताते हैं, उसकी पश्चिमी पर्यवेक्षकों को कल्पना तक नहीं थी। [illegible] की ओर दूरबीन लगाकर बैठे प्रेक्षक को चन्द्रमा का काला भाग कैसे न[illegible]ये ?

यद्यपि उनकी बुद्धि ने इसे मान्य नहीं किया, लेकिन उनकी आशा उस समय प्रलोभन में फँस गयी। बाद मे केवल उत्तेजना फैलाने वाले लोग ही बयान देनेवालों में थे और इस प्रकार का बयान देने से उनका कोई नुकसान नहीं होने वाला था। अलग-अलग कारणवश दिये गये इन बयानों का जो लोग मूल कारण खोजना चाहते हैं, उन्हे यह बयान एक गूढ़ रहस्य लगता है।

रूस में—जिसने इस परम्परा को जन्म दिया—यह प्रचार कर रखा गया था कि राजनैतिक मामले के अपराधी को अपने पर लादे गये अपराध स्वेच्छया तथा मुक्तकंठ से स्वीकार कर लेने चाहिए। एक बार यह परम्परा स्थापित हो जाने पर कौन उससे दूर जायेगा? १९४३ के दिसम्बर मे खारकोव के मुकदमे में जर्मन युद्ध-अपराधियो को—जिसमें जर्मन अफसर और प्रधान सैन्याधिकारी भी थे—'दास्तायोवस्की' के पात्रों के समान आचरण करने के लिए बाध्य कर दिया गया था। एक ने स्वेच्छा से बयान दिया था—"रूसी लोगों का सामूहिक वध देखकर मैंने एक सैनिक के हाथ से बन्दूक ले ली और गोद में बच्चा लिए एक मॉ को गोली से उड़ा दिया।" खारकोव के इस मामले का चित्र लन्दन मे खुले रूप में दिखाया गया। मास्को के मामले हो या खारकोव के—दोनों ही समान रूप से लोगों को बनावटी लगे। अपराधी रटा हुआ-सा बयान देता प्रतीत होता। कभी-कभी सरकारी वकील के संकेत का गलत अर्थ लगाते हुए वह प्रतीत होता और पुनः उसी प्रश्न पर घूमकर आ जाता। इसमें सन्देह नहीं कि जर्मन सैनिको ने रूस मे ऐसे पाशविक अत्याचार किये कि पाश्चात्य लोक इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते, लेकिन अमुक-अमुक अत्याचार विशिष्ट जर्मनो ने ही किये, यह प्रमाणित करने के लिए स्वीकारात्मक बयान के सिवाय दूसरा प्रमाण नहीं था। इसका यह अर्थ नहीं कि नाजीवाद अपने भयानक अपराधो से मुक्त हो जायेगा, लेकिन रूस की न्यायव्यवस्था ही ऐसी विचित्र है कि वह अपने राष्ट्रीय हित की दासी बन गयी है और इसी से सच की सचाई सिद्ध करने मे भी असमर्थ बन गयी है।

प्रचार की दासी बनी न्याय-पद्धति में सहज ही मूर्खता के फल दृष्टिगोचर होते है। मास्को के मामलो के निर्णय ऐसे हैं कि उनके अनुसार ट्राट्स्की जब रूसी सेनापति के रूप मे विदेशी आक्रमको को परास्त कर रहा था, तब भी वह विदेशियो का दूत था। जो रूसी राज्यक्रान्ति के निर्माता थे, वे सब ब्रिटिश, जर्मन या जापान के सहायक करार दिये गये। उनमे से इस अभियोग से वे ही बचे जो समय पर मर गये थे और बचा स्वयं स्तालिन। उन्होंने गोर्की

"क्यो ? मैंने आपसे कहा न, वह मजदूर है—कीमती कपड़े पहननेवाला धनी व्यक्ति नहीं," यूक्रेन के मेरे उस मित्र ने स्पष्टीकरण किया। उसकी यह प्रामाणिक मान्यता थी कि लन्दन-जैसे पूँजीवादी शहर मे रविवार को सवेरे पुलिस मजदूर को रास्ते से हटा देती है और उस लेखक ने रूस के विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। उसकी साहित्यिक कीर्ति बढ रही थी। इंगलैण्ड के 'डेली मेल' के पाठक को रूस के 'बाल्शेविज्म' की जितनी कल्पना है, उतनी ही पूँजीवादी राष्ट्र के सम्बन्ध मे रूसी जनता की जानकारी है।

रूस के आन्तरिक विरोध मे भी यही स्याह-सफेद प्रणाली अपनायी गयी। तानाशाही शासक को यह भ्रम होता है कि वह कभी भूल नहीं करता। वह अपनी जनता को कभी यह नहीं मालूम होने दे सकता कि एक ही शिविर मे विविध मतो का मौका भी उत्पन्न हो सकता है। इसीलिए मास्को की अदालत मे जिन रूसी नेताओं को अभियोगियों के रूप मे उपस्थित किया गया, उन्हे सरकार का प्रामाणिक विरोधी न बता कर काले काम करने वाले नराधम चित्रित किया गया। उन विरोधी नेताओं से यह स्वीकार करवाया गया कि "हमने विदेशों से पैसा लेकर उनके क्रान्तिकारी गुप्तचरो के रूप मे शैतानी काम किये।"

उन्होंने यह बयान क्यों दिया ? इसके भी कई कारण है और वे कारण व्यक्ति-व्यक्ति के लिए भिन्न हैं। बुखारिन-जैसे नेता ने, जो अपने ऊपर अभियोग चलानेवालों के दर्शन मे ही विश्वास करता था, स्वेच्छा से ऐसा कहा। उसका कहना था—"जब कि राजनैतिक क्षेत्र में मेरी पराजय हो गयी है, तब ऐसा बयान देकर ही मैं अपने दल की अन्तिम सेवा कर सकता हूँ।" लेकिन तानाशाही राज्यव्यवस्था का नियम ही ऐसा है कि "मिला तो सब कुछ, नहीं तो कुछ भी नहीं।" इस निष्ठा के वशीभूत बुखारिन-जैसे को अपने प्राणों की तिलाजलि देनी पड़ी।

दूसरे कुछ ऐसे थे, जो आजीवन लडकर थक गये थे। उन्हे अपने जीवन की आशा नहीं थी, लेकिन सरकार द्वारा आश्रित परिवार का सत्यानाश न हो, (जैसे कामेनेव द्वारा स्वय अपने ही पुत्र का दूसरे मुकदमे के दौरान में उल्लेख) इसलिये उन्होंने स्वीकारात्मक बयान दिये।

इसके अतिरिक्त इससे भी निचले स्तर के सरकार-विरोधी थे। वे शारीरिक और मानसिक यातनाओ से बुरी तरह परास्त हो गये थे। उन्हे यह लालच दिया गया था कि इस प्रकार के बयान देने पर उन्हें जीवन-दान दिया जायेगा।